आचार्य चतुरसेन

बगुला के पंख

राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल

बगुला के पंख

कभी-कभी ऐसा भी होता है कि कोई अयोग्य अनधिकारी व्यक्ति भाग्यचक्र या परिस्थितियों के कारण सामाजिक, राजनैतिक रूप से 'बड़ा' बन जाता है। और ऐसा तथाकथित 'बड़ा' बनने के लिए न तो उसे तपना पड़ता है और न अपने मानस को सुन्दर, सुसंस्कृत बनाना पड़ता है। और तब वह अपनी मूल असंस्कृत, दुर्दम्य प्रवृत्तियों के कारण, लोगों के विश्वास के साथ मनमाना खिलवाड़ करता है।

ऊपर से शुद्ध-श्वेत खादी से ढका होने पर तो ऐसा व्यक्ति समाज के लिए और भी हानिकारक बन जाता है।

'जुगनू', इस कथा का नायक, जन्म से भंगी है। वह एक विलायती साहब का बैरा बनकर और मेम साहब का कृपापात्र बनकर मुंशी जगनपरसाद बन जाता है। और फिर वह परिस्थितियां उसे कांग्रेसी बना देती हैं। फिर अपने पद और प्रतिष्ठा की आड़ में अपनी अतृप्त वासनाओं से जैसा नंगा नाच वह नाचता है, धोती-कुर्ते के नीचे जैसा वह है, उसे अनावृत करके आचार्यजी ने एक यथार्थ चित्र प्रस्तुत किया है।

◇ ◇ ◇

मूल्य : चार रुपये पचहत्तर नये पैसे
द्वितीय संस्करण : दिसम्बर, १९६०
प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्ज़, दिल्ली
मुद्रक : युगान्तर प्रेस, दिल्ली

एक बात

देखिए साहेब, इस उपन्यास में जिस दिल्ली की चर्चा है, वह सचमुच की वह दिल्ली नहीं है जो आज भारत की महा-महिमा-मण्डित राजधानी है। यह हमारी काल्पनिक दिल्ली है। और इसके सब पात्र काल्पनिक हैं। कोई जाते-शरीफ कोरे शक-सन्देह के आधार पर यह दावा करने लगें कि इसमें हमारा ही चरित्र-चित्रण किया गया है तो उनका यह दावा नहीं स्वीकार किया जाएगा। और लेखक साफ इन्कार कर जाएगा कि महाशय, हम तो आपको तथा आपसे सम्बन्धित किसी बात को जानते ही नहीं हैं, नाहक आप हमारा पल्ला पकड़ते हैं।

वास्तव में यह एक अवसरवादी व्यक्ति की कहानी है, जो मनोवैज्ञानिक विश्लेषण-मूलक अधिक और आलोचनात्मक कम है। इसमें मानवतत्त्व में अधिष्ठित जीवन-ज्ञान, वासना और प्रवृत्ति के नैसर्गिक संघर्ष का संतुलित वर्णन है।

—*लेखक*

१

२६ जनवरी, सन् १९५४ के दिन सुबह मुरादाबाद एक्सप्रेस से एक युवक तीसरे दर्जे के डिब्बे से निकला और यात्रियों की भीड़भाड़ को पार करता हुआ स्टेशन से बाहर आया। युवक की आयु कोई अट्ठाईस बरस की होगी। रंग उसका किसी कदर श्याम, शरीर हृष्ट-पुष्ट और सुगठित, चेहरा सुडौल, आंखें बड़ी-बड़ी और दांत सुन्दर थे। उसकी दाढ़ी बढ़ी हुई थी और कपड़े मैले थे। वह खाकी जीन की एक पुरानी पतलून और मैली कमीज़ पहने था। पैरों में पुराना शू था जो दांत दिखा रहा था। डिब्बे की भीड़ में वह रात को सो नहीं पाया था। इससे इस समय उसका मन आलस्य से भरा था। वह ज़िला मुरादाबाद की अमरोहा तहसील के किसी कस्बे का रहने वाला था। जात का वह मेहतर था। परन्तु उसके माता-पिता सदा अंग्रेज साहब लोगों के बैरा-खानसामा रहे थे। वह भी साहब लोगों की नौकरी में बचपन ही से रहता आया था। दिल्ली, मेरठ, शिमला, लखनऊ और बम्बई तक उसने नौकरी के सिलसिले में यात्राएं की थीं। लखनऊ में एक उच्च श्रेणी के सिविलियन साहब की कृपा से और उसकी नौकरी में छह साल रहने से वह काफी अंग्रेज़ी और उर्दू सीख गया था। हिन्दी उसने अपने बचपन में सीखी थी। वह अच्छी-खासी अंग्रेज़ी बोल लेता था। उच्चारण उसका बिलकुल अंग्रेज़ों की भांति था। लखनऊ में जब वह साहब लोगों की नौकरी में रहता था, तो उसकी दोस्ती साहब के बावर्ची रमजान से हो गई थी। रमजान उसीकी आयु का तरुण मुसलमान था। उसे शायरी का शौक था। वह सदा ही कुछ गुनगुनाया करता था। उसकी सोहबत और दोस्ती का असर इस तरुण पर भी पड़ा। और वह भी उर्दू शायरी करने लगा। उसके साथ कभी-कभी मुशायरों में भी जाने-आने लगा। इन सब कारणों से उसकी भाषा निखर गई और तबीयत संस्कारपूर्ण हो गई। लखनऊ शहर, मुसलमानों की सोहबत, अंग्रेज़ हाकिम की नौकरी, शायरी का शौक, इन

सबने मिलाकर उसे एक सभ्य-शिष्ट युवक बना दिया था। अंग्रेज़ों के साथ रहने और उनके रहन-सहन के तौर-तरीके देखने से वह भी नफासत-पसन्द हो गया था। जब वे साहब पेंशन लेकर विलायत जाने लगे, तब अपने एक दोस्त अंग्रेज़ के यहां उसे नौकर रखा गए थे जो सेना में एक कर्नल थे। मिज़ाज के वे बड़े सख्त थे परन्तु उनकी स्त्री बड़े मौजी स्वभाव की स्त्री थी। उसकी आयु भी कर्नल से बहुत कम थी। कर्नल की वह कुछ परवाह न करती थी। कर्नल कुछ बीमार भी रहता था। इससे उसका मिज़ाज चिड़चिड़ा हो गया था, इस कारण भी मेम साहब से उसकी प्रायः खटपट बनी रहती थी। कर्नल का खानसामा एक गोआनी ईसाई था। उसका रंग आबनूस के कुन्दे की भांति काला था। वह खूब धड़ल्ले से अंग्रेज़ी बोल लेता था। दूसरे नौकर-चाकर भी मद्रासी थे। उनका रहन-सहन और रंग-ढंग मेम साहब को पसन्द न थे। उनकी अपेक्षा वह तरुण उन्हें पसन्द आ गया था। उसकी तबीयत में लखनवी नज़ाकत-लताफत थी। शायराना लटक थी। वह खुशमिज़ाज, हंसमुख, स्वस्थ, सुन्दर तरुण था। मेम साहब के मन को वह भा गया। तिसपर वह अच्छी उर्दू बोलता था। मेम साहब को उर्दू सीखने का शौक था। उन्होंने इस तरुण से उर्दू सीखना आरम्भ किया और उसपर प्रसन्न होकर उसे अपने सब नौकरों का सरदार बना दिया तथा बाज़ार से सौदा-सुलफ लाने का काम उसके सुपुर्द किया। मेम साहब के घर का हिसाब-किताब भी वही रखता था। वह सब काम फुर्ती से और प्रसन्नता से करता था। बुद्धिमान और चतुर था, नफासत-पसन्द था। इसलिए मेम साहब के मन पर वह चढ़ता ही चला गया। धीरे-धीरे वह मेम साहब को उर्दू पढ़ाते हुए गज़लें और शेर सुनाता। गला उसका सुरीला था। जब तरन्नुम में वह गज़ल गाकर सुनाता, मेम साहब यद्यपि उसका भावार्थ ठीक-ठीक नहीं समझती थीं, पर भाषा और उसके हाव-भाव से आविष्ट-सी हो जाती थीं। धीरे-धीरे सम्मान-आदर, एकान्त और तबीयत की एकता के कारण दोनों में अधिक घनिष्ठता बढ़ने लगी। प्रेम-सम्बन्धी शेर और गज़ल सुनाने के साथ ही वह उनका भावार्थ भी मेम साहब को समझाता था। प्रेम के तत्त्व कविता के परिधान में इस तरुण से सुनकर मेम साहब संयत न रह सकीं। उन्होंने तरुण को आत्मसमर्पण कर दिया। उन्हींकी सलाह से तरुण ने मुस्लिम धर्म अंगीकार कर लिया और वह ठाठ से लखनवी वेश में रहने लगा। शेरवानी, चूड़ीदार

पायजामा, किश्तीनुमा टोपी। मेम साहब उसे 'मुंशी' कहकर पुकारती थीं। मुंशी कहने से वह खुश होता था। उसका नाम जुगनू था। पर वह अपना परिचय मुंशी जगनप्रसाद कहकर देता था। जब उसने मुस्लिम धर्म अंगीकार कर लिया तो मुंशी मुश्ताक अहमद बन गया। तनख्वाह भी उसे अच्छी मिलने लगी थी। मेम साहब की कृपादृष्टि ने उसे और भी अनेक सुविधाएं दे दी थीं। मुसलमान होने के बाद उसका सम्बन्ध अपने घरवालों से छूट गया था और अब वह इस बात को लगभग भूल ही चुका था कि वह जन्मजात भंगी है। साहब के बैरा-चपरासी, जो अधिकतर ईसाई-गोआनी थे, किसी तरह उसकी जाति के सम्बन्ध में जान गए थे। वे उससे घृणा करते और उसे तुच्छ समझते थे। अब मुंशी मुश्ताक अहमद का तो दौरदौरा ही और था। अब वे बैराओं-खानसामाओं, चपरासियों को क्या गिनते थे! वह उनकी तनख्वाहें बांटते, मेम साहब का हिसाब-किताब रखते, एकान्त में मेम साहब की सेवा करते। यह बात वे सब जान गए थे और ऊपरी मन से उसकी आवभगत करते थे। मेम साहब तो चाहती थीं कि वे उसे विलायत ले जाएं, उन्होंने यह बात उससे कह भी दी थी। परन्तु दुर्भाग्य से अकस्मात् ही प्रसव-वेदना में मेम साहब का देहान्त हो गया और उनके मरने पर साहब ने मुंशी को बर्खास्त कर दिया। मुंशी खिन्न मन कुछ दिन बम्बई की गलियों की खाक छानता फिरा। पर कहीं उसकी नौकरी न लगी। छोटी-मोटी खानसामागिरी की नौकरी अब उसे जंचती न थी। मेम साहब से वह एक अच्छा-सा सर्टिफिकेट भी नहीं ले सका था। जब उसकी जेब में पाई भी न रह गई, और यार-दोस्तों से वह इतना कर्ज़ ले चुका कि सब उससे कतराने लगे तो उसने बम्बई छोड़ दी। बिना टिकट सफर करके वह अपने घर आ गया। परन्तु अब उसके मिज़ाज और आदतें बदल चुकी थीं। भंगी का घर और वहां का वातावरण जिसमें गन्दगी, दारिद्र्य, मानसिक दासता, अन्धविश्वास, कलह और रूढ़िवाद का बोलबाला था, अब उसके लिए सर्वथा अपरिचित हो गया था। वहां दो-चार दिन रहना भी उसके लिए दूभर हो गया। उसकी सगी मां मर चुकी थी और उसका बाप इस बुढ़ापे में एक जवान मेहतरानी चार सौ रुपये में खरीद लाया था, जिससे उस बूढ़े की अब नित्य जूतम-पैजार होती रहती थी। उसकी एक बहन अपने आदमी को छोड़-कर उसी गांव में दूसरे घर बैठ गई थी, दूसरी उसी घर में अपने चार बच्चों

के साथ रहती थी। उसके बाप की उम्र अब यद्यपि साठ को पार कर गई थी, पर बच्चे अभी तक होते जाते थे। इस समय उसके चार छोटे-छोटे बच्चे थे, जिनमें एक नई औरत से था जो रोगी रहता था। उसका जिगर बढ़ गया था, पेट बढ़ गया था, और हाथ-पैर सूख गए थे। इलाज कुछ नहीं होता था, सयाने लोगों की झाड़-फूंक होती थी। गंडे-तावीज़ बांधे जाते थे, मुर्गा और सुअर की बलि दी जाती थी। बच्चा दिनभर रें-रें करता रहता था। और उसकी मां दिनभर गाली-गुप्ता, रोना-पीटना लगाए रहती थी। वह समझती थी कि उसकी ननद ने टोना कर दिया है, वह व्यंग्य-बाणों से उसीको कोसती रहती थी। उसके बच्चे और ये बच्चे सब नंग-धड़ंग, गन्दे और आवारा सुअरों के साथ खेलते, ऊधम मचाते रहते थे। उसकी बहन का बड़ा लड़का जो अब बारह-चौदह बरस का था, बहुत आवारागर्द और सरकश था। वह बहुधा अपनी मां पर हाथ छोड़ बैठता था। गन्दी गाली बकना तो साधारण बात थी। घर में सब मिलाकर दस-बारह प्राणी थे, जिनके खाने-पीने, रहने-सोने का कोई नियम-मेल ही न था। वे सब एक ही झोंपड़े में, जो दिन में दो बार चूल्हे के धुएं से भर जाता था, पशुओं की भांति रहते थे। सबसे बड़ी बात यह थी कि घर-भर में सिर्फ एक ही चारपाई थी जिसपर उसका बूढ़ा बाप रात-दिन पड़ा-पड़ा हुक्का गुड़गुड़ाता, खांसता-थूकता और गालियां बकता रहता था। बाकी सब लोगों को ज़मीन पर ही सोना पड़ता था।

दो ही चार दिन में उसका मन ऊब उठा। वह घर से निकला। पहले मुरादाबाद गया, पर वहां उसे कोई नौकरी न मिली। फिर वह शिमला गया, पर वहां भी उसे असफलता ही हाथ लगी। वहां से वह देहरादून आया, जहां एक अंग्रेज़ परिवार में उसे बावर्ची के काम की नौकरी मिली। पर प्रथम तो वह ठीक-ठीक बावर्ची का काम करना नहीं जानता था, दूसरे उसकी आवश्यकताएं पूरी नहीं हो पाती थीं, तीसरे उस अंग्रेज़ की औरत बड़ी बद-दिमाग थी। वह उसे बात-बात पर पीट तक देती थी। यहां उसकी मुंशीगिरी हवा हो गई थी। इसी समय उसे दुर्बुद्धि सूझी और वह चोरी करके भागा, परन्तु रंगे-हाथों पकड़ा गया। और आठ मास की जेल की सज़ा हुई। जेल काटकर जब वह बाहर आया तो युग बदला हुआ था। अंग्रेज भारत को छोड़ चले थे। कांग्रेस का राज्य हो चुका था। उसने दिल्ली, मेरठ, मुरादाबाद फिर

कहीं नौकरी करने को हाथ-पैर मारे। दिल्ली में एक प्रेस में स्याही लगाने की उसे नौकरी मिली भी, पर एक सप्ताह से अधिक न चली। वह वहां से निकाल दिया गया। अब वह हर ओर से विवश होकर फिर घर आ गया। उसका बाप मर चुका था। और सौतेली मां ने दूसरा आदमी कर लिया था। वह उसीके बाप के घर में रहता था। उसकी बहन और उसके बच्चे वहां से निकाल दिए गए थे। वह बच्चों को लेकर दूसरे गांव चली गई थी। उसके भाई अब सयाने हो गए थे। सबसे बड़ा नैनीताल चला गया था, वहां उसकी नौकरी लग गई थी। बाकी यहां आवारागर्दी करते फिरते थे। जुगनू को उसकी सौतेली मां ने और उसके आदमी ने वहां एक दिन भी ठहरने न दिया। साफ कह दिया कि उस घर में उसके लिए जगह नहीं है। आत्मीयता और घरेलू वातावरण की तो बात क्या थी, वहां तो पैर रखने तक की गुंजाइश न थी।

वह भाइयों से अपने भाई का पता पूछकर नैनीताल आया। यहां आकर देखा, उसका भाई सरकारी कोठियों में मेहतर का काम करता है। कभी अपने मालिक साहब लोगों के साथ वह नैनीताल आ चुका था, तब वह मुंशी बना हुआ था। पर अब तो यहां का वातावरण ही बदला हुआ था। ब्रूकहिल पर जहां कभी किसी हिन्दुस्तानी को जाने तक की इजाजत न थी, गोरे ही गोरे रहते थे, अब एम० एल० ए० और ऐसे ही दूसरे लोगों की भरमार हो रही थी जिनमें बहुतेरे देहाती-गंवार और उजड्ड थे। न ये सफाई-पसन्द थे, न शाह-खर्च। बड़ी-बड़ी कोठियों में मिनिस्टर और सेक्रेटरी जो रहते थे, वे सब देखने में तो उज्ज्वल खद्दरपोश थे, पर नौकर-चाकरों के लिए सूखे ठूंठ थे। अब न नौकरों को इनाम-बखशीश मिलती थी, न आराम। खासकर भंगी के लिए तो अब केवल भंगी के काम को छोड़कर दूसरा काम ही न था। ये अछूतोद्धार करने वाले कांग्रेसी न उन्हें छू सकते थे, न उनका छुआ खा सकते थे। केवल उन्हें हरिजन का खिताब देकर उनके प्रति अपनी सब जिम्मेदारी से पाक-साफ हो गए थे।

उसके भाई की हालत यहां गांव से भी बदतर थी। तनख्वाह उसे अवश्य पैंतालीस रुपया माहवार मिलती थी, परन्तु उसे दिन-भर निरन्तर पायखाने साफ करने पड़ते थे। हर पांच मिनट में उसे टोकरा उठाकर कमोड साफ करना पड़ता था और उसका यह सिलसिला सुबह चार बजे से लेकर रात के

बारह बजे तक चलता था।

दो ही दिन में यहां से उसका मन भिन्ना गया और वह भाग खड़ा हुआ। एक बार उसने फिर गांव जाने की सोची, पर उसका मन आगे न बढ़ा। वहां जाए कहां ? रहे कहां ? करे क्या ? वह जीवन से निराश हो गया। बार-बार उसे अंग्रेज़ याद आ रहे थे, जिनके संसर्ग से वह भंगी से मुंशी बन गया था। उसका जीवन बदल गया था। परन्तु अब वह फिर भंगी का भंगी था। उसके सुधार की, विकास की अब कोई आशा नहीं थी। वह कभी निराशा में डूब-उतराकर आत्मघात की सोचता, कभी क्रोध में भरकर कांग्रेसियों को गाली देता, कभी दुःख में भरकर रो पड़ता। बहुधा उसे भूखा सड़क के किनारे सोना पड़ता। भंगी का काम वह कर ही न सकता था और दूसरा काम कोई उसके अनुकूल मिलता न था। अब करे तो क्या करे ? वह फिर मुरादाबाद आ गया। वहां उसने राज-मज़दूरों के साथ गारा-मिट्टी ढोने का काम शुरू किया। वहां उसने सुना—दिल्ली में बहुत मकान बन रहे हैं। मज़दूरी भी खूब अधिक मिलती है। वहां काम बहुत है। बस उसने दिल्ली आने की ठान ली और अन्ततः वह एक रात मुरादाबाद पैसेन्जर से वहां से रवाना होकर दिल्ली आ पहुंचा।

२

दिल्ली में बड़ी भीड़भाड़ थी। लालकिले पर तिरंगा फहराया जाने वाला था। सैनिक परेड और झांकियां निकलने वाली थीं। दूर-दूर से लोग इन्हें देखने आए थे। जुगनू की धज इस समय ऐसी थी कि वह इस समय न मुंशी जगनपरसाद था, न मुश्ताक अहमद। उसने रात-भर जागकर सफर किया था। रात उसने कुछ खाया भी नहीं था। इससे भूख और थकान से उसका शरीर पस्त हो रहा था। कपड़े भी उसके बहुत गलीज़ थे। स्टेशन से बाहर निकलकर उसने जेब में हाथ डाला—कुल तीन रुपये और कुछ रेज़गारी उसकी जेब में थी। कुछ देर वह रेज़गारी को गिनता रहा। फिर उसने अपने चारों ओर फैली हुई भीड़भाड़ को देखा। सब अपनी-अपनी धुन में थे। नर-नारियों के

साथ मोटरों, स्कूटरों, मोटर-रिक्शाओं की दौड़-धूप ऐसी थी कि जिसका अन्त ही न था। वह बड़ी देर तक चुपचाप खड़ा दिल्ली की चहल-पहल देखता रहा। वह सोच रहा था कि वह क्या करे, कहां जाए ? पेट में उसके चूहे कूद रहे थे और भूख तेज़ होती जा रही थी। पर वह यह भी जानता था कि ये पैसे तो आज ही पेट में चले जाएंगे, कल वह क्या खाएगा। सबसे बड़ा सवाल यह था कि वह अब क्या कहकर लोगों को अपना परिचय दे। मुश्ताक अहमद बनने से तो अब कोई लाभ ही नहीं है। मुसलमान सब चले गए पाकिस्तान। उनके साथ उनका रुआब, दबदबा, धौंस और शोखी भी चली गई। जो मुसलमान रह गए हैं, वे अब अपने को अधीन प्रजा के रूप में देखते हैं। उसकी वे किसी प्रकार की सहायता करेंगे, इसकी उसे कोई आशा न थी। इसके अतिरिक्त हिन्दू रहने ही में भलाई थी। उसे कहीं खड़े होने की ठौर मिल सकती है। परन्तु हिन्दू होते ही वह भंगी भी हो जाएगा॥ यही बात याद कर उसका मन घृणा से भर गया। बहुत बार उसका मन हुआ था कि वह ईसाई हो जाए, पर देशी ईसाइयों की दुरवस्था वह देख चुका था। इसके अतिरिक्त मुसलमानों की तरह अब अंग्रेज़ों की जोत भी तो बुझ गई। देशी ईसाइयों का भला भारत में क्या स्थान हो सकता है। खूब सोच-समझकर उसने मुंशी जगनपरसाद ही रहने का निर्णय किया। मुंशी शब्द पर उसने ज़ोर दिया। वह धीरे-धीरे कम्पनी बाग की ओर चला। बाग का उसने एक चक्कर लगाया। फिर वह लालकिले की ओर गया। वहां आदमियों का ठठ जुड़ता जा रहा था। बेतहाशा भीड़ थी। भीड़ को चीरता हुआ वह दरियागंज की ओर बढ़ा, जहां झांकियां आने वाली थीं। अभी दस ही बजे थे और सैनिक टैंक और दल आने आरम्भ हो गए थे। वह एक ओर खड़ा होकर यह सब देखता रहा। परेड खत्म होते-होते बारह बज गए। भीड़ अब घटने लगी थी। वह भी जामा मस्जिद की ओर बढ़ा। भूख उसे अब बेचैन कर रही थी। हिन्दू-मुस्लिम प्रश्न एक ओर रखकर वह अब किसी सस्ते मुसलमानी रेस्टोरेन्ट में सालन-रोटी खाना चाह रहा था। इसी समय उसकी नज़र भीड़ में आते हुए एक व्यक्ति पर पड़ी। उसे देखते ही उसका चेहरा खिल उठा। उसने लपककर पुकारा, 'भाई साहब! भाई साहब!'

जिस पुरुष को 'भाई साहब' कहकर पुकारा गया था, वह भी कोई तीस-

पैंतीस वर्ष का तरुण था। यह पुरुष दुबला-पतला, रोगी-सा था। उसके चेहरे की हड्डियां उभरी हुई थीं, परन्तु इस समय वह बगुले के पर के समान उज्ज्वल खादी का कुर्ता पहने हुए था।

एक दृष्टि में उसने जुगनू को नहीं पहचाना, पर थोड़ी ही देर में उसके चेहरे पर मुस्कान छा गई। उसने कहा, 'अरे, तुम हो मुंशी ? लेकिन यह तुमने अपनी क्या हालत बना रखी है ? तुम तो भई, एकदम भंगी बने हुए हो।'

तरुण का नाम शोभाराम था। वह पंजाब के जिला गुरुदासपुर का निवासी था। पांच साल पूर्व उसने अर्थशास्त्र और इतिहास में एम० ए० पास किया था। वह कांग्रेस का एकनिष्ठ कार्यकर्ता था। कांग्रेस के काम से ही उसे कई बार जेल जाना पड़ा था। जेल ही में उसकी मुलाकात जुगनू से हुई थी। शोभाराम सदा का मरीज़ था। उसे श्वास की बीमारी थी। अपच भी रहता था। जेल में वह एक बार सख्त बीमार हो गया था। तब जुगनू ने उसकी बड़ी सेवा की थी। जुगनू की वह सेवा शोभाराम भूला नहीं था। इसीसे उसे देखते ही वह प्रसन्न हो गया। परन्तु उसके मलिन वेश को देखकर जो उसने उसे व्यंग्य से भंगी कहा, उसे सुनकर जुगनू सिटपिटा गया। वह वास्तव में भंगी है, यह तो शोभाराम जानता न था।

शोभाराम ने उसके कन्धे पर हाथ धरकर कहा, 'क्या कर रहे हो ?'

'कुछ कर-धर रहा होता तो क्या यह हालत बनती ?'

शोभाराम ने सिर से पैर तक एक बार उसकी ओर देखा। फिर हंसकर कहा, 'वाह, क्या धज है, यह खाकी पतलून, और बेतुकी कमीज़। साफ ज़ाहिर है कि यह तुम्हारी अपनी नहीं है। किसीकी चुरा लाए हो या जामा मस्जिद से खरीद ली है।'

जुगनू हंस पड़ा। उसने ज़रा लजाते हुए कहा, 'भाई साहब, आप जो भी चाहें, कह लीजिए।'

'अरे भाई, यह ज़माना क्या पतलून पहनने का है ? खद्दर का कुर्ता और धोती।' शोभाराम मुक्त भाव से हंसा। फिर कहा, 'खैर, चलो अब घर चलें।' उसने इधर-उधर देखा। एक स्कूटर खाली जा रहा था। उसे रोक दोनों उसपर जा बैठे। स्कूटर पर बैठकर शोभाराम ने कहा, 'भई मुंशी, क्या नाम है तुम्हारा ? लो देखो, मैं नाम ही भूल गया। बड़ी खराब याददाश्त हो गई

है मेरी।'

'मेरा नाम जगनपरसाद है—मुंशी जगनपरसाद।'

'ऐं ? क्या कहा ?' शोभाराम ने आंखों में आश्चर्य भरकर कहा।

'मुंशी जगनपरसाद।'

'यह कब से ?'

'बस, जब से पैदा हुआ तभी से।' जुगनू ने हंसकर कहा।

'लेकिन भई, तुम तो मुसलमान हो।'

'जी नहीं। वह तो मैंने जेल में झूठा ही परिचय दिया था।'

'कमाल हो गया। तो तुम हिन्दू हो ?'

'जी हां, जी हां।' जुगनू ने हंसकर मुख फेर लिया।

'बहुत खासे,' शोभाराम ने कहा। परन्तु जुगनू घबरा रहा था कि कहीं शोभाराम उसकी जात न पूछ बैठे। पर शोभाराम ने और जात-पांत की बात नहीं की। वह इधर-उधर की बात करता रहा।

घर आ गया। शोभाराम ने घर में आकर पत्नी से कहा, 'यह मेरे दोस्त मुंशी जगनपरसाद हैं। इनके लिए ज़रा गुसलखाना ठीक कर दो और एक साफ धुली धोती और कुर्ता भी वहां रख दो।' फिर जुगनू की ओर घूमकर कहा, 'भई मुंशी, अब तुम नहा लो और कपड़े बदल लो जिससे तुम्हारी सूरत भले आदमी जैसी हो जाए। फिर खाना खाकर और बातचीत होगी।' जुगनू चुपचाप उठकर गुसलखाने में घुस गया। दिल उसका धड़क रहा था। वह सोच रहा था, देखो, अब विधाता क्या खेल दिखाता है।

३

अपने इधर के जीवन में पहली ही बार गुसलखाने में फव्वारे के नीचे बैठकर, बढ़िया सुगन्धित साबुन लगाकर वह नहाया, नहाकर स्वच्छ खद्दर की धोती और कुर्ता पहना तो उसका रूप ही बदल गया। वह एक सलोना तरुण-सा प्रतीत होने लगा। आईने के सामने खड़े होकर बड़ी देर तक वह अपनी छटा निहारता रहा। बाहर आकर जब वह बैठकखाने में शोभाराम के पास गया तो शोभाराम दो-तीन मित्रों

से वार्तालाप कर रहा था। उसे तो उस सुसज्जित ड्राइंगरूम में भीतर कदम रखते झिझक हो रही थी। पर उसे देखते ही शोभाराम ने कहा, 'आओ। भीतर चले आओ, मुंशी भाई। ये मेरे अन्तरंग मित्र यहां बैठे हैं। इनसे परिचय प्राप्त करो। देखो ये हैं बाबू दीनानाथ टण्डन, इलाहाबाद बैंक के मैनेजर। और आप हैं मेरे रिश्ते के मौसा श्री मल्होत्रा, कालेज में प्रोफेसर हैं। और आप हैं डाक्टर खन्ना, मेडिकल कालेज के इन्चार्ज। और ये हैं मेरे जेल के मित्र मुंशी...मुंशी...' शोभाराम जगनपरसाद का नाम भूल गया। वह मुस्कराकर उसकी ओर देखने लगा।

जुगनू ने सबको हाथ जोड़कर नमस्कार किया और कहा, 'मेरा नाम जगन-परसाद है—मुंशी जगनपरसाद।' सबने उठकर उससे हाथ मिलाया। सबने कहा, 'आपसे मिलकर हमें बड़ी खुशी हुई है। मुंशीजी, आइए बैठिए' और जुगनू किसी तरह साहस बटोरकर अपने जीवन में पहली ही बार भद्र पुरुष की भांति भद्र पुरुषों के बीच आकर कुर्सी पर बैठ गया। डाक्टर खन्ना ने सिगरेट उसकी ओर बढ़ाया। अंग्रेज़ों की सोहबत में रहकर और लखनऊ के शायरों की सोहबत करके जुगनू अदब-कायदे में पूरा मश्शाक हो गया था। उसने तपाक से उठकर सिगरेट उठाई। शुक्रिया कहा। डाक्टर ने उसकी सिगरेट जलाकर कहा, 'आप शायद पहली ही बार दिल्ली आए हैं, मुंशीजी ?'

'जी हां, कम से कम स्वतन्त्रता के बाद पहली बार।'

'जुलूस तो आज का खूब शानदार रहा, आपको पसन्द आया ?'

'जी हां, कुछ झांकियां तो गजब की थीं।'

'आपकी बातचीत और लहजों में तो लखनवी झलक है। क्या आप लखनऊ रह चुके हैं ?'

शोभाराम ने हंसकर कहा, 'लखनऊ में रहने की आपने खूब कही। ये एक नामी-गरामी शायर हैं। लखनऊ के बड़े-बड़े मुशायरों में इन्होंने अपने जौहर दिखाए हैं। जेल में तो हमारा वार्ड इन्हींकी गज़लों से गुलज़ार रहता था।'

'वाह, यह बात है, तो भई, इस इतवार को मेरे यहां दावत रही। सभी दोस्तों को आना होगा। वहां मुंशीजी की शीरीं ज़बान की चाशनी चखने को मिलेगी, उम्मीद है।'

'अजी वाह, अकेले मुंशी से क्या होगा। दो-चार और शायर आएं तो बहार

रहे। एक छोटा-सा मुशायरा ही हो जाए तो लुत्फ है।' प्रोफेसर मल्होत्रा ने कहा।

शोभाराम ने कहा, 'भई मुंशी, मल्होत्रा साहब भी एक अच्छे शायर हैं। खूब नोंक-झोंक रहेगी। खन्ना साहब, ज़रा रयाज़ साहब और बेदर्द साहब को भी बुलवा लीजिए। और रौनक साहब को बुलाना भी न भूलिए।'

'ज़रूर, ज़रूर। खूब लुत्फ रहेगा।'

जुगनू ने मुस्कराकर सिर झुका लिया। इसी समय नौकर ने आकर 'खाना तैयार है', यह सूचना दी। सब लोग उठे और सबके साथ जुगनू भी धड़कते कलेजे से भोजन की टेबुल पर आ बैठा। साफ-सुथरी टेबुल, सुसज्जित और सुंदर क्राकरी, स्वादिष्ट उत्तम सब प्रकार के खाने, गपशप के लम्बे-चौड़े कहकहों के बीच दावत खत्म हुई और जुगनू उसी दावत में अपना सब संकोच, भंगीपन, धो-बहाकर जन्मजात अभिजात्य, सभ्य-शिष्ट पुरुष की भांति सबके साथ खाना खाकर अब ड्राइंगरूम की सुखद कोच पर पड़ा सुगन्धित सिगार पी रहा था। मित्रगण राजनीति, विज्ञान और देश-विदेश की भांति-भांति की बातें कर रहे थे। जुगनू उन बातों को सुन रहा था, भूत-भविष्य की सोच रहा था। धुएं के छल्ले बना रहा था और बीच-बीच में 'हूं-हां' कर देता था।

जब दोस्त उठने लगे तो खन्ना ने उससे हाथ मिलाते हुए कहा, 'मुंशीजी, भूलिएगा नहीं। अगला इतवार शाम को आठ बजे।'

'शुक्रिया, बहुत-बहुत शुक्रिया।' जुगनू ने हंसते हुए झुककर कहा। सबसे हाथ मिलाए, नमस्ते किया।

जब सब चले गए तो शोभाराम ने कहा, 'भई मुंशी, अब ज़रा मुझे एक बार दफ्तर जाना पड़ेगा। चाय के वक्त तक आ जाऊंगा। तुम तब तक आराम करो। थके हुए हो। फिर रात को डटकर बातें होंगी।'

चलते वक्त शोभाराम ने अपनी पत्नी को भी आवाज़ देकर कहा कि वह उसकी आवश्यकताओं का ख्याल रखे और शोभाराम चले गए। जुगनू उस सुसज्जित ड्राइंगरूम में सोफे पर पैर फैलाकर रैड एण्ड व्हाइट का कश खींचने लगा।

४

शोभाराम की पत्नी का नाम पद्मादेवी था। पद्मादेवी जैसी सुन्दरी थी, वैसी ही विदुषी स्त्री थी। पंजाब से उसने बी० ए० पास किया था और हिन्दी में प्रभाकर परीक्षा भी दी थी। वह बहुत खुशमिज़ाज, फुर्तीली और सुघड़ गृहिणी थी। उसे संगीत का भी शौक था। एक संगीत-शिक्षक उसे सितार सिखाने आता था। विवाह हुए अब पांचवां साल बीत रहा था, परंतु अभी कोई संतान नहीं हुई थी। परन्तु इस ओर उसका कोई ध्यान भी न था। न शोभाराम ही की इधर प्रवृत्ति थी। उसका कद लम्बा, शरीर छरहरा, और रंग कदली-स्तम्भ के समान गोरा था। आंखें बड़ी-बड़ी, होंठ पतले और दांतों की बत्तीसी अतिशय सुन्दर-सुडौल थी। आयु उसकी अभी छब्बीस ही बरस की थी। उसका स्वस्थ, भरा हुआ, लचकदार शरीर ऐसा था कि जब वह चलती थी तो प्रतीत होता था कि यौवन छलक रहा हो।

पांच बज चुके थे, परन्तु शोभाराम अभी तक भी दफ्तर से नहीं लौटे थे। जुगनू काफी देर आरामदेह पलंग पर पैर पसारकर सो चुका था। अब वह एक सोफे पर बैठा सिगरेट पी और दीवारों पर लगी तस्वीरें देख रहा था। पद्मा तीन-चार मासिक पत्रिकाओं को लेकर वहां आई। मासिक पत्र उसके सामने टेबुल पर रखकर उसने कहा, 'उनके आने में तो बहुत देर हो रही है। आप चाय पी लीजिए।'

पद्मादेवी को देखकर जुगनू की आंखें चकाचौंध हो गईं। वह सिगरेट फेंककर एक झटके के साथ उठ खड़ा हुआ। ऐसा रूप उसने कभी देखा न था, ऐसा निस्संकोच व्यवहार उसके लिए सर्वथा अनभ्यस्त था। पद्मा को देखकर वह एक प्रकार से घबरा गया। बड़ी कठिनाई से उसने केवल इतना ही कहा, 'नहीं, अभी ऐसी जल्दी नहीं है। भाई साहब को आ जाने दीजिए।'

'वह तो कभी-कभी बड़ी देर में आते हैं।'

'तो क्या हरज है, आ जाने दीजिए।'

पद्मा ने एक नज़र जुगनू को देखा, वह स्वस्थ तरुण तो था पर उसके संकोच और व्यवहार में कुछ ऐसा दैन्य था जो पद्मा को कुछ असाधारण-सा लगा। पर उसने इस बात पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया। घर में उसके पति के मित्र

आते ही रहते थे। और बहुधा उसे अकेले ही उनका आतिथ्य करना पड़ता था। उसने अधिक आग्रह नहीं किया। वह चली आई।

परन्तु और एक घण्टा बीत गया, पर शोभाराम अभी तक नहीं आए। तब पद्मादेवी चाय और नाश्ता लेकर फिर जुगनू के पास गई और ट्रे टेबल पर रखकर कहा, 'पता नहीं वे कब आएं, आप चाय पी-लीजिए और मन हो तो तनिक टहल आइए। खाना नौ बजे तैयार हो जाएगा।'

जुगनू ने कोई उत्तर नहीं दिया। वास्तव में वह समझ ही नहीं पा रहा था कि ऐसे अवसरों पर कैसा शिष्टाचार प्रदर्शित करना चाहिए। वह चुपचाप संकोच-भरे नेत्रों से एक बार पद्मा की ओर देखकर चुप रह गया। पद्मादेवी चली गई।

जुगनू ने चाय पीकर फिर सिगरेट जलाई। पद्मा की मूर्ति इस समय उसके मानस-नेत्रों में घूम रही थी। वह अपने भूत-भविष्य पर भी विचार कर रहा था। परन्तु उसे सबसे बड़ा भय इस बात का था कि कहीं उसका भंडाफोड़ न हो जाए और वह भंगी है, यह प्रकट न हो जाए। अचानक उसे स्मरण हो आया, पद्मा ने कहा था कि वह ज़रा टहल आए। वह उठा और चुपचाप बाहर निकल गया। बाहर जाने की उसने पद्मा को सूचना भी नहीं दी। अब वह स्वच्छ खद्दर के कुर्ते और पायजामे में एक सभ्य, शिष्ट पुरुष दीख रहा था। परन्तु जूता उसका बहुत गन्दा और पुराना था। उसकी जेब में केवल तीन रुपये थे, कुछ रेज़गारी भी थी। वह घूमता हुआ बाज़ार तक चला आया और एक सस्ता-सा जूता खरीद लिया। पुराना जूता उसने वहीं फेंक दिया।

बहुत देर तक वह इधर-उधर घूमता रहा। रह-रहकर उसका अपना गांव का घर, वहां की गन्दगी, चारों ओर घूमते हुए सुअर, और उनके बीच खिलते-रोते उसके भाई-भतीजे उसकी आंखों में घूमते, फिर सबके ऊपर पद्मा की मोहिनी मूर्ति, शोभाराम का सभ्य, शिष्ट घर, और उस घर में इस प्रकार आत्मीय की भांति व्यवहार उसकी चेतना को आहत कर रहे थे। सोचते-सोचते कभी उसका कलेजा धड़कने लगता, कभी वह घबरा उठता, कभी उसका मन कहता, साहस कर और देख—भाग्य कहां ले जाता है।

घूमता हुआ वह फिर लालकिले के सामने के मैदान में आ गया। हरी-हरी घास पर वह बैठ गया। धीरे-धीरे उसने अपने चित्त को स्वस्थ किया, बैठे-

बैठे उसने सिगरेट का पूरा पैकेट फूंक डाला। चारों ओर बिजली की बत्तियां जगमगा रही थीं। इधर-उधर नर-नारी आ-जा रहे थे। हठात् उसके मन में धारणा हुई कि क्या यह भी सम्भव है कि उसे पद्मा जैसी पत्नी मिल जाए, शोभाराम के जैसा उसका घर हो, और वह उसी तरह रहकर अपना शेष जीवन व्यतीत करे जैसा शोभाराम करता है। उसकी चेतना में एक प्रबल आकांक्षा ने चोट करनी आरम्भ कर दी।

अब साहस और स्थिरता उसके मन में आ रही थी। वह कह रहा था—अब तो नाव नदी में डाल दी गई है, इसे बहने दिया जाए। कौन यहां उसे पहचानने आएगा और कौन उसे भंगी कहेगा। परन्तु स्वयं उसका मन ही उसे भंगी कह रहा था। उसने एक झटका देकर अपने मन को रोका। उसके मुंह से शब्द निकले, 'कौन, कौन मुझे भंगी कहता है? मैं हूं मुंशी जगनपरसाद।' वह उठा और घर की ओर चला।

५

खाने-पीने से निवृत्त होकर शोभाराम ने सिगरेट उसकी ओर बढ़ाते हुए कहा, 'अब बताओ मुंशी, क्या इरादा है?'

'भाई साहब जैसा कहें।'

'तो दिल्ली में रहने का इरादा पक्का है?'

'जी हां, मगर कोई अच्छी-सी नौकरी मिलनी चाहिए।'

'कैसी नौकरी?'

'कैसी भी,' जुगनू घबरा गया। वह भला क्या नौकरी कर सकता था। बैरा या खानसामा-खिदमतगार की नौकरी। वह शोभाराम का मुंह ताकने लगा।

'तुमने क्या कोई नौकरी की है?'

'न,' जुगनू ने झूठ बोला।

'तो अब तक क्या करते रहे हो?'

'यही कोई छोटा-मोटा धन्धा, गंवई-गांव में।'

'गांव में क्या तुम्हारी कुछ ज़मीन-जायदाद भी है?'

जुगनू का कण्ठ सूख गया। उसने जीभ से होंठों को तर करते हुए कहा, 'नहीं, थी, सब भाई-बन्दों ने छीन ली। बहुत मामला-मुकदमा हुआ।'

'चलो खैरसल्ला, घर पर कौन-कौन है ?'

'कोई नहीं।'

'तो जोरू न जाता, अल्ला मियां से नाता—यही बात है।' शोभाराम ने हंसकर कहा।

जुगनू भी एक फीकी हंसी हंसकर चुप हो गया।

'खैर, तो अब कैसी नौकरी चाहते हो ?'

'जैसी भी मिल जाए।'

'पढ़े-लिखे क्या हो ?'

जुगनू फिर लड़खड़ाया। उसने कहा, 'स्कूल पास किया है।'

'क्या मैट्रिक ?'

'हां, हां,' जुगनू ने हकलाते हुए कहा।

'चलो बहुत है, हमारे कई मिनिस्टर मैट्रिक भी नहीं हैं। कुछ काम-धन्धा भी जानते हो ?'

जुगनू का मन हुआ कि कह दे, 'खाना पकाना जानता हूं।' पर उसने मन को रोककर कहा, 'जानता तो नहीं हूं, पर मैं सब तरह की सख्त मेहनत करने को तैयार हूं।'

'यह तो मुंशी, बहुत अच्छी बात है। अच्छा सुनो, मैं प्रांतीय कांग्रेस का जनरल सेक्रेटरी हूं। क्यों न तुम मेरे सहायक बन जाओ। अभी तुम्हें पचहत्तर रुपया मासिक मिलेगा। हमारे साथ यहीं रहना-खाना। तकलीफ न होगी। मुझे एक भरोसे के आदमी की बड़ी सख्त ज़रूरत है।'

'भाई साहब, मैं आपकी सेवा में जान लड़ा दूंगा।'

'बस, तो यही ठीक रहा। कल से तुम दफ्तर चलो। ऐसा कुछ ज़्यादा काम नहीं है।'

'ज़्यादा होगा भी तो क्या ? आप इत्मीनान रखिए।' जुगनू ने आश्वासन दिया।

इसके बाद बस थोड़ी देर गप-शप करके शोभाराम ने कहा, 'अच्छा, अब सोओ मुंशी, तुम्हारे लिए वह बाएं किनारे वाला कमरा ठीक करा दिया गया है।

हां, तुम्हें रुपये-पैसे की तकलीफ हो तो कह देना।'

'बस खाली हाथ हूं भाई साहब।'

'तो कल एक महीने की तनख्वाह पेशगी दिला दूंगा। अपने कपड़े-लत्ते तथा आवश्यक समान जुटा लेना। हंसी आती है यार, तुम्हारी उस पतलून पर। भला यह भी पतलून पहनने का वक्त है। बगुले के पर के समान खद्दर में तुम कितने अच्छे लगते हो!'

जुगनू ने कोई जवाब न दिया। शोभाराम ने उसे उसका कमरा दिखाया और उठकर आराम करने चला गया।

६

बम्बई वाली मेम साहब की नौकरी और सोहबत का लाभ अब जुगनू ने यहां लिया। प्रबन्ध, व्यवस्था और प्रत्येक वस्तु को करीने से सजाने की जो आदत उसे उस नौकरी में पड़ गई थी, वह यहां काम आई। कांग्रेस कमेटी के दफ्तर में पूरी अन्धेरगर्दी थी। हफ्तों वहां झाड़ू नहीं लगती थी, न सफाई होती थी। कागज़, अखबार, पुस्तकें, रसीदें, चिट्ठियां सब इधर-उधर मारी-मारी फिरती थीं। कोई उन्हें संभालकर रखनेवाला न था। दफ्तर में केवल एक चपरासी था। वह बहुत बूढ़ा और सुस्त आदमी था। वह बैठा-बैठा ऊंघता रहता या कभी-कभार सेक्रेटरी के कहने से कोई कागज़-पत्र इधर से उधर ले जाता या डाक में चिट्ठियां छोड़ देता था। शोभाराम का भी इधर कोई ध्यान न था। वह एक परिश्रमी और ईमानदार आदमी था। पर उसका स्वास्थ्य ही ठीक नहीं रहता था और उसपर काम की ज़िम्मेदारी भी बहुत थी। ज़िले भर का उसे संगठन करना होता था। कभी स्वयंसेवकों की रैली करनी, कभी पत्रों में रिपोर्ट भेजनी, कभी मीटिंग की सूचनाएं भेजनीं, कभी दल के नेताओं से विचार-विमर्श करना। यह सब काम इतने थे कि उसे थका डालते थे। वह पूरे समय दफ्तर में बैठा भी नहीं रह सकता था। उसे भाग-दौड़ भी बहुत करनी पड़ती। इससे दफ्तर की अव्यवस्था का ढर्रा जैसा चला आता था वैसा ही चलता चला गया। शोभाराम एक सहायक की

तलाश में था, इसके लिए उसने कमेटी से अनुमति भी ले ली थी, पर उसे मन के योग्य आदमी नहीं मिल पाता था। जुगनू को उसने अपनी समझ में उपयुक्त ही समझकर यह काम सौंपा था। पहले दिन ही जुगनू को दफ्तर पहुंचाकर और उसे काम-काज समझाकर जब शोभाराम वहां से चला गया तो फिर लौटकर उसका आना शाम को ही हुआ। परन्तु जब वह शाम को आया तो उसने देखा कि दफ्तर की कायापलट हो गई है। कमरे और सहन की एकदम सफाई हो गई है। सब कागज़-पत्र करीने से रखे हैं, अखबारों की फाइलें तारीखवार ठीक कर ली गई हैं और मेज़-कुर्सियां, आलमारी भी अपनी पुरानी जगहों से हटाकर करीने से लगा दी गई हैं। यह सब देखकर शोभाराम प्रसन्न हो गया। उसने जुगनू की पीठ ठोककर कहा, 'शाबाश मुंशी, भई तुम तो बड़े ही काम के आदमी हो। तुमने तो आज दफ्तर को दुलहिन की भांति सजा डाला।'

जुगनू ने कहा, 'भाई साहब, ये बातें तो होती ही रहेंगी। तुम बैठो, मैं अभी तुम्हारे लिए चाय बना लाता हूं। बस पांच मिनट लगेंगे।'

'नहीं भाई, कष्ट मत करो। अभी मुझे बहुत काम है, पूरी डाक देखनी है।'

'सो तुम देखो, मैं अभी चाय बनाकर लाता हूं। भला यह भी कोई काम है। यह तो मरना हो गया, वाह !' शोभाराम रोकता ही रहा, पर उसने तत्काल स्टोव जलाकर चाय बनाई। शोभाराम ने चाय पीते हुए कहा, 'मुंशी, तुम तो यार आदमी हीरा हो। लो एक प्याला तुम भी पिओ। और हां, ज़रा डाक तैयार करने में मेरी मदद करो। देखो, इन चिट्ठियों में जो कल-परसों की आई हैं, उन्हें छांट डालो। कई दिन से देख ही नहीं पाया। आज मैं डाक का काम खतम करके ही उठूंगा। कल वर्किंग कमेटी की मीटिंग है। पलक मारने की फुर्सत नहीं मिलेगी।'

वह काम में जुट गया और जुगनू ने भी सब चिट्ठियां छांट डालीं। फालतू कागजात फाड़ डाले गए। ज़रूरी कागज़ात फाइल किए गए। रजिस्टर में चढ़ाए गए। शोभाराम ने कहा, 'मुंशी, ज़रा इन चिट्ठियों को रजिस्टर में तो चढ़ा दो। और ये पते भी देख-देखकर लिख डालो।'

जुगनू ने झेंपते हुए कहा, 'भाई साहब, बात यह है कि लिखना मेरा बहुत ही खराब है।'

यह बात उसने अंग्रेज़ी में कही। सुनकर शोभाराम हंस दिया। वास्तव में

उसने इन्हीं दो दिनों में इधर-उधर के शेर सुना तथा बीच-बीच में अंग्रेज़ी बोल-कर अपनी योग्यता की धाक शोभाराम के ऊपर जमा ली थी। वह यह कल्पना भी न कर सकता था कि यह आदमी लिखना-पढ़ना बिलकुल नहीं जानता।

उसने हंसते-हंसते कहा, 'कोई बात नहीं, भाई, अभ्यास से सब ठीक हो जाएगा।'

उसने जल्दी-जल्दी सब काम पूरा किया। काम करते-करते दिये जल गए। शोभाराम ने काम समाप्त कर उठते हुए कहा, 'अभी मुझे ज़रा चीफ मिनिस्टर साहब के बंगले तक जाना है। वहां से शायद मुझे एज्युकेशन मिनिस्टर के पास भी जाना पड़े। सम्भव है घर लौटते-लौटते मुझे देर हो जाए। तुम घर जाओ। खाने के लिए मेरी प्रतीक्षा न करना। जिस चीज़ की आवश्यकता हो, पद्मा से कहना, संकोच न करना।'

'लेकिन भाई साहब, तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं है, और इस कदर मेहनत करके तुम अपने स्वास्थ्य को मिट्टी कर रहे हो। मेरी बात सुनो, घर चलो। खा-पीकर आराम करो। सुबह यह सब धन्धे देखना-भालना।'

'नहीं, नहीं भाई, सुबह मीटिंग है। मुझे आज ही रात को एजेंडा तैयार करना होगा और अभी चीफ मिनिस्टर से भी मिलना होगा। मगर मैं ज़्यादा देर नहीं लगाऊंगा।' इतना कहकर शोभाराम चला गया। जुगनू बड़ी देर तक चुपचाप कमरे में टहलता रहा। फिर उसने चपरासी को सफाई के सम्बन्ध में सख्ती से ताकीद की और वहां से चलता बना। इस समय उसका मन हलका और प्रसन्न था।

७

डाक्टर खन्ना का मुशायरा बहुत शानदार रहा। दावत में प्रान्तीय कांग्रेस के अध्यक्ष श्री राममनोहर सेठी और दिल्ली म्युनिसिपैलटी के चेयरमैन श्री अग्रवाल भी आए थे। शिक्षा-विभाग के डिप्टी मिनिस्टर श्री अत्रे और तीन-चार एम० पी० भी थे। जुगनू ने अजब प्रभावशाली लहजे में तरन्नुम में गज़लें पढ़ीं। सुनने वाले झूम-झूम उठे। असल बात यह थी कि जुगनू ने इसकी तैयारी अच्छी तरह

से की थी। उसे लखनऊ में अनेक मुशायरों में सम्मिलित होने के अवसर मिले थे। वहीं उसने तुकबन्दियां करनी आरम्भ कर दी थीं। उसकी कई गजलों को उसके लखनऊ के दोस्त और प्रसिद्ध शायर हसरत लखनवी ने एक प्रकार से पूरी की पूरी बदलकर उनमें जान ही डाल दी थी। वही गजलें उसने पढ़ीं और असल बात यह कि इस मजलिस में नगर के प्रतिष्ठित कनरसिया तो कई थे, पर अच्छा कवि कोई न था। दो-तीन साधारण शायर ही थे। इससे जुगनू की जोत जम गई। उसकी खूब प्रशंसा हुई। सबसे ज़्यादा प्रसन्न हो रहे थे जोगेन्द्रसिंह ग्रन्थी। दिल्ली के फर्स्ट क्लास मजिस्ट्रेट थे, कविता के शौकीन थे। समझते थे—स्वयं भी कुछ कह लेते थे, इसीसे वे सबसे आगे अपने कविता-ज्ञान का ढिंढोरा पीटने को सबसे ऊंची आवाज़ में वाह-वाह कर रहे थे। मजिस्ट्रेट थे—भला कौन उनकी हास्यास्पद चेष्टा पर हंस सकता था। फिर इस मजलिस में ऐसा गुणी-पारखी ही कौन बैठा था। बस जुगनू की धाक बंध गई। उसकी खूब वाहवाही हुई। मुशायरे के अन्त में सबने तपाक से उससे हाथ मिलाए। अपने-अपने घर आने के निमन्त्रण दिए। डाक्टर खन्ना ने भी उसकी खातिर-तवाज़ा में कोई कोर-कसर न रखी।

जुगनू ने मुस्कराकर सबका आदर साभार ग्रहण किया। अब दिल्ली के सम्भ्रान्त नागरिकों में उसका परिचय ही नहीं, प्रवेश भी हो गया। सबसे ज़्यादा उसपर रीझ उठी मिस शारदा, डाक्टर खन्ना की पुत्री। वह हंसते-हंसते आकर जुगनू के पास बैठ गई। अपनी आटोग्राफ कापी उसके आगे बढ़ाकर वह हंसती हुई उसकी ओर देखने लगी।

जुगनू ने कभी किसीको आटोग्राफ नहीं दिया था। वह शारदा का कुछ भी अभिप्राय न समझ उस छोटी-सी कापी को हाथ में लेकर उलट-पुलटकर देखने लगा।

शारदा ने हंसते हुए कहा, 'आटोग्राफ दीजिए।'

'ऐं'—कहकर जुगनू भी हंसने लगा।

शारदा ने अपना पैन खोलकर उसके हाथ में दे दिया। आटोग्राफ का मतलब जुगनू नहीं समझता था। उसने कहा, 'क्या लिखूं?'

'कुछ भी।'

उसने किसी तरह एक शेर लिख दिया। शारदा ने कहा, 'दस्तखत भी कीजिए।'

उसने दस्तखत कर दिए, 'मुंशी जगनपरसाद।'

'तारीख।'

जुगनू ने तारीख डालकर कापी उसके हाथ में दे दी।

शारदा दौड़कर गई—एक बड़ी कापी उठा लाई। उसने कहा, 'पूरी गज़ल लिख दीजिए।'

जुगनू घबरा रहा था। वह वास्तव में शुद्ध नहीं लिख सकता था। इसी समय डाक्टर खन्ना ने कहा, 'जा, जा शारदा, इन्हें तंग न कर। देख, खाना लगा कि नहीं।'

शारदा भीतर चली गई और तुरन्त ही वापस आकर कहा, 'जी, खाना लग गया, आइए।'

सब लोग उठकर भोजन पर बैठे। मजिस्ट्रेट जोगेन्द्रसिंह ने ज़रा ऊंचे स्वर से कहा, 'यहां आइए मुंशीजी, मेरे पास बैठिए।'

यद्यपि जुगनू का संकोच बहुत कम हो गया था, पर फिर भी एक झिझक तो बाकी थी ही। वह झिझकते हुए चुपचाप जोगेन्द्रसिंह के पास जा बैठा, उसकी बगल में बैठे श्री मल्होत्रा। उन्होंने धीरे से झुककर उसके कान में कहा, 'आप कायस्थ हैं न मुंशी जगनपरसाद?'

जगनपरसाद नाम से उन्होंने यह अनुमान किया था। सो अच्छा ही किया कि इस तौर पर प्रश्न किया, नहीं तो यदि पूछा जाता कि आप कौन जात हैं, तो निस्सन्देह जुगनू घबरा जाता। अब भी वह घबरा तो गया, उसने कहा, 'जी हां, जी हां, कायस्थ।'

'कौन, भटनागर या श्रीवास्तव?'

'जी, जी, श्रीवास्तव।' उसने सूखते हुए होंठों पर जीभ फेरी और फिर मुंह फेरकर मजिस्ट्रेट से बातचीत का रुख किया। मजिस्ट्रेट ने कहा, 'कभी-कभी इतवार को चले आया कीजिए मुंशीजी, मुझे शायरी का बेहद शौक है। पर वक्त मिलता ही नहीं, फिर भी जो तुकबन्दी करता हूं, आपको सुनाऊंगा।'

'मैं अवश्य आऊंगा। इसी इतवार को।'

'अवश्य आइए। भई खन्ना, सुना तुमने? मुंशी आ रहे हैं इसी इतवार को

मेरे यहां शाम को । तुम भी चाय वहीं पीना और आप भी मल्होत्रा साहब ।'

मल्होत्रा ने हंसते हुए कहा, 'लेकिन एक शर्त पर कि दालमोठ घंटेवाले हलवाई की हो ।'

'हां, हां, वही लीजिए । और आप भी अग्रवाल साहब, देखिए मैं कोई उज्र न सुनूंगा ।'

सेठी ने इसी समय हंसते हुए कहा, 'भई, देखना मुझे न्योता न दे बैठना, मुझे उस वक्त बिलकुल फुर्सत नहीं है ।'

'तो आप उस वक्त से आधा घण्टा पेश्तर आइए ।'

इसपर एक फर्माइशी कहकहा पड़ा ।

खाना आरम्भ हुआ । जुगनू चुपचाप खा रहा था । उसे एक सूत्र मिल गया था । उसकी जात कायस्थ है, श्रीवास्तव कायस्थ, वह बारम्बार इसी नाम को रट रहा था ।

जब सब रवाना होने लगे तो मजिस्ट्रेट ने अपनी कार की ओर बढ़ते हुए कहा, 'आपको मैं घर पर छोड़ता चलूंगा । आप शोभाराम के मकान पर ही ठहरे हैं न ?'

'जी हां । लेकिन…'

'अमां लेकिन क्या, आओ न, हां, आज शोभाराम नहीं आए । क्या बात है ? तबियत तो ठीक है उनकी ?'

'जी हां, लेकिन उन्हें एक ज़रूरी काम से कहीं जाना पड़ गया । इसीसे न आ सके ।' जुगनू आगे बढ़कर गाड़ी में आगे की सीट पर बैठ गया । जोगेन्द्रसिंह ने स्वयं ड्राइवर के स्थान पर बैठकर गाड़ी स्टार्ट कर दी ।

बरसात शुरू होते ही शोभाराम की तबियत ज़्यादा खराब हो गई । पेचिश ने संग्रहणी का रूप धारण कर लिया । और उसका सब खाना-पीना बंद करके छाछ पर तथा फलों के रस पर ही उसे रखा गया । आफिस जाना भी अब उसके लिए संभव न रहा । परन्तु इस अवसर पर जुगनू ने बड़ी तत्परता और

कर्मठता से काम लिया। वह आफिस का भी पूरा काम संभालता था और शोभाराम की सेवा-सुश्रूषा में भी जान लड़ाए रहता था। इससे पद्मा और शोभाराम दोनों ही उसके प्रति कृतज्ञ रहने लगे। शोभाराम बार-बार पद्मादेवी को जुगनू की असुविधाओं का ध्यान रखने को कहता। पद्मा स्वयं भी यत्न से उसकी सब आवश्यकताओं की पूर्ति करती थी। यहां रहते और आफिस में काम करते अब उसे छः मास से भी अधिक बीत चुके थे। आफिस के काम को वह बहुत कुछ समझ गया था। लिखने-पढ़ने का भी उसने अभ्यास बढ़ा लिया था। उसके अंग्रेज़ी बोलने के ढंग और सैकड़ों शेर कण्ठ पर चढ़े रहने से उसकी योग्यता के सम्बन्ध में प्रत्येक व्यक्ति को धोखा हो जाता था। यह कोई नहीं जान सकता था कि वह एक अपढ़, असंस्कृत, अछूत जाति का व्यक्ति है।

अच्छा भोजन और मानसिक उत्तेजना के निरन्तर वातावरण में उसका स्वास्थ्य भी अधिक अच्छा हो गया था और उसका रंग भी निखर आया था। इससे वह सुन्दर, स्वस्थ, सलोना युवक तो था ही, हंसमुख और फुर्तीला होने के कारण भी वह सर्वप्रिय बन गया था। उसके बहुत-से मित्र बन गए थे। प्रत्येक छोटे-बड़े को वह अपना मित्र बना लेता था। कांग्रेस का दफ्तर एक अजीब-सा मुसाफिरखाना था। वहां एक से बढ़कर एक उलझन को लेकर स्त्री-पुरुष आते, अपनी-अपनी कहते और जुगनू जैसे भी सम्भव होता सबकी मनोकामनाओं की पूर्ति करता। अपनी शक्ति भर वह किसी बात में कसर न छोड़ता। इससे लोग उसके प्रति कृतज्ञता और आदर का भाव प्रकट करने लगे।

परन्तु इस समय दो वस्तुएं उसके आकर्षण का केन्द्र थीं। एक पद्मादेवी, जिसके प्रति वह दिन-दिन आकर्षित होता जाता था; दूसरी मिस शारदा, जो स्वयं उसकी ओर आकृष्ट हो रही थी। जब-तब वह डाक्टर खन्ना के मकान पर जाकर देर तक मिस शारदा से गप्पें लड़ाता रहता। वह बहुधा उसे इधर-उधर के झूठे-सच्चे किस्से सुनाता, उसे सुनाने ही के लिए उसने कुछ अच्छे फिल्मी गीतों का अभ्यास किया, जिन्हें अवसर पाते ही एकान्त में वह शारदा को सुनाता। सुनकर शारदा अभिभूत हो जाती। अभी उसने यौवन की दहलीज़ में पांव रखा ही था। यौवन की उद्दाम वासना उसमें अभी जागृत नहीं हुई थी। पर एक अज्ञात प्रेरक शक्ति उसके मन की कली को खिला रही थी और यौवन के आनन्द का आभास उसे इस मुंशी की सोहबत में मिलता था। मुंशी

को देखते ही जैसे उसका यौवन उकसने लगता था। यद्यपि उसे इन सब यौन भावनाओं का ज्ञान न था, परन्तु एक अनिर्वचनीय सुखानुभूति वह मुंशी को अपने निकट देखते ही अनुभव करने लगती थी। धीरे-धीरे मुंशी को और अधिक निकट से देखने की उसकी लालसा बढ़ने लगी। उसके आने में कुछ देर होती तो वह बेचैन-सी हो जाती। उसके चले जाने पर अपने भीतर कुछ सूना-सूना-सा अनुभव करती। पहले वह उसकी कविता सुनकर, गाना सुनकर हंसती थी; अब हंसती न थी, अपने शरीर में एक सिहरन, एक थरथराहट अनुभव करती थी। जुगनू तरुण था, स्वस्थ था, असंस्कृत था, स्त्री का उपभोग कर चुका था, सो शारदा के अज्ञात-यौवन-भाव को वह लक्ष्य करता था। पहले ही दिन से, जब से उसने उसे देखा था, वह उसके प्रति आकृष्ट हो गया था। अब धीरे-धीरे वह अधिक निस्संकोच होता गया। अब शारदा को देखते ही वासना का एक मन्द ज्वर-सा उसे चढ़ जाता, उसे ऐसा प्रतीत होता जैसे उसे कुछ कम दिखाई दे रहा है। उसकी वाणी लड़खड़ाती और कभी-कभी तो वह इतना असंयत हो जाता कि उसे अंकपाश में जकड़ने की अपनी दुर्दान्त वासना को बड़ी ही कठिनाई से दमन कर पाता। फिर भी उसने अभी तक उसका स्पर्श नहीं किया था। यद्यपि शारदा अभी भी इस सम्बन्ध में असावधान थी, वह बहुधा उससे सटकर बैठ जाती। अपनी देह को उसपर गिरा देती। परन्तु जुगनू अपनी ओर से उसे छूने का साहस न कर सका था।

पद्मादेवी की बात बिलकुल दूसरी थी। वह जैसी सुन्दरी थी, वैसी ही विदुषी भी थी। वह विवाहिता स्त्री थी और अपनी गृहस्थी की संचालिका थी। पत्नी और गृहिणी दोनों ही गुण उसमें थे। परन्तु वह पति-सुख से वंचिता थी। शोभाराम सदा का रोगी, दुबला-पतला, कार्य-भार-व्यस्त, कुछ रूख-रूखा-सा आदमी था। तिसपर गांधी के संयम और ब्रह्मचर्य की भावना का उसपर मानसिक प्रभाव था। इससे वह पद्मा जैसी सुन्दरी, स्वस्थ पत्नी का यथोचित उपभोग न कर सकता था। पद्मा सच्चरित्र स्त्री अवश्य थी, पर वासना की भूख उसे थी। वह भूख उसकी आंखों में जुगनू ने यहां आने के कुछ दिन बाद ही जान ली थी। ऐसी भूख वह उस अंग्रेज़ अफसर की पत्नी की आंखों में देख चुका था, जिसने उसके यौवन को मौन आमन्त्रण देकर उसे आत्मसमर्पण कर दिया था। पद्मादेवी का ध्यान करते या उसे देखते ही उसे उसी अंग्रेज़ रमणी

का स्मरण हो आता। उसकी नग्न देह-यष्टि उसकी आंखों में साकार हो उठती और वह असंयत होकर सोचने लगता, 'क्या पद्मा भी मुझे आत्मसमर्पण कर देगी ? उसका उपभोग भी क्या मैं कर सकूंगा ?'

उसका मन धिक्कारता कि मित्र और आश्रयदाता की विवाहिता पत्नी की ओर ऐसी कुभावना उसे नहीं रखनी चाहिए, परन्तु थोड़ी देर बाद वह फिर उन्हीं विचारों में डूब जाता। धीरे-धीरे ये विचार उसके मन में दृढ़बद्ध होने लगे। और अब वह प्यासी आंखों से पद्मादेवी को देखने लगा। वह उसे भाभी कहकर पुकारता था और बहुधा उसे उसके साथ एकान्त में रहने और मिलने का अवसर मिलता रहता था। निरन्तर एकसाथ एक घर में रहने के कारण उनमें अब संकोच भी कम हो गया था। कभी-कभी विनोद-वार्ता चलती और पद्मा हंस देती। अथवा वह भी विनोद-वाक्य कह बैठती। इसका जुगनू के उत्तेजित मन पर बुरा प्रभाव होता। वह बहुधा असंयत हो उठता। रह-रहकर उसका मन होता कि वह पद्मा पर बलात्कार करे। परन्तु पद्मा का मन शान्त और शुद्ध था। उसका हास्य-विनोद निर्दोष था। फिर भी स्त्री किसी अचिन्त्य शक्ति से प्यासी आंखों को पहचान लेती है। पद्मा भी जुगनू की प्यासी आंखों को पहचान गई। कभी-कभी जुगनू की आंखों में वह प्यास देख उसका मुंह लाल हो जाता और वह नीची नज़र करके वहां से चल देती। ऐसे अवसरों के बाद एकाध दिन तक वह जुगनू के सामने आती ही नहीं थी। परन्तु यह एकान्तता अन्ततः निभती न थी। उसे उसके सामने आना पड़ता ही था। बात करनी ही पड़ती थी।

और अब, शोभाराम की बीमारी के कारण पद्मादेवी और जुगनू का एकान्त-मिलन और बढ़ गया। उसपर आफिस के काम का भी भार था, परन्तु वह जल्द से जल्द वहां का काम खतम करके घर आ जाता, शोभाराम को आफिस के सब समाचार बताता, परामर्श लेता, फिर उसकी सेवा-सुश्रूषा में लग जाता। बहुधा उसे एकान्त में पद्मादेवी से इस विषय पर परामर्श-वातचीत करनी पड़ती, बहुधा एकान्त रात्रि में अकेले उस घर में उसे पद्मा की शोभाराम के लिए पथ्य-औषध तैयार करने में सहायता करनी पड़ती। ऐसी अवस्था में कभी-कभार दोनों का अंग स्पर्श हो जाता, तो दोनों के शरीर में एक सिहरन दौड़ जाती। और दोनों ही बाहर संकोच से किन्तु भीतर एक दुर्दम्य लालसा से आन्दोलित

हो उठते ।

बड़ी विचित्र और असह्य थी यह स्थिति । एक ओर दो तरुण स्वस्थ शरीर थे । भिन्न लिंगी । यौन सम्पर्क में अबाध । दोनों ही में काम-बुभुक्षा जाग्रत थी। वह कृत्रिम या असामयिक उत्तेजना न थी । नैसर्गिक थी, जो स्वस्थ शरीर का धर्म है । दूसरी ओर सामाजिक मर्यादा का बन्धन था । काम-बुभुक्षा चाहे जैसी भी हो, चाहे जितनी भी हो, भिन्न लिंगी युगल चाहे जिस स्थिति में सुलभ भी हों, परन्तु उनका यौन सम्पर्क नहीं हो सकता । स्त्री-पुरुष नहीं मिल सकते । पति-पत्नी मिल सकते हैं । पति-पत्नी ही परस्पर यौन सम्पर्क स्थापित कर सकते हैं। यही समाज की मर्यादा है । भूख है, बहुत तेज़ है, स्वाभाविक है, स्वस्थ शरीर का धर्म और तकाज़ा है । अत: उसे भोजन मिलना ही चाहिए । भोजन भी उपस्थित है । उसकी प्राप्ति में बाधा भी नहीं है । वह दूषित भी नहीं है, पर अखाद्य है । खाया नहीं जा सकता । अखाद्य इसलिए नहीं कि उसमें भोजन-तत्त्व नहीं है, परन्तु इसलिए कि उसका खाना निषिद्ध है । जैसे किसी निरामिषभोजी के समक्ष तीव्र भूख लगने पर ताज़ा स्वादिष्ट मांसाहार अखाद्य है, उसी प्रकार ।

ठीक ऐसी ही स्थिति यहां थी—पद्मादेवी और जुगनू के बीच । विवाहिता पत्नी के साथ यौन सम्पर्क केवल उसके विवाहित पति को ही रखने का एकाधिकार है । यह एकाधिकार एकान्त है । इसमें एक अणु मात्र का भी विकल्प नहीं है । किसी भी स्थिति में विवाहिता स्त्री को पति से भिन्न दूसरे पुरुष से यौन सम्पर्क स्थापित करना अधर्म, अमर्यादित और अपवित्र कार्य है । सतीत्व की मर्यादा के नितान्त प्रतिकूल है ; भले ही पति रोगी हो या अन्य कारणों से स्वस्थ पत्नी के साथ यौन सम्पर्क रखने की कतई योग्यता न रखता हो । वह चिरकाल तक पत्नी से दूर रहता रहा हो, उसने पत्नी को त्याग भी दिया हो, तो भी वह स्त्री दूसरे पुरुष के साथ यौन सम्पर्क स्थापित करके अपनी स्वस्थ काम-बुभुक्षा को तृप्त नहीं कर सकती ।

और यह नियम सामाजिक चरम चारित्र्यमूलक नीति पर आधारित नियम है । परन्तु यह केवल स्त्री के ही लिए है, पुरुष के लिए नहीं । पुरुष ऐसी स्थिति में सरलता से अन्य स्त्री से यौन सम्पर्क स्थापित करके अपनी काम-बुभुक्षा को तृप्त कर सकता है । समाज में उसे स्त्रियां सुलभ हैं । उनसे काम-सम्पर्क रखने में बस ज़रा-सी आड़, थोड़ा-सा पर्दा ही अपेक्षित है । और कुछ नहीं ।

आंशिक रूप में यह चोरी-छिपे की बात है, परन्तु इसका अनैतिक मूल्य नगण्य है। समाज के संगठन का रूप ही कुछ ऐसा है। अलबत्ता विवाहिता स्त्रियां भी आवश्यकता होने पर ऐसे यौन सम्बन्ध अपनी स्वस्थ काम-बुभुक्षा-निवारण के लिए अन्य पुरुष से कर लेती हैं। समाज ने उन्हें ऐसी सुविधाएं नहीं दी हैं जैसी पुरुषों को प्राप्त हैं, पर चोरी की सुविधाएं चोर हज़ार रीति से निकाल लेता है। परन्तु विवाहिता पत्नी की बात तो एक ओर रही, किसी भी स्त्री का किसी भी हालत में विवाहित पति को छोड़कर अन्य पुरुष से यौन सम्पर्क घोर अनैतिक है। किसी भी रूप में समाज उसे स्वीकार नहीं कर सकता। स्त्री पर सतीत्व का जो बोझ है, वही इसमें सबसे बड़ा बाधक है। स्त्रियों को इस बाधा से बड़ा भारी द्वन्द्व करना पड़ता है। प्रायः ही उन्हें उपयुक्त समय पर स्वस्थ यौन आहार नहीं मिलता। काम-संतुलन का पति-पत्नी के चुनाव में कोई स्थान ही नहीं है। बहुधा पति स्वस्थ होने पर भी पत्नी-सहवास में अपनी ही काम-बुभुक्षा तृप्त करते हैं, पत्नी को इस सम्बन्ध में प्राथमिकता नहीं देते। घरों में जैसे पत्नियां पति के तृप्त होकर भोजन कर लेने के बाद उसकी जूठी थालियों में बचा हुआ उच्छिष्ट भोजन करती हैं, वैसे ही पत्नियां पति के मनमाने तरीके पर तृप्त हो लेने के बाद अपनी काम-बुभुक्षा को तृप्त कर लेती हैं। परन्तु इनमें बहुत-सी भूखी ही रह जाती हैं। बहुधा तीव्र लालसा में भूखी रह जाना अहितकर परिणाम लाता है—शारीरिक भी, सामाजिक भी। केवल इसी विषम परिस्थिति ने स्त्रियों की सामाजिक और शारीरिक विकृतियों को इतना अधिक बढ़ा दिया है कि जिसे हम भयंकर कह सकते हैं। फिर भी समाज के नियम और बन्धन वैसे ही हैं। स्वस्थ पत्नी काम-भूख से तड़पती रहे, वह पति के अतिरिक्त किसी स्वस्थ पुरुष से यौन सम्बन्ध स्थापित नहीं कर सकती। यही समाज-नीति और समाज-मर्यादा है।

परन्तु प्राकृतिक उद्वेग अपने काम अवश्य करते हैं। तीव्र भूख में निषिद्ध भोजन असंयत होकर लोग करते हैं। परन्तु ऐसा करने से पूर्व उन्हें एक अन्तर्द्वन्द्व का सामना तो करना ही पड़ता है। ऐसा ही अन्तर्द्वन्द्व अत्यन्त प्रच्छन्न रूप में पद्मादेवी के हृदय में पनप रहा था जिसे जुगनू की प्यासी आंखें निरन्तर उत्तेजना दे रही थीं। जुगनू भी यह जान गया था। एक प्रकार की हिंसक प्रसन्नता, वैसी ही जैसी शिकार को फंसा देखकर किसी हिंस्र पशु को होती है, जुगनू को

आह्लादित-उत्तेजित कर रही थी। उसी आह्लाद-उत्तेजना से प्रेरित होकर वह अधिकाधिक उत्साह से शोभाराम की सेवा करता, और पद्मादेवी के समक्ष अतिशय कोमल, भावुक और विनम्र बनता चला जा रहा था। उसके भीतर के भेड़िये ने भेड़ की खाल ओढ़ ली थी और वह पद्मा को अपना शिकार समझ चुका था।

हरियाली तीज स्त्रियों का मनभावना त्यौहार है। सुहागिन स्त्रियां इस दिन नवीन श्रृंगार करती हैं। मिठाई-पकवान बनाती हैं। इधर दो-चार दिन से शोभाराम का स्वास्थ्य भी कुछ ठीक था। उसने हठपूर्वक पद्मा से मिठाई-पकवान बनाने और श्रृंगार करने का आग्रह किया था। सुबह ही से पद्मादेवी अनेक प्रकार के मिठाई-पकवान बनाती रही और अब वह नहा-धोकर नवीन नाइलोन की नई साड़ी और साटन की चुस्त चोली पहनकर सज-धजकर श्रृङ्गार कर रही है। चोटी में उसने फूल गूंथे हैं, हाथों में मेंहदी रचाई है। अपने सभी आभूषण उसने अंग पर धारण किए हैं और अब वह नख-शिख से श्रृंगार करके शोभाराम की शैया के पास आई है। शोभाराम प्यासी आंखों से पद्मा को देख रहा है। पद्मादेवी की आयु छब्बीस बरस की थी। रंग उसका गोरा था, जिसमें से खून टपका पड़ता था। उसके लावण्य में स्वास्थ्य की कोमलता का एक अद्भुत मिश्रण था। उसकी आंखें काली और बड़ी-बड़ी थीं। कोये उज्ज्वल-श्वेत थे। उन आंखों में तेज और आकांक्षा दोनों ही कूट-कूटकर भरी थीं। अनुराग और आग्रह जैसे उनमें से झांकता था। पद्मादेवी के बाल गहरे काले तथा आपाद-चुम्बी थे। वे मुलायम और घूंघरवाले भी थे। भौंहें पतली और कमान के समान सुबुक थीं। कान छोटे, गर्दन सुराहीदार और उरोज उन्नत थे। शरीर उसका छरहरा था। यह पोशाक उसके अंग पर खूब खिल रही थी। शोभाराम बड़ी देर तक पत्नी के रूप को निहारता रहा। उसके सूखे और तेजहीन फीके मुखमण्डल पर एक आनन्द की लहर दौड़ गई। उसने कहा, 'पद्मारानी, ज़रा मुझे उठाकर कुर्सी पर बिठाओ, और वह खिड़की खोल दो।'

'नहीं, बरसाती हवा है। ठण्ड लग जाएगी। पलंग पर ही लेटे रहो।'

'नहीं, नहीं, कुछ नहीं होगा, ताज़ा वायु के स्पर्श से मेरा चित्त प्रसन्न हो जाएगा। तुम्हें आज इस वेश में देखकर तो मैं जैसे बिलकुल स्वस्थ हो गया।' उसने दोनों हाथ फैलाकर पद्मादेवी की नरम-नरम हथेलियों को अपने ठण्डे हाथों में दबा लिया।

पद्मादेवी चुपचाप पति के पास खड़ी रही। शोभाराम उठकर बैठ गया। उसने कहा, 'पद्मा, ज़रा सहारा दो, मैं कुर्सी पर बैठूंगा।' पद्मादेवी ने सहारा देकर उसे कुर्सी पर बिठा दिया। इतने ही से प्रयास से शोभाराम हांफने लगा। पद्मादेवी के चेहरे पर उदासी छा गई। वह सूनी-सूनी आंखों से पति को देखने लगी।

शोभाराम ने कहा, 'पद्मा, प्यारी पद्मा, मैंने तुम्हें दुःख ही दुःख दिया। मेरे साथ विवाह करके तुमने क्या पाया? तुम्हारा तो जीवन ही शून्य हो गया।'

'ऐसा क्यों कहते हो भला? तुम-सा दयावान और उदार स्वामी पाकर तो कोई भी स्त्री धन्य हो सकती है।'

'परन्तु, क्या उदार और दयावान होना ही एक पति के लिए काफी है?'

'और नहीं तो क्या। मैं तो मन ही मन तुम्हारे गुणों का जब ध्यान करती हूं, तो अपने को अत्यन्त हीन समझती हूं।'

'लेकिन मैं सदा का रोगी आदमी, क्या मुझे उचित था कि तुम-सी फूल-सी कोमल कली को अपने दुर्भाग्य से बांधता?'

'रोग-शोक तो लगे ही रहते हैं। इससे क्या हुआ। तुम जल्दी चंगे हो जाओगे। फिर मुझे और क्या चाहिए?'

शोभाराम कुछ देर तक चुपचाप छत की ओर एकटक देखता रहा। फिर उसने एक ठंडी सांस खींचकर कहा, 'तुम्हारी भी कुछ अभिलाषाएं हैं पद्मा, वह क्या मैं समझता नहीं हूं?'

'तुम तो मेरी सभी अभिलाषाओं की पूर्ति मेरे कहने से प्रथम ही कर देते हो। मेरे सुख के साधन तुमने सभी जुटा दिए हैं। बस, अब तो तुम जल्द अच्छे हो जाओ, यही मेरी कामना है।'

शोभाराम ने फीकी हंसी हंसकर मुंह फेर लिया। उससे कुछ कहते न बन पड़ा। इस समय बहुत-से विचार उसके मन में उठ रहे थे। वह पद्मा की उस

स्वस्थ काम-भूख की बाबत सोच रहा था, जिसे वह अच्छी तरह जानता था। और प्रतिक्षण उसके नेत्रों में देखता था। इस समय वह रोगी, अस्वस्थ था। इस योग्य न था। वह सोच रहा था, यदि यह रोग वर्षों तक चलता चला जाए तो एक स्वस्थ युवती और चिर रोगी का अटूट बन्धन मर्यादा और नैतिकता के तर्कसम्मत बल पर कब तक निभेगा ? उसे कैसे न्यायसंगत कहा जा सकता है ? पर उसे ढीला भी कैसे छोड़ा जा सकता है ? समाज का संगठन भी तो एक वस्तु है। वह इस समय सोच रहा था, नारी और पत्नी की भिन्न-रूपता की बात। नारी जो भूख से तड़प रही थी, और पत्नी जो वेदना से सिसक रही थी, निराशा से मूर्च्छित-सी हो रही थी। इस समय सुसज्जिता पद्मा के शरीर में वह दोनों ही छाया-मूर्तियों के अन्तर्द्वन्द्व का दर्शन कर रहा था।

पद्मा ने और निकट आकर कहा, 'इस तरह चुपचाप क्या सोच रहे हो ?'

शोभाराम ने उसका हाथ खींचकर अपनी छाती पर रख लिया। और अपने पास बिठाकर कहा, 'तुम्हीं बताओ, क्या सोच रहा हूं ?'

'मैं कैसे जान सकती हूं ?'

'खूब अच्छी तरह जानती हो, मेरी आत्मा की गहराई तक तुम्हारी पहुंच है।'

पद्मा ने जैसे सचमुच ही पति की अन्तवदना को पहचान लिया। उसने उसके वक्ष पर झुककर उसका चुम्बन करते हुए कहा, 'व्यर्थ की बातें सोचकर क्या होगा ? तुम जल्द अच्छे हो जाओ। फिर हम लोग कहीं स्वस्थ जलवायु-वाले स्थान में चलकर रहेंगे।'

'मेरी अपेक्षा ये पशु-पक्षी कितने सौभाग्यशाली हैं पद्मा, जो अपनी प्रेयसी के साथ सभी प्रकार के सहवास का आनन्द तृप्त होकर भोग करते हैं। लेकिन मैं न उसका एक कण ले, न दे सकता हूं।'

एकाएक शोभाराम ने देखा, पद्मा ने दोनों हाथों से अपना मुंह ढांप लिया है और उसकी चम्पे की कलियों जैसी उंगलियों से झर-झर मोती झर रहे हैं।

शोभाराम अवाक्-निढाल होकर कुर्सी पर पड़ गया। एक शब्द भी उसके मुंह से नहीं निकला। उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसके सारे ही शरीर का रक्त खींचकर बाहर निकाल लिया गया हो।

धीरे-धीरे उसने देखा कि पद्मादेवी ने अपनी भुज-वल्लरी से उसे समेटकर

अपने वक्ष से लगा लिया। अर्धचेतनावस्था में शोभाराम ने पत्नी के उस भावाविष्ट मुख की अश्रुधारा से पूर्ण आंखों का चुम्बन लिया। दोनों मूक निर्वाक् कुछ देर उसी प्रकार अचल बैठे रहे। धीरे-धीरे पद्मादेवी खिसककर शोभाराम के चरणों में आ गिरी। उसने उसके दोनों चरण वक्ष से लगाकर चूम लिए। उसने कहा, 'आप मेरे स्वामी हैं, संरक्षक हैं, सहायक हैं। मैं दीन-हीन, मलिन, अबला हूं। तुम्हारे सहारे ही से मैं जीवित रह सकती हूं।'

शोभाराम ने कहा, 'मैं निस्संदेह अपने को क्षमा नहीं कर सकता। मैं सदा का रोगी हूं, जान-बूझकर मैंने तुम्हें अपने रुग्ण शरीर के साथ बांधकर स्वार्थी का सा आचरण किया। मैं जानता हूं, तुम प्रेम के उस प्रसाद को प्राप्त नहीं कर सकीं जिसको प्राप्त करने का तुम्हें हक था। पर क्या कहूं, जिस क्षण तुमपर मेरी नज़र पड़ी, मैं संयत न रह सका। संयम और न्याय सब भूलकर मैंने तुम्हें प्राप्त कर लिया। तुम्हें भूखों मार डालने की नीयत से। पर मैं करूं भी क्या ? तुम्हें देखते ही मेरी सारी चेतना व्यग्र हो उठी। सारी हड्डियां उत्तेजित हो उठीं। तुम मेरे घर आईं और मेरे चिन्तापूर्ण मन को मधुरिमा से भर दिया। कवि जिस उन्मत्त प्रेम का वर्णन करते हैं, वही प्रेम मुझे झकझोरने लगा। प्रेम-रस का स्वाद कैसा है, यह तुम्हें पाकर ही मैंने जाना। पर तभी मैंने यह भी जान लिया कि हाय, यह मैंने क्या किया, तुम्हारे हृदय की कली खिलाने की मुझमें सामर्थ्य ही नहीं है। जब तुम्हारी मृदुल वाक्यावलि मेरे कानों में संगीत की ध्वनि उत्पन्न करती थी, तभी मेरे मन में एक टीस उठती थी कि अवश्य यह ध्वनि कहीं आर्त्तनाद भी करती होगी। उस समय मैं पागल हो गया, मैं विमूढ़ हो गया। मैंने सोचा, भोगलिप्सा से परे स्वर्गीय प्रेम ही मूल तत्त्व है जो मेरे रोम-रोम में व्याप्त था। परन्तु भोगलिप्सा का मूल्य भी इतना है, वह प्राणों का सम्पूर्ण स्पन्दन है, चेतना की सबसे ऊंची तान है, यह मैं जानता न था। उसे तो मैं तुम्हारी आंखों में पढ़ता गया, जानता गया। घबराता गया, परेशान होता गया। लज्जा और वेदना से छटपटाता गया।'

'बस करो। अब बस करो। मैं यह सब नहीं सुनना चाहती, प्रियतम ! तुम्हारी मंगल-कामना ही अब मेरे जीवन का एक व्रत है। तुम्हारा यह अनुराग ही मेरे जीवन का सहारा है।' पद्मा का सिर नीचे की ओर झुक गया। वह शोभाराम के पैरों के पास उसके घुटनों पर सिर रखकर बैठ गई। फिर उसने

एकाएक ही, जैसे वध होते हुए पशु का स्वर होता है, उसी स्वर में कहा, 'प्रियतम, मैं तुम्हारी हूं—केवल तुम्हारी, केवल तुम्हारी।' उसने पति के वक्ष में सिर छिपा लिया।

शोभाराम के पास उत्तर न था। उसके हाथ कांप रहे थे। उसने अपने आलिंगन-पाश में पत्नी को बांध लिया। मुहूर्त भर के लिए जैसे उसकी सारी ही चेतना लुप्त हो गई।

१०

उस दिन जुगनू बहुत देर बाद घर आया। दफ्तर में उसे आज बहुत काम करना पड़ा। वर्किंग कमेटी की मीटिंग भी आज ही थी। अतः इन सबसे फारिग होते न होते आठ बज गए। अब यहां से वह सीधा खन्ना साहब के बंगले पर पहुंचा। डाक्टर खन्ना घर पर न थे। विज़िट पर कहीं देहात में गए हुए थे। बहुत रात बीते उनके आने की बात थी। शारदा की ममी की तबियत खराब थी। वह आज बाहर निकली ही नहीं। शारदा अकेली लान में अपने अलसेशियन कुत्ते से खेल रही थी। उसके हाथ में एक पुस्तक थी। जुगनू ने फुर्ती से लाल गुलाब का एक बड़ा-सा फूल वहीं से तोड़ लिया और हंसते-हंसते उसे आगे बढ़ाते हुए कहा, 'देखो, कितना सुन्दर फूल है यह।'

'तुम बड़े खराब आदमी हो मुंशी, तुमने इतनी देर क्यों कर दी?' शारदा ने नकली गुस्से से मुंह फुलाकर कहा। उसकी आंखों से एक चमक निकल रही थी, जो उसकी आन्तरिक प्रसन्नता की द्योतक थी। जुगनू ने नम्र होकर कहा, 'बहुत अफसोस है, मुझे माफ कर दो मिस शारदा, आज दफ्तर का इतना काम था कि कचूमर निकल गया।'

'नहीं, नहीं, तुम मुझे परेशान करना चाहते हो। खैर, लाओ वह गज़ल, लिख लाए?'

'लो, यह है। इसके साथ दो गज़लें और हैं।'

शारदा ने खुश होकर कागज़ हाथ में ले लिया और कहा, 'यह तुमने नई शायरी की है?'

'यों ही कुछ तुकबन्दी है।'

शारदा ने वह कागज़ पुस्तक में रखते हुए कहा, 'तुम किस तरह गज़लें लिख लेते हो मुंशी, मुझे भी सिखा दो। मैं चाहती हूं, मैं भी गजलें लिखूं।'

'यह तो बहुत मुश्किल है, मिस शारदा। तुम शायरी नहीं कर सकतीं।'

'क्यों नहीं कर सकती? क्या मैं कूढ़-मगज़ हूं?'

'नहीं, नहीं, यह बात नहीं; हां, डाक्टर साहब क्या भीतर हैं?'

'नहीं, वे विज़िट पर देहात गए हैं। उन्हें तो घर में बैठने की फ़ुर्सत ही नहीं मिलती। आज ममी की तबियत खराब है, फिर भी पापा का पता ही नहीं।'

'ममी को क्या हुआ?'

'ज़रा हरारत है। कल देर तक जागती रहीं, बस जुकाम-हरारत हो गई। खैर, तुम शायरी की बात करो। मैं शायरी क्यों नहीं कर सकती?'

जुगनू ने ज़रा इधर-उधर करके कहा, 'शायरी करने के लिए इश्क की ज़रूरत होती है।'

'इश्क क्या होता है?'

'मुहब्बत, मुहब्बत करनी पड़ती है।'

'मैं तो बहुत मुहब्बत करती हूं।'

'किससे मुहब्बत करती हो, भला बताओ तो।'

'ममी से, पापा से।'

'और किसीसे नहीं?'

'तुमसे, टामी से।' उसने अपने अलसेशियन कुत्ते की गर्दन सहलाते हुए कहा। कुत्ते से अपनी तुलना करते सुन जुगनू तनिक लज्जित हुआ। कैसे वह इस भोली-भाली बालिका को इश्क का भेद समझाए। इतनी लताफत और तमीज़ जुगनू में न थी। उसने कहा, 'वह मुहब्बत नहीं, मिस शारदा।'

'तब कैसी मुहब्बत?'

'जिसे प्यार कहते हैं। समझती हो न?'

'खूब समझती हूं।'

जुगनू ने शारदा की आंखों में देखा। वहां स्वच्छ, निर्दोष दृष्टि देखकर उसने ज़रा दबी ज़बान से कहा, 'नहीं, तुम नहीं समझतीं।'

'खैर, तो तुम समझा दो।'

'देखो, गज़ल में इश्क की ही बातें होती हैं।'

'इश्क माने प्यार-मुहब्बत।'

'हां, लेकिन...'

'लेकिन क्या ?'

'अभी तुम नहीं समझ सकतीं मिस शारदा। मैं कैसे कहूं ?' जुगनू का स्वर लड़खड़ाया। उसका सारा शरीर वासना से तप गया। उसका भाव-परिवर्तन देखकर शारदा ज़रा शंकित हो गई, डर भी गई। उसने कहा, 'तुम्हें क्या हो गया मुंशी ?'

'कुछ नहीं। कभी-कभी मेरी तबियत खराब हो जाती है। एक गिलास ठंडा पानी मंगा दो।'

'शिकंजवी न मंगाऊं ?'

'नहीं, बस ठंडा पानी।'

'मैं ही ले आती हूं।' शारदा तेज़ी से चली गई। और जब वह पानी लेकर आई तब तक उसने अपने मन को संयत कर लिया था। परन्तु शारदा के मन में न जाने कैसी एक भीति की भावना घर कर गई थी। उसने कहा, 'मुंशी, हमारे मास्टरजी बहुत अच्छे कवि हैं। बड़ी अच्छी कविता करते हैं, पर वे ये सब बातें नहीं बताते। मैं उनसे कविता करना सीख रही हूं। यह देखो, उन्होंने मुझे छन्द-अलंकार की पुस्तक लाकर दी है। क्या तुमने यह पुस्तक पढ़ी है ?' उसने अपने हाथ की पुस्तक जुगनू के हाथ में थमा दी।

जुगनू हिन्दी बहुत कम जानता था। उसने पुस्तक हाथ में लेकर कहा, 'हिन्दी की कविता और उर्दू की शायरी में बहुत अन्तर है, मिस शारदा।'

परन्तु इतनी ही बात कहते-कहते जुगनू का मुंह सूख गया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि इस भोली-भाली बालिका को इस प्रकार फुसलाकर कुत्सित वासना की सृष्टि करना कितना खराब है, कितना घृणास्पद है। उसका मन उसे धिक्कारने लगा। उसने कुछ घबराकर कहा, 'अच्छा, अब मैं जाऊंगा, मिस शारदा।'

'लो, तुम फिर भागने लगे मुंशी ? तुम्हारी बातें मुझे अच्छी लगती हैं। तुम नहीं रहते हो तो कुछ सूना-सूना-सा लगता है। आओ, मैं तुम्हें अपना

अलबम दिखाऊं। तुम मुझे सलाह दो कि अब उसमें मैं कौन-कौन तस्वीरें लगाऊं। क्या तुम फोटोग्राफी भी जानते हो मुंशी ?'

'नहीं, कुछ ऐसी ज़्यादा नहीं।'

'झूठ बोल रहे हो। जरूर जानते हो। आज मैंने पूरी एक रील बरबाद की है। आओ देखो—पसन्द करो। मैंने टामी के छः फोटो लिए हैं।'

वह बराण्डे की ओर मुड़ी। जुगनू भी उसके पीछे-पीछे चला। परन्तु इस समय उसका मन वहां से भागने को हो रहा था। कोई दैवी शक्ति उसे धिक्कार दे रही थी कि वह एक पवित्र कुमारिका पर कुदृष्टि रखता है। वह एक संभ्रांत पिता के साथ विश्वासघात कर रहा है, जिसने उसके साथ अपनी पुत्री को मिलने की स्वतन्त्रता दे रखी थी।

बराण्डे में काफी रोशनी हो रही थी। वहां दो-तीन कुर्सियां रखी थीं। उन्हींमें से एक पर मुंशी को बिठाकर शारदा अपना अलबम और नये चित्र ले आई। परन्तु इसी समय मास्टर परशुराम आ गया। उसे देखते ही शारदा ने प्रसन्न मुद्रा से कहा, 'खूब आए मास्टर साहब। ये मुंशी बैठे हैं, आइए, इनसे मिलिए। इनकी गज़ल सुनिए और अपनी कविता इन्हें सुनाइए। अभी इन्होंने कुछ नये शेर लिखे हैं।' उसने पुस्तक में से वह कागज़ निकालकर कवि के हाथ में रख दिया।

परशुराम कालेज में फाइनल एम० ए० का विद्यार्थी था। शारदादेवी की ट्यूशन करता था। शारदा का कविता की ओर रुझान देखकर उसने उसे काव्यशास्त्र पढ़ाना भी आरम्भ कर दिया था। उससे शारदा ने मुंशी की चर्चा की थी। उसे देखकर और उसका परिचय सुनकर परशुराम ने जुगनू से हाथ मिलाया और जो कागज़ शारदा ने उसे दिया था, वह मुंशी को देते हुए कहा, 'मैं तो उर्दू नहीं पढ़ सकता, आप सुनाइए।'

परन्तु वे गज़लें बड़ी हलकी थीं, एक हद तक उन्हें अश्लील भी कहा जा सकता था। वे वास्तव में जुगनू की अपनी रचना भी नहीं थीं। कहीं से नकल कर लाया था। उन्हें पढ़ने में उसे संकोच होने लगा। उसने फीकी हंसी हंसकर कहा, 'कुछ ज़्यादा अच्छी नहीं हैं। यों ही लिख लाया हूं।'

'खैर, सुनाइए तो।'

'अब इस वक्त मूड नहीं है, माफ कीजिए।'

शारदा ज़िद पकड़ गई। उसने कहा, 'सुना दो मुंशी, सुनानी पड़ेगी।'

परशुराम ने भी हठ की। लाचार मुंशी को एक गज़ल सुनानी पड़ी। शारदा शायद ठीक-ठीक उसका आशय नहीं समझी। उसका ध्यान मुंशी की लय और कण्ठ-स्वर पर था, वह तारीफ करना चाहती थी पर परशुराम की त्योरियों में बल पड़ रहे थे। गज़ल समाप्त होने से पहले ही परशुराम ने शारदा से कहा, 'शारदा, तुम ज़रा अपनी कविता की पुस्तक तो उठा लाओ।'

शारदा के चली जाने पर मुंशी ने पढ़ना रोककर कहा, 'शायद आपको पसन्द नहीं आई।'

परशुराम ने कहा, 'माफ कीजिए मुंशीजी, आप एक शरीफ आदमी हैं, ऐसी हलकी और गन्दी गज़लें आपको लड़कियों के सामने नहीं पढ़नी चाहिएं। खयाल कीजिए, यदि खन्ना साहब के हाथ यह कागज़ पड़ जाए तो क्या नतीजा हो?'

मुंशी ने खिसियाकर कहा, 'लेकिन जनाब, यह तो शायरी है।'

'शायरी नहीं, बकवास है। आपको कब से यह शौक है?'

'अब जब आपको पसन्द ही नहीं है तो इस बात को जाने ही दीजिए।'

परशुराम कोई सख्त बात कहना चाहता था, पर इसी समय शारदा अपनी कविता की पुस्तक लेकर आ गई। परशुराम ने उससे कहा, 'तुम्हें यदि इस समय फ़ुर्सत हो तो थोड़ा पढ़ लो। मैं अभी एक घण्टा ठहर सकता हूं। कल मैं आ नहीं सका था।'

'लेकिन इस वक्त तो मैं मुंशी को अपनी तस्वीरें दिखा रही थी।'

'यह काम कुछ इतना ज़रूरी नहीं है। खोलो पुस्तक।'

वास्तव में परशुराम को जुगनू की वहां उपस्थिति अच्छी नहीं लग रही थी। एक ही दृष्टि में वह भांप गया था कि वह लोफर आदमी है। इसलिए वह उसकी ओर से एकदम आंखें फेरकर शारदा को काव्यशास्त्र पढ़ाने लगा।

मुंशी ने ज़रा तैश में आकर कहा, 'तो मिस शारदा, अब मैं चला।'

'लेकिन मुंशी, कल शाम तुम ज़रूर आना।'

'कह नहीं सकता। आजकल फ़ुर्सत कम मिलती है।' उसने शारदा को नमस्ते की और परशुराम की ओर बिना देखे ही चल दिया।

शारदा ने कहा, 'आपने मास्टरजी, उन्हें नाराज़ कर दिया।'

'मुझे तो यह अच्छा आदमी नहीं प्रतीत होता।'

'वह, वह तो बहुत अच्छा आदमी है।'

'वह कब से यहां आता-जाता है ?'

'थोड़े ही दिन से।'

'ठीक नहीं है, उसका आना-जाना बन्द करो।'

'क्यों ?'

परशुराम खुलकर और आगे कुछ कहना नहीं चाहते थे। उन्होंने बात टालने की नीयत से कहा, 'अभी पढ़ो, पीछे बताऊंगा।'

और उन्होंने पढ़ाना आरम्भ कर दिया। पर शारदा अनमनी रही। उस दिन पढ़ने में उसका मन नहीं लगा।

परशुराम ने भी और अधिक मुंशी की चर्चा नहीं की। परशुराम एक सच्चरित्र युवक था। वह एक लम्बे कद का सशक्त शरीर का तरुण था। देखने में सुन्दर न था, परन्तु मेधावी और गम्भीर प्रकृति का था। एक ही दृष्टि में उसने जुगनू की कुत्सा देख ली थी और उसने इस सम्बन्ध में डाक्टर खन्ना को सावधान करने की ठान ली थी।

जब परशुराम चले गए तो शारदा थोड़ी सुस्त होकर चुपचाप कुर्सी पर पड़ गई। वह मुंशी और परशुराम दोनों ही की बात सोच रही थी। मास्टरजी ने मुंशी को क्यों नहीं पसन्द किया। वह तो बहुत अच्छा आदमी है, परन्तु इसी समय उसे मुंशी की वह मुखाकृति ध्यान में आई जो इश्क की चर्चा करते हुए बन गई थी जिससे शारदा भीत और शंकित हो गई थी। एकाएक वह इश्क, मुहब्बत, प्यार इन तीन शब्दों के ताने-बाने में उलझ गई। परन्तु वह कुछ भी न समझ सकी। उसका मन गरम हो उठा। कविता की पुस्तक फेंक वह अपने कमरे में चली गई।

११

परशुराम की फटकार खाकर बेंत से पीटे कुत्ते की तरह दुम दबाकर जुगनू जो वहां से भागा तो उसे सीधा घर जाने का साहस न हुआ। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि उसका सम्पूर्ण असंस्कृत भंगी-तत्त्व मूर्त हो उठा हो। एक सभ्य

प्रतिष्ठित परिवार की कुमारिका के सामने जो उसने कुत्सा का प्रदर्शन किया और परशुराम ने जिस प्रकार उसकी भर्त्सना की उससे वह अत्यन्त हतप्रभ हो गया। वह सीधा परेड ग्राउण्ड के मैदान की ओर चला आया। अब दस बज रहे थे और सर्वत्र भीड़ छंट रही थी। आकाश में बदली घुमड़ रही थी। हवा बन्द थी तथा गरमी बेहद थी। इस दमघोंटू वातावरण में वह और भी अस्वस्थता अनुभव कर रहा था। उसे ऐसा प्रतीत होता था कि जैसे उसका यह अभद्राचरण उसके अब तक के सारे ही विकास को मटियामेट कर चुका। उसका मन बार-बार उसे धिक्कार रहा था और वह अपने ही से कह रहा था कि वह किसी भी हालत में किसी भद्र परिवार में प्रविष्ट होने योग्य नहीं है। वह यह भी सोचकर पछता रहा था कि अब कदाचित् शारदा उससे मिलना पसन्द न करेगी। परशुराम का शारदा पर कैसा प्रभाव है! परशुराम के समक्ष वह अपने को एक निकृष्टतम व्यक्ति अनुभव करने लगा था। वह सोच रहा था, उसने अच्छा ही किया कि वहां से भाग आया। परशुराम जैसे सिंह था और वह सिंह से बाल-बाल बचकर आया था। उसका मन बहुत खराब हो रहा था। वह औंधे मुंह एडवर्ड पार्क में जाकर घास पर पड़ रहा। धीरे-धीरे पश्चात्ताप और मनस्ताप ने उसे अभिभूत कर लिया। उसने भुनभुनाकर जैसे अपने आप ही से कहा, 'अबे ओ भंगी के बच्चे, ओ कमीने, कामी कुत्ते, तू जो यह भद्र वेश धारण करके भद्र घरों में प्रविष्ट हो रहा है, यह तेरी धृष्टता है, अक्षम्य अपराध है।' उसके सामने जैसे शारदा का कौमार्य से दमकता मुंह आ खड़ा हुआ। उस मुख की आंखों की ज्योति से उसे चकाचौंध लग रही थी। वही कौमार्य की आभा से जगमग मुख पूछ रहा था—'इश्क क्या होता है?'

छी! छी! जुगनू को ढूंढ़े उत्तर नहीं मिल रहा था। उसने दोनों हाथों से पकड़कर अपने बाल नोच डाले और दो-तीन बार धरती में अपना सिर दे मारा। उसने दांत पीसकर कहा, 'भंगी के बच्चे, तू एक भले घर की कंवारी कन्या को इश्क सिखाने चला था! कमीने, दोज़ख के कुत्ते!!'

बहुत देर तक वह इसी उधेड़-बुन में लगा रहा। इस समय वह इस तरह छटपटा रहा था जैसे मानो उसे बेंतों से पीटा जा रहा हो। उसकी आंखें आंसुओं से तर थीं। उसकी अन्तःचेतना और बुद्धि-सत्ता इस समय उसके मनोविकारों से द्वंद्व कर रही थी। उसने अपने ही आप से कहा, 'चल, चल,

यहां से दूर कहीं, वही खानसामागिरी की नौकरी कर, या भंगी का काम कर।'

उसकी जेब में अब भी कुछ गन्दी गज़लें लिखी पड़ी थीं। उन्हें उसने ढूंढ़-ढूंढ़कर शारदा को सुनाने के लिए लिखा था। वह उन्हीं गन्दी गज़लों को सुनाकर उस अबोध बालिका के उत्सुक मन में वासना का बीज बोना चाहता था, परन्तु इस समय का जाग्रत विवेक उसे दूसरी ही दुनिया में ले गया था। उसने वे सब कागज़ जेब से निकालकर फाड़ डाले। उसने प्रतिज्ञा की कि वह अब कभी भी ऐसी गन्दी गज़लें और शेर नहीं पढ़ेगा। वह अपनी योग्यता बढ़ाएगा। वह अधिक सभ्य शिष्ट बनकर समाज में रहेगा। वह इस बात की भरपूर चेष्टा करेगा कि फिर कभी उसे परशुराम जैसे आदमियों से दुत्कार न खानी पड़े।

वह उस समय तक पार्क में पड़ा रहा, जब तक पुलिस के सिपाही ने उसे पार्क से चले जाने को न कहा। अब बारह बज रहे थे। जब वह घर पहुंचा तो उसने चाहा कि चुपचाप आहट किए बिना अपने कमरे में जा सोए। परन्तु पद्मादेवी उसके लिए भोजन लिए बैठी थी। उसके कमरे में पैर रखते ही उसने आकर कहा, 'यह क्या ! बत्ती नहीं जलाई ?'

उसने स्विच आन कर दिया, फिर कहा, 'बहुत देर कर दी आज, कई बार वे पूछ चुके हैं। खाना यहीं ले आऊं ?'

'आपने बड़ा कष्ट किया भाभी, मुझे आज बहुत देर हो गई परन्तु अब खाना नहीं खाऊंगा। बहुत थक गया हूं। बस सोऊंगा। खाना मैं खा चुका हूं।'

'तो थोड़ा दूध पी लो, गरम रखा है।' वह बिना ही उत्तर की प्रतीक्षा किए चली गई और दूध का गिलास ले आई। गिलास टेबल पर रखकर कहा, 'और कुछ तो नहीं चाहिए ?'

'जी नहीं, भाई साहब की तबियत कैसी है ?'

'आज तो उनकी तबियत कुछ ठीक है। वे सो रहे हैं।'

'तो अब आप भी आराम कीजिए भाभी, बड़ा कष्ट आपको मेरे कारण हुआ।'

अब तक जुगनू नीची आंखें किए बात कर रहा था, अब उसने जो पद्मा

की ओर आंख उठाकर देखा तो पद्मादेवी के रूप और शृंगार ने उसकी आंखों को चकाचौंध कर दिया। वह एकटक उसे देखता ही रह गया। पद्मादेवी ने फिर उसकी आंखों में वही भूख देखी जिसे कई बार देख चुकी थी, जो उसे असंयत कर देती थी।

उन आंखों की लालसा ने उसका मुंह लाली से रंग दिया। वह तेजी से वहां से चल दी। जुगनू जल्दी से बत्ती बुझाकर बिना कपड़े बदले ही पलंग पर पड़ गया। उसे इस समय ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे उसके शरीर में भट्टियां सुलग रही हों। बहुत देर वह बिस्तर पर छटपटाता रहा। फिर न जाने कब उसकी आंख लग गई।

१२

दूसरे दिन जब जुगनू सोकर उठा तो उसका मन आत्मग्लानि से भरा हुआ था। वह चाहता था कि चुपचाप वह घर से निकल जाए और किसीको मुंह न दिखाए। परन्तु ज्योंही वह कपड़े पहनकर जाने लगा कि शोभाराम ने उसे पुकार लिया। शोभाराम के पास उसे जाना पड़ा। शोभाराम ने उससे इधर-उधर की बहुत-सी बातें कीं। आफिस के हालचाल पूछे, इतनी देर तक कहां रहे यह भी खोद-खोदकर पूछा। इस समय जुगनू की दशा चोर जैसी हो रही थी। वह कुछ झूठी, कुछ सच्ची बातें बक रहा था। निस्सन्देह उसने शारदा के यहां जाने की बात नहीं बताई। तबियत खराब होने का बहाना करके उसने नाश्ता भी नहीं किया। और 'आफिस में आज काम बहुत है' यह कहकर वह वहां से चल दिया।

उसके जाने पर शोभाराम ने पद्मादेवी से पूछा, 'क्या बात है, जगन आज कुछ उखड़ा-उखड़ा-सा हो रहा था ? तुमने कुछ कहा था क्या ?'

'नहीं, कुछ भी नहीं।'

शोभाराम कुछ देर चुपचाप सोचता रहा। यह शुद्ध हृदय का तरुण अपने मन में कोई कुत्सा रखता ही न था। इसीसे वह और-और बातें करने लगा।

जुगनू का मन आज आफिस में भी नहीं लगा। वह अब यद्यपि पक्की तौर

पर ज्वाइण्ट सेक्रेटरी के पद पर था, और शोभाराम के स्थान पर सेक्रेटरी का काम कर रहा था ; पर आज वह सर्वत्र अपने को एक हीन व्यक्ति समझ रहा था। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह जहां बैठा है, जो कुछ कर रहा है, और जहां रह रहा है, जो कुछ देख-सुन रहा है, उन सबके लिए वह नितान्त अयोग्य है। जैसे उसे अपने आपका मुलम्मा दीख रहा था। उसे यह याद करके अपने में एक सिहरन-सी उठ रही थी कि जैसे अभी-अभी सारी दुनिया इकट्ठी होकर चिल्लाकर कह उठेगी, 'अबे ओ भंगी के बच्चे, तेरी यह जुर्रत ? कि तू भले आदमी का ढोंग बनाकर यहां बैठा लोगों की आंखों में धूल झोंक रहा है।' वह अपने ही में सकुचाया-सा, लज्जित-सा चुपचाप जैसे-तैसे अपना काम करता जा रहा था। काम ठीक हो रहा है या नहीं, यह भी वह नहीं जानता था। आज न उसने चपरासी से डांट-डपट की थी, न किसी आगन्तुक से बातें की थीं। वह सबको टरका रहा था और नहीं जानता था कि क्या-क्या कर रहा है। क्षण-क्षण में उसके नेत्रों में शारदा का, परशुराम का, पद्मादेवी का चेहरा चलचित्र की भांति नाना रूप धारण करके आ रहा था। सारा दिन इसी प्रकार बीत गया। उसने कुछ भी नहीं खाया-पिया। समय से पहले ही वह आफिस से निकल गया। अभी तीन ही बजे थे। वह कहां जाए, समझ नहीं पा रहा था। अकस्मात् उसने देखा कि वह स्टेशन के पास आ गया है। क्षण भर उसने खड़े होकर सोचा। सामने दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी की विशाल इमारत थी। वह किसी अज्ञात प्रेरणा के वशीभूत होकर उसमें घुस गया। ज्ञानसागर के उस भवन में घुसकर उसने देखा—अनेक स्त्री, पुरुष, तरुण, वृद्ध, बाल अपनी-अपनी रुचि और तबियत के अनुसार पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाएं पढ़ रहे हैं। अनगिनत पुस्तकें आलमारियों पर सज रही हैं। एक बड़ी-सी मेज़ के चारों ओर पचासों पुरुष झुके बैठे कुछ पढ़ रहे हैं। कोई न किसीसे बात करता है, न कोई काम। पुस्तकालय के कर्मचारी फुर्ती से दौड़-धूप कर रहे थे। एक के बाद एक पुस्तकें निकालकर नये-नये आगन्तुकों को देते जाते थे। जुगनू की अन्तश्चेतना और नेत्रों के लिए यह सर्वथा नवीन था। उसने कभी पुस्तक पढ़ने का ऐसा दृश्य नहीं देखा था। स्वयं भी वह पुस्तक पढ़ने में रुचि नहीं रखता था। आज वह पहली ही बार यह अनुभव कर रहा था कि उसे भी पुस्तकें पढ़नी चाहिएं। सभ्य जीवन का जैसे एक भेद उसपर खुल रहा था। वह सोच रहा था, सभ्य

जीवन वही नहीं है कि भले आदमी जैसे धुले कपड़े पहन लिए। यह तो जैसे कौआ मोर के पंख खोंस ले ऐसा हुआ। सभ्य जीवन के भेद तो इन पुस्तकों में हैं। इन पुस्तकों के ज्ञान को आत्मसात् करने ही से तो लोग सभ्य-शिष्ट बनते हैं। विविध विषयों पर अधिकारपूर्ण ढंग से बातें कर सकते हैं। उसने दिल्ली आने पर इन्हीं थोड़े दिनों में सभ्य समाज में प्रविष्ट होकर बहुत-से विवादों को सुना था। उसीके चारों ओर बैठकर लोग धर्म, समाज, राजनीति, विज्ञान और साहित्य की भांति-भांति की बातें करते रहे हैं। वह उन बातों को तनिक भी नहीं समझ पाता था। उसका भेद उसपर अब इस पुस्तक-भण्डार को देखकर प्रकट हुआ। यों उलटे-सीधे शेर-गज़लें याद कर ज़रा-सी गलेदराज़ी के बल पर जो वह अब तक वाहवाही लूटता रहा था, उसका थोथापन आज उसपर प्रकट हो रहा था। आज वह चाह रहा था कि इन सारी ही पुस्तकों को घोलकर पी जाए। इन सारी पुस्तकों का ज्ञान उसमें समा जाए।

वह खोया-खोया-सा खड़ा था। किसीसे कुछ कहना तो दूर, कुर्सी पर टेबल के नज़दीक बैठने तक की उसकी हिम्मत नहीं हो रही थी।

इसी समय एक महिला ने उसके निकट आकर मुस्कराते हुए कहा, 'आपको क्या चाहिए ?'

महिला पुस्तकालय ही की कर्मचारिणी थी। युवती और सुन्दरी, कोमल वाणी, प्रसन्न मुख, विनम्र चेष्टा और आदर से भरपूर शैली में उसने जो यह प्रश्न किया तो जुगनू से जवाब देते न बना। वह प्रश्न ही को नहीं समझा।

महिला ने कहा, 'आपको क्या कोई पुस्तक चाहिए ?'

'जी हां,' जुगनू ने कुछ अनिश्चित-से स्वर में कहा।

'कौन-सी पुस्तक ?'

'कोई-सी भी।'

'किस विषय की ?'

जुगनू इन प्रश्नोत्तरों से घबरा गया। महिला ने हंसकर कहा, 'आप शायद पहली ही बार यहां आए हैं।'

'जी हां।'

'आप इधर आ जाइए। यहां बैठिए।' एक टेबल के पास उसे बैठने का

संकेत करती हुई वह महिला लपकती हुई गई और कुछ रजिस्टर उठा लाई। उन्हें टेबल पर रखते हुए उसने कहा, 'ये पुस्तकों की सूचियां हैं, इनमें से आप अपनी पसन्द की पुस्तक चुन लीजिए। मैं निकलवा दूंगी।' जुगनू रजिस्टर के पन्ने उलट-पुलट करने लगा। महिला दूसरे काम में लग गई। पर बड़ी देर तक पन्ने उलटने पर भी वह किसी पुस्तक का नाम नहीं चुन सका। वह न किसी विषय को जानता था, न पुस्तक को। कैसे कोई पुस्तक पुस्तकालय से ली जाती है, यह भी नहीं जानता था।

महिला फिर आई। उसने पूछा, 'आपको कौन-सी पुस्तक चाहिए।'

जुगनू ने सूची में एक पुस्तक के नाम पर उंगली रख दी। महिला ने उसका नम्बर और संकेत-चिह्न नोट किया। कर्मचारी को वह नोट देकर कहा, 'यह पुस्तक निकाल दो।' और अपने काम में लग गई।

कर्मचारी ने एक बहुत भारी-भरकम पुस्तक लाकर जुगनू के हाथों में थमा दी। वह उसे न पढ़ सकता था, न समझ सकता था। वह बहुत साधारण उर्दू लिखना-पढ़ना जानता था, तथा अंग्रेज़ी में किसी तरह नाम लिख सकता था। एक-दो प्राइमरी की पुस्तकें उसने पढ़ी थीं। हां, अंग्रेज़ी बोलने का अभ्यास उसका अच्छा था। परन्तु आज तो उसकी हीन भावना का दिन था। आज वह अपने जीवन की हीनता ही हीनता देख रहा था। उसने यहां आकर देखा कि इस ज्ञानसागर में तो डुबकी लगाने की योग्यता भी उसमें नहीं है। आत्म-ग्लानि ने उसे अभिभूत कर लिया। उसका मन हुआ कि वह जमुना में डूब मरे, वह उस बड़े-से पोथे को खोल, उसे टेबल पर सामने रख आंखें चढ़ाए पढ़ने का ढोंग कर रहा था। पर वह पढ़ रहा था अपने अब तक के आत्मचरित्र को। वह अपना नग्न, असहाय, नगण्य, हीन व्यक्तित्व देख और उसे भली भांति समझ रहा था।

बड़ी देर तक वह उसी भांति बैठा रहा। बहुत लोग आए, बहुत उठकर चले गए। इसका उसे कुछ भी ज्ञान न था। इस समय उसके मन में एक दुर्दम्य आकांक्षा उत्पन्न हो रही थी कि या तो वह ज्ञानार्जन करेगा या जान दे देगा। वह आकांक्षा संकल्प में बदलती जा रही थी। और अन्ततः उसने संकल्प किया कि वह अपने भाग्य से लड़ेगा। भाग्य ने उसे जहां बैठा दिया है, वहां से वह नीचे न गिरेगा।

एक झटके के साथ वह उठ खड़ा हुआ और पुस्तक को यों ही टेबल पर छोड़कर चल दिया।

सूर्यास्त हो चुका था। स्टेशन के बाहर सैकड़ों बत्तियों का प्रकाश फैल रहा था। कुछ देर वह चुपचाप खड़ा उस प्रकाश को और आने-जाने वालों की भीड़ को देखता रहा। पैदल, मोटर, रिक्शा, तांगा—इन सबका तांता बंधा था। सब इधर से उधर दौड़ रहे थे। उसने अपने मन में कहा, 'सब जीवन की दौड़ लगा रहे हैं। केवल मैं चुपचाप खड़ा हूं, सूखे ठूंठ की भांति। नहीं, नहीं, मैं इस प्रकार यहां खड़ा नहीं रहूंगा। दौड़ लगाऊंगा। और सब दौड़ने वालों से आगे पहुंचूंगा।' उसकी छाती में मानो कोई बिजली का करंट छू गया। वह तेज़ी से एक ओर चल दिया। एक स्कूटर खाली जा रहा था। उसे संकेत से रोककर कहा, 'चलो, तीस हज़ारी। बंगला नम्बर तीन सौ दस।'

उसने इस शान से ये शब्द कहे मानो वह कोई बड़ा अफसर हो। वह स्कूटर में बैठ गया। वह मजिस्ट्रेट जोगेन्द्रसिंह के बंगले की ओर जा रहा था। किसी अज्ञात प्रेरणावश। बिना ही सोचे-विचारे उसके मुंह से उनके बंगले का नम्बर निकल गया था।

जब वह मजिस्ट्रेट जोगेन्द्रसिंह के बंगले पर पहुंचा तो जोगेन्द्रसिंह कहीं जाने को मोटर में बैठ रहे थे। उस दिन उनके मकान पर मुशायरे का खूब रंग जमा था। पर उस दिन के बाद जुगनू उनसे मिला नहीं था। इस समय अचानक उसे आया देख जोगेन्द्रसिंह प्रसन्न हो गए। उन्होंने प्रसन्न मुद्रा से उच्च स्वर में कहा, 'कम आन मुंशी, भई, उस दिन के बाद से ऐसे गायब हुए जैसे गधे के सिर से सींग।'

मजिस्ट्रेट साहब ज़ोर से हंस दिए। आगे बढ़कर उन्होंने जगन का हाथ पकड़ लिया और कहा, 'अच्छा, कहीं जल्दी में तो नहीं हो ?'

'जी नहीं, आज फुर्सत निकालकर ही आपसे मिलने आया हूं।'

'तो बैठो गाड़ी में।'

जुगनू स्कूटर वाले को देने के लिए पैसे निकालने लगा तो मजिस्ट्रेट ने उसे मोटर में धकेलते हुए कहा, 'तुम बैठो मुंशी। पैसे उसे चपरासी दे देगा।' और वह स्वयं भी ड्राइव करने के स्थान पर बैठ गए। चपरासी को उन्होंने स्कूटर वाले को पैसे देने का संकेत किया और मोटर छोड़ दी।

१३

कनाट प्लेस के एक 'बार' के सामने मोटर रोककर सरदार जोगेन्द्रसिंह ने पूछा, 'पीते तो हो मुंशी ?'

'जी नहीं, मैंने कभी नहीं पी।'

'तो फिर तुम कायस्थ कैसे हो ?' जोगेन्द्रसिंह ने हंसकर जुगनू का हाथ पकड़कर भीतर धकेलते हुए कहा।

यद्यपि यह एक विनोद-वाक्य था, परन्तु इस वाक्य को सुनकर जुगनू एक बार ठण्डा पड़ गया। उसने सोचा, 'सचमुच मुझे कायस्थ बनना है तो पीना अवश्य चाहिए।' वह नहीं जानता था कि कायस्थ आम तौर पर पीते-पिलाते हैं। पर उसके सम्बन्ध में कायस्थ होने की जो कल्पना कुछ परिचितों में थी, जिनमें जोगेन्द्रसिंह भी थे, उसे कुछ संदिग्ध बनाना नहीं चाहता था। वह चुपचाप उनके पीछे 'बार' में चला गया। वहां बहुत लोग खा-पी रहे थे। अपने जीवन में जुगनू ने पहली ही बार यहां देखा कि खाने-पीने में भी विलास का उत्कट रूप कैसा होता है ! चारों ओर चमचमाती मेजें, उनके इर्द-गिर्द स्प्रिंगदार सोफे और उनपर बैठे सम्भ्रान्त स्त्री-पुरुष जिन्हें देखकर आंखें चौंधियाती थीं। एक विचित्र गन्ध और भिनभिनाहट से वातावरण प्रेरित था। जुगनू हक्का-बक्का यह रूप देख रहा था। सरदार जोगेन्द्रसिंह ने बैरा को बुलाकर आर्डर दिया, 'बैरा, दो व्हिस्की।'

इसी समय पीछे से आवाज़ आई, 'दो नहीं, तीन।'

इसके बाद खिलखिलाकर हंसने की ध्वनि हाल में गूंज गई।

सरदार ने पीछे घूमकर देखा, एक अधेड़ आयु का काफी मोटा और बेडौल-सा आदमी हंसता हुआ उन्हींकी ओर आ रहा है। उसे देखकर सरदार जोगेन्द्रसिंह ने ज़रा रुआब-भरे स्वर में कहा, 'अच्छा, आप हैं, सेठ फकीरचन्द, आइए, इनसे मिलिए। हमारे दोस्त मुंशी, मुंशी....'

सरदार जोगेन्द्रसिंह मुंशी का नाम भूल गए। जुगनू ने कहा, 'जी, मेरा नाम जगनपरसाद है, मैं कायस्थ हूं।'

सेठ फकीरचन्द ने आगे बढ़कर उससे हाथ मिलाते हुए कहा, 'बड़ी खुशी

हुई आपसे मिलकर। क्या आप नये ही दिल्ली में आए हैं ?'

'जी नहीं, लेकिन मैं यहां थोड़े ही दिन से हूं। मैं ज़िला कांग्रेस-कमेटी का ज्वाइंट सेक्रेटरी हूं।'

'ओफ्फो, तब तो आप हमारे माई-बाप ही हैं। अब यह तो कांग्रेसी राज्य ही है।' वह फिर भद्दे ढंग से हंस दिया।

बैरा तीन पैग व्हिस्की, सोडे की बोतल, गिलास और बर्फ तथा नमकीन काजू रख गया।

क्षण भर सरदार ने प्रतीक्षा की कि मुंशी पैग ढाले। पर मुंशी पीना-पिलाना नहीं जानता था। यह देखकर सरदार जोगेन्द्रसिंह स्वयं गिलास में बर्फ डालने लगे।

इसपर सेठजी ने कहा, 'वाह सरकार, आप ठहरिए। यह काम तो मेरा है।'

सेठ ने पैग तैयार किए। तीनों आदमी व्हिस्की की चुस्कियां लेने और काजू गटकने लगे। मुंशी ने भी साथियों का अनुकरण किया। सेठ और मजिस्ट्रेट बातें करते जाते थे। जुगनू गुपचुप सुन रहा था। शराब उसे कड़वी लग रही थी और बातचीत वह कुछ समझ नहीं पा रहा था। सेठजी ने हंसते हुए कहा, 'यह क्या मुंशी, दवा पी रहे हो या शगल कर रहे हो ?'

सरदार ने कहा, 'मुंशी कभी पीते नहीं। आज फंस गए हैं।'

'अरे यार, तो तुम हमारी सोहबत में नहीं रह सकते।'

पैग खाली हो चुके थे। सेठ ने दूसरे तीन पैग लाने का आर्डर दिया।

जुगनू ने कहा, 'मैं तो माफी चाहता हूं। अब और न पी सकूंगा।'

'देखता हूं कैसे नहीं पी सकोगे। कायस्थ-बच्चे हो, कोई हंसी-खेल नहीं।'

पैग आ गए और जुगनू ने कायस्थ-बच्चा होना अप्रमाणित न हो जाए, इसलिए चुपचाप उसे भी गले से उतार दिया।

शराब अब मस्तिष्क में अपना असर कर रही थी। उसे अपना शरीर कुछ अधर में झूलता-सा लग रहा था। एक सुखद-सी असावधानता वह अपने मस्तिष्क में अनुभव कर रहा था। उसे प्रतीत हो रहा था कि वह किसी स्वप्न-लोक में आ गया है।

सेठ ने मजिस्ट्रेट से पूछा, 'अब सरकार की सवारी किधर जाएगी ?'

'जिधर आप ले जाएं।'

'तो चलिए जी० बी० रोड, एक नई चिड़िया आई है, उसीकी बानगी देखी जाए।'

'अरे यार, आज जी० बी० रोड की कोई आधी दर्जन चिड़ियों का चालान कर चुका हूं। कहीं वही जानी-पहचानी न हों।'

'तब गोली मारिए। चलिए मोती के कोठे पर। उसका नाम तो आपने सुना होगा ?'

'सुना तो है। सुना है खूब गाती है।'

'अब हाथ कंगन को आरसी क्या ? चलकर देखिए।'

'मगर दोस्त तख्लिया हो।'

'सरकार खातिर जमा रखें। वह घर तो अपनी लौंडी का है।'

'खैर, तो मुंशी से तो पूछ लो।'

'उनसे क्या पूछना, अभी बचकाने हैं। अभी तो ए बी सी डी सीखना है उन्हें।'

तीनों आदमी उठ खड़े हुए। सेठ ने बिल पेमेण्ट किया। बैरा को टिप दिया और बाहर आए। सेठ ने सरदार से कहा, 'सरकार की गाड़ी ही में चलेंगे। अपनी गाड़ी मैं यहीं छोड़ देता हूं।' तीनों गाड़ी में बैठे। गाड़ी जी० बी० रोड पर मोतीबाई के कोठे के नीचे आ लगी।

कार के रुकते ही दो-तीन दलाल गाड़ी का दरवाज़ा खोलने को लपके। एक ने भीतर झांककर देखा और साथी से कहा, 'अबे हट, देखता नहीं। नवाब के सेठजी मोतीबाई के कोठे पर जाएंगे।' उसने सेठ को झुककर सलाम किया और आवाज़ दी, 'भई नवाब, तुम्हारे सेठ हैं, आओ इधर।'

जिसे नवाब कहकर पुकारा गया था, वह एक दुबला-पतला आदमी था। साफ अद्धी का बगुला के पर के समान सफेद कुर्ता, लट्ठे का चुस्त पायजामा, पैर में पंप शू, उंगली में अधजली सिगरेट, मुंह में पान की गिलौरी, सिर पर लखनऊ की दुपल्लू टोपी, ढलती उम्र, किन्तु ऊपर से नीचे तक शौकीन, पनवाड़ी की दूकान से उतरा, लपकता हुआ आया। कार का दरवाज़ा खोला और 'हुज़ूर' कहकर तीनों को झुककर सलाम किया।

सेठजी ने कहा, 'भई नवाब साहब, क्या हाल-चाल है ?'

'सब खैरसल्ला है हुजूर, चलिए ऊपर तशरीफ ले चलिए।' उसने लखनवी अदा से झुककर लाला को ज़ीने की ओर चलने का इशारा किया। कोठे पर से गाने की आवाज़ आ रही थी।

लाला फकीरचन्द ने कहा, 'ऊपर कौन है नवाब ?'

'कोई एक रईस साहबज़ादे हैं। उनके साथ एक दोस्त हैं। नये आसामी हैं, सरकार।'

सरदार जोगेन्द्रसिंह ज़रा संकोच में पड़े। लाला फकीरचन्द ने कहा, 'फिक्र मत कीजिए हुज़ूर, अभी सबका पत्ता काटता हूं। आइए।'

तीनों ऊपर गए।

कमरा कुछ हिन्दुस्तानी, कुछ अंग्रेज़ी ढंग पर सजा था। फर्श पर दूध-सी सफेद चांदनी बिछी थी। मसनद पर दो लौंडे बैठे पान कचर रहे थे। उम्र होगी बीस-बाईस बरस की। सामने मोतीबाई बैठी कोई गज़ल गा रही थी। हलकी आसमानी साड़ी, उसपर गहरे किरमिची रंग की चुस्त अंगिया, मोती-सा रंग, बड़ी-बड़ी आंखें, चांदी-सा माथा, और छरहरा बदन, नर्म गोरी कलाइयों में काला लच्छा, सादगी और माधुर्य की प्रतिमा-सी। लालाजी को देखते ही मोतीबाई ने गाना बन्द कर ज़रा झुककर आदाब बजाया। तबलची और सारंगिये ने भी झुककर सलाम किया।

लाला फकीरचन्द बेतकल्लुफी से मसनद पर लुढ़क गए। सरदार साहब ज़रा रुआब से बैठे। जुगनू सिकुड़कर उनके पीछे, संकोच और घबराहट से परेशान-सा।

'शुरू करो मोतीबाई, कोई ठाठदार चीज़ होनी चाहिए। ये हैं मेरे दोस्त सरदार जोगेन्द्रसिंह मजिस्ट्रेट साहब बहादुर और ये हैं मुंशी—मुंशीजी।' लाला फकीरचन्द जुगनू का नाम भूल गए।

मोती ने एक बार फिर झुककर तसलीमात की और एक ठुमरी का आलाप लिया। तबले पर थाप पड़ी, सारंगी ने सिसकारी ली। वातावरण कंपायमान-सा हो गया।

अभी स्थायी चल रही थी कि लाला फकीरचन्द ने एक सौ रुपये का नोट निकालकर मोतीबाई के ऊपर फेंक दिया। और उसके दो ही मिनट बाद दूसरा।

रईस साहबज़ादे उखड़ गए। ठुमरी खत्म होते ही वे उठ खड़े हुए। लाला ने कहा, 'बैठिए साहबज़ादा साहब, चल कैसे दिए।'

'जी, एक ज़रूरी काम याद आ गया।'

उनके जाते ही नवाब ने ज़ीने का कुण्डा चढ़ा दिया। लाला फकीरचन्द ने कहा, 'लौंडा, साला, चला तमाशबीनी करने को, अब जीमिए सरकार ठाठ से। भई मुंशी, उधर सिकुड़े हुए कैसे बैठे हो? बेतकल्लुफ़ी से बैठो। मोतीबाई से फरमाइश करो।'

जुगनू का इस नई दुनिया में पहला कदम था, व्हिस्की उसके रक्त में उत्पात मचा रही थी। हकीकत तो यह थी कि वह सीधा बैठ नहीं सकता था, सब बातें ठीक-ठीक समझ भी नहीं रहा था, एक स्वप्निल मनुष्य की भांति उसने कहा, 'गज़ल।'

'तो फिर हो जाए गज़ल। एक फड़कती हुई चीज़ हो।'

मोतीबाई ने एक गज़ल खम्माच के सुरों में गाई। सौ रुपए का एक नोट उसकी गोद में आ गिरा।

इसके बाद लाला ने इशारे से गाना बन्द करने का हुक्म दिया। मोतीबाई ने पान की तश्तरी पेश की। वह गाना बन्द कर लाला के और पास खिसककर आ बैठी। लाला फकीरचन्द ने कहा, 'मोतीबाई, कोई बिलकुल ताज़ा माल हमारे हुज़ूर के लिए, और एक चुलबुली-सी छोकरी मुंशी के लिए। समझ गई?'

'अभी लीजिए।' कुछ रुककर उसने जुगनू की ओर देखकर कहा, 'आप वहां सिकुड़े-से क्यों बैठे हैं साहब!' फिर उसने तबलची से कहा, 'उस्ताद, इन्हें राज के कमरे में पहुंचा दो। कहना, हमारे खास मेहमान हैं और ज़रा हीराबाई को यहां बुला लाओ।'

लाला फकीरचन्द ने गुदगुदाकर जुगनू को उठाते हुए कहा, 'जाओ मुंशी, ऐश करो, सुबह चार बजे मुलाकात होगी।' जुगनू लड़खड़ाते पैरों तबलची के पीछे चल दिया।

थोड़ी ही देर में हीराबाई ने आकर आदाब झुकाया। मजिस्ट्रेट अब कुछ बेतकल्लुफ हो गए थे। नवाब ने व्हाइट हार्स और गिलास सामने ला धरा। मोतीबाई ने पैग तैयार करके पेश किए और हीराबाई को सरदार साहब के

ऊपर धकेलते हुए कहा, 'लीजिए हुजूर, संभालिए अपने माल को।' काफी देर तक हंसी-मज़ाक, ड्रिंक-खुराफात चलता रहा। नवाब और उस्ताद लोग वहां से खिसक गए। कमरे की रोशनी मद्धम कर दी गई। हविस, वासना, धीरे-धीरे अपना नंगा स्वरूप धारण करने लगीं। अश्लील वाक्य और हाथापाई तक नौबत पहुंची और अन्त में हीराबाई सरदार जोगेन्द्रसिंह की भारी-भरकम लाश को धकेलती हुई अपने कमरे में ले गई। लाला फकीरचन्द ने वहीं मसनद पर अपने पांव फैला दिए।

१४

सुबह चार बजे जब तीनों आदमी मोतीबाई के कोठे से उतरे तो जुगनू का नशा उतर चुका था। परन्तु उसका सिर दर्द से फटा जाता था। होश-हवास अभी भी उसके दुरुस्त न थे। नशा न था, एक स्वप्न था, जो उसकी चेतना को घेरे हुए था। वह स्वस्थ और तरुण व्यक्ति था। स्वस्थ कामवासना स्वाभाविक रूप में उसके शरीर में जागरित थी। एक तरफ उसे स्त्री का स्पर्श दुष्प्राप्य था, दूसरी ओर शारदा और पद्मा की स्त्री-मूर्ति उसके मानस पर निरंतर काम-विकार का पुट चढ़ाए रहती थी। इस उत्तप्तता और काम-बुभुक्षा के तीव्र आवेग में उसे आज अनायास ही अयाचित रूप में जो दुर्लभ नारी-यौवन का मुक्त स्वच्छन्द उपभोग प्राप्त हुआ, वह तो उसके लिए अनिर्वचनीय था ही, उसपर शराब की उत्तेजना ने उसे आनन्दातिरेक की सीमा पर पहुंचा दिया। उसका सम्पूर्ण तारुण्य आज तृप्त हुआ। जीवन में पहली बार भूख की तड़प और तृप्ति दोनों का आस्वादन उसने किया। उसका प्रत्येक रोमकूप, उसके शरीर का प्रत्येक रक्त-बिन्दु, उसके मस्तिष्क की सम्पूर्ण चेतना काम-तत्त्व से आपूर्यमाण हो गई। वह जैसे कामावेग के अथाह समुद्र में डूब गया।

वह जग रहा था, पर इसका उसे ज्ञान न था। कार तेज़ी से जा रही थी। सुबह की ठंडी हवा का झोंका उसे सुखद लग रहा था।

लाला फकीरचन्द अपनी कार में घर चले गए थे और सरदार को उनकी गाड़ी में छोड़ गए थे। उनका ड्राइवर रात भर गाड़ी में सोता रहा था।

अपनी गाड़ी में बैठकर सरदार जोगेन्द्रसिंह ने कहा, 'मुंशी, अब इस हालत में इस वक्त कहां जाओगे। चलो हमारे ही घर चलो।'

'बहुत अच्छा,' इतना कहकर जुगनू फिर चुपचाप पड़ रहा। घर पहुंचकर सरदार जोगेन्द्रसिंह ने जुगनू के आराम करने का प्रबन्ध कर दिया और स्वयं आराम करने चले गए।

बहुत देर तक जुगनू सोता रहा। जब उसकी आंख खुली तो काफी दिन चढ़ आया था। रात की बीती हुई बातें उसे सपने-सी लग रही थीं। जो दिन बीत चुका था, वह उसके जीवन में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण था। इसी दिन उसने अपनी हीनावस्था का सच्चा दर्शन किया था। इसी दिन उसने ज्ञानलोक की झांकी देखी थी और इसी दिन उसने वासना का सम्पूर्ण वैभव उपभोग किया था। इन तीनों बातों ने उसकी चेतना को बुरी तरह आहत कर दिया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, बीते हुए दिन के चौबीस घण्टों ने उसे एक सर्वथा नवीन जीवन दे दिया है। अब वह पुराना जुगनू नहीं है, नया जगनपरसाद है। उसने देखा, उसका मस्तिष्क ज्ञान से खाली है। वह सोच रहा था, वह उसे ज्ञान-सागर से भर देगा। वह देख रहा था, वह जीवन के सम्पूर्ण सुख से रहित है। वह सोच रहा था, वह अब संसार के ऐश्वर्य और सुख की अपने चारों ओर गंगा वहा देगा। परन्तु अभी एक बात का, एक अभाव का उसे पता न था। उसकी जेब खाली है, हाथ खाली है, वह दरिद्र है। वह यह नहीं जानता था कि जब तक वह दरिद्र है, खाली हाथ है, तब तक उसके सारे प्रयास निष्फल हैं। वह ज्ञान के भण्डार का स्वामी हो सकता है, भोग और सुखों को अपने चारों ओर बिखेर सकता है, परन्तु वह नहीं जानता था कि जब तक धन-सम्पदा उसके चरण नहीं चूमती, वह यथार्थ भोगों का आनन्द नहीं ले सकता।

अभी वह अपने विचारों में खोया-खोया बैठा था। नौकर ने उसे कहा, 'आप नित्यकर्म से निबटकर नहा लीजिए। सरदार साहब चाय पर आपकी प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

वह उठा। उठकर उसने स्नान किया, स्नान करने से उसका मन हरा हुआ। भीतर से प्रसन्नता की, आनन्द की एक धार जैसे उमड़ी चली आ रही थी और जब वह मजिस्ट्रेट साहब के बराबर कुर्सी पर बैठकर चाय पी रहा था, तो वह अनुभव कर रहा था कि वह जहां बैठा है, अपने स्थान पर ही है। अब

तक की हीनभावना उसके मन से दूर हो चुकी थी। आशा, उत्साह और अभिलाषाओं का उसके मन में ज्वार उमड़ रहा था। उसने बड़े वेमन और लापरवाही से मजिस्ट्रेट की बातों का जवाब दिया।

जोगेन्द्रसिंह ने कहा, 'बड़े संजीदा हो रहे हो मुंशी। क्या शायरी का कोई नया मज़मून गांठ रहे हो ?'

परन्तु जुगनू ने एक मुस्कराहट में इसका जवाब दिया। फिर हाथ का प्याला रखकर वह एकदम उठ खड़ा हुआ। उसने कहा, 'अब इजाज़त लूंगा, सरदार साहब ! रात भर की कैफियत मुझे भाभी साहबा को देनी होगी। नमस्ते।'

सरदार साहब ने हंसते हुए हाथ मिलाकर कहा, 'भाभी से बहुत डरते हो भई, मजिस्ट्रेट की शहादत पेश कर देना। हम कह देंगे मुंशी रात भर हमें अपने शेर सुनाते रहे।'

जुगनू ने केवल 'शुक्रिया' कहा और चल दिया।

१५

दिल्ली का वातावरण एकाएक सरगर्मी से भर गया। इसके दो कारण थे। एक दशहरे की आमद, दूसरे म्यूनिसिपैलिटी के चुनाव। बूढ़े और जवान, नये और पुराने सब तबके के आदमियों में एक नई स्फूर्ति भर गई। लाला फकीरचन्द को भी जनसंघ ने अपने टिकट पर खड़ा किया। लड़ाई के दिनों में उन्होंने पचास हज़ार रुपया वारफण्ड में देकर कपड़े और लोहे के भारी परमिट लिए थे, जिसमें उन्होंने एक करोड़ रुपया कमाया था। परन्तु अब वे सब राजनीतिक झमेलों से दूर थे। चन्दा देना पसन्द नहीं करते थे। हकीकत यह थी कि गांठ का पैसा बेकार जाए यह वे नहीं चाहते थे। इस बार बिरादरीवालों ने उन्हें समझाया, और जनसंघियों ने उन्हें घेरा। मुहल्ले के वसन्तामल जनसंघी थे ; पर थे फाकेमस्त। वे लाला फकीरचन्द के पैसों से गाड़ी धकेलना चाहते थे। उन्होंने हिन्दूधर्म और गोवध का नारा बुलन्द करके लाला फकीरचन्द को जनसंघ के टिकट पर म्यूनिसिपल चुनाव में खड़ा कर दिया। वसन्तामल ने उनके

कान में धीरे से कह दिया, 'देखो, यह साला सेठ राधाकिसन मेम्बर बनकर तीन बरस में लखपति बन गया।' कांग्रेस की ओर से शोभाराम की सिफारिश से मुंशी जगनपरसाद खड़े हुए। शोभाराम अब कुछ स्वस्थ हो रहे थे और थोड़ी देर को दफ्तर भी चले आते थे। जुगनू में अब बड़ा परिवर्तन हो गया था। वह गम्भीर और विचारशील बन गया था। उसकी दुर्दम्य कामवासना में तनिक भी अन्तर न आया था, परन्तु पद्मादेवी से वह दूर ही दूर रहता था। इसके अतिरिक्त वह प्रतिदिन नियमित रूप से दो घंटा लाइब्रेरी में बैठता था। कुछ दिन वह केवल दैनिक समाचारपत्र पढ़ता रहा। बाद में मासिक मैगज़ीन पढ़ने की ओर उसकी रुचि गई और अब वह पुस्तकें पढ़ता था। शुरू में उसने दो-चार उपन्यास पढ़े, पर जब से चुनाव का प्रश्न छिड़ा और वह म्युनिसिपल कमिश्नर होने के स्वप्न देखने लगा, तब से उसकी अभिलाषा बढ़ी कि भाषण देने का उसे अभ्यास होना चाहिए और नागरिकशास्त्र का भी उसे अभ्यास करना चाहिए। शोभाराम उसे जब-तब नागरिकशास्त्र के सम्बन्ध में बहुत-सी बातें बताते रहते थे, और उसे अमुक पुस्तक पढ़ने की सलाह भी देते रहते थे। वही पुस्तक वह दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी में आकर पढ़ने लगता। रात को बड़ी देर तक वह हिन्दी का अभ्यास करता रहता। शोभाराम ने उसे बताया था कि कांग्रेस टिकट पर दिल्ली म्यूनिसिपैलिटी का सदस्य बनना आसान नहीं है। वह एक दिन वहां का चेयरमैन भी बन सकता है। अतः इसके लिए उसे तैयारी करनी चाहिए। उच्चाकांक्षाएं वासना की भांति ही उसके मन में पनप रही थीं और वह सब तरह पूरी सावधानी से, तन-मन से परिश्रम करके अपनी सारी ही दुर्बलताओं को मिटाने की प्राणपण से चेष्टा कर रहा था।

रामलीला की धूमधाम भी चुनाव की धूमधाम में मिल गई। दिल्ली की रामलीला भी एक ऐसा समारोह है, जिसका समूची दिल्ली पर एक सांस्कृतिक प्रभाव पड़ता है। यद्यपि अभी तक भी उसका रूप वैसा ही दकियानूसी है, पर राष्ट्रपतिजी, प्रधानमन्त्रीजी और विदेशी राजदूतों की उपस्थिति ने उसका महत्त्व बहुत बढ़ा दिया है। जनसंघ हिन्दुत्व के उत्कर्ष और हिन्दूधर्म के सांस्कृतिक रूप को लेकर रामलीला के कारण जनता में जो जोश था, उससे लाभ उठाने लगा। कांग्रेस की दिल खोलकर बुराइयां होती थीं, परन्तु ये सारे सलाम-पैगाम व्यर्थ गए। इसी वार्ड से विजय हुई कांग्रेसी उम्मीदवार मुंशी

जगनपरसाद की और अब तिरंगे झण्डों की छाया में 'मुंशी जगनपरसाद ज़िन्दाबाद, गांधीजी की जय, बन्दे मातरम्, झण्डा ऊंचा रहे हमारा' के शोरगुल और धूमधाम के साथ चुनाव-समाप्ति हुई। रामलीला भी खत्म हुई। दीवाली की तैयारी होने लगी। लाला फकीरचन्द बीस हज़ार से पिट गए। हाथ-पल्ले कुछ भी नहीं आया। मोटी-मोटी रानों पर हाथ मारकर कहने लगे, 'देखूंगा इस मुंशी के बच्चे को।'

मुंशीजी की जीत के जशन मनाने को जल्से हो रहे थे और मुंशी जगनपरसाद फूलमालाओं से लदे-फदे दोनों हाथ जोड़कर जयहिन्द कह रहे थे। वे कह रहे थे, 'दोस्तो, यह मेरी नहीं आपकी जीत है। कांग्रेस की जीत है; महात्मा गांधी की जीत है। मैं तो मुल्क का एक खादिम हूं। अदना खादिम।'

१६

परन्तु दिल्ली शहर का म्यूनिसिपल कमिश्नर बनना इतना हलका और आसान भार न था कि जुगनू जैसा कुसंस्कारी, समाज और सभ्यता से लगभग सर्वथा वहिर्गत व्यक्ति आसानी से उसका भार संभाल लेता। अभी तो वह इतना भी नहीं जानता था कि म्यूनिसिपल कमिश्नर बनने का दायित्व क्या होता है तथा उसपर उसका क्या नैतिक और सामाजिक प्रभाव पड़ता है। वैसे भी वह इस पद के लिए नितान्त अयोग्य व्यक्ति था।

निस्सन्देह कांग्रेस का पतन हो रहा था और उसके पतन का मुख्य कारण था अयोग्य व्यक्तियों को दायित्व के पद देना। इसे वे लोग जन-जागरण का अंग मानते और जनता को ऊंचा उठाने का एक सूत्र कहते थे, परन्तु इससे समाज और व्यवस्था दोनों के ही ढांचे में जो एक बेढंगापन आता जा रहा था, इसकी ओर कांग्रेस आंख उठाकर नहीं देख रही थी। कांग्रेस स्वयं एक पार्टी थी। कांग्रेस-राज्य होने के कारण उसका बल बढ़ा हुआ था। सत्तारूढ़ होने के प्रथम भी वह देश की सर्वाधिक सुदृढ़ और क्रियाशील पार्टी थी। देश पर उसकी धाक थी। देश के सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति और चोटी के नेता कांग्रेस के साथ थे। परन्तु उसीकी पार्टी-नीति ने देश में अनेक दलबन्दियां उत्पन्न कर दी थीं। पाकिस्तान

बनने से उसकी सबसे बड़ी प्रतिद्वन्द्वी संस्था मुस्लिम लीग तो अब खत्म हो गई थी, पर जनसंघ वैसी ही साम्प्रदायिक भावना से अब पनप रहा था और हिन्दू जनता की एकमात्र हिमायती संस्था होने का दावा कर रहा था। इसके अतिरिक्त समाजवादी दल, प्रजा समाजवादी दल, कम्युनिस्ट दल, सिख संघ आदि और भी दल थे जो राजनीतिक थे। केवल सिखों का संघ और जनसंघ एक हद तक साम्प्रदायिक थे। परन्तु वे अपने को राजनीतिक दल ही मान रहे थे। और इस प्रकार भीतर शासन में भी और बाहर सामाजिक व्यवस्था में भी एक प्रकार की ऐसी धांधली और अव्यवस्था मची हुई थी कि उसे खुशी से मानसिक व्यभिचार कहा जा सकता है। सबसे बड़ी बात यह थी कि कांग्रेस राज्य-सत्ता को चला रही थी। इससे ये सारे ही दल कांग्रेस-विरोधी दल थे। आपस में इनमें विरोध बहुत था, पर वे कभी टकराते नहीं थे। परन्तु कांग्रेस से सब पृथक्-पृथक् भी और एकत्र होकर भी कारण-अकारण मोर्चा लेते थे। उनकी नीति ही कांग्रेस का विरोध करने की थी और इस विरोध की चोट उस व्यक्ति को सीधी सहनी पड़ती थी, जो कांग्रेस में एक विशिष्ट स्थान पा जाता था। इस हिसाब से दिल्ली नगर का म्यूनिसिपल कमिश्नर होना जुगनू के ऊपर असह्य भार था। प्रथम तो वह हर तरह अयोग्य व्यक्ति था, दूसरे सच्चे अर्थों में वह यथार्थ कांग्रेसवादी न था। न वह कांग्रेस के सिद्धान्तों को जानता ही था, न मानता ही था। परिस्थितियों ने उसे धकेलकर आगे कर दिया था और अब उसे बाहर से भीतर की ओर वाम गति से कांग्रेस का एक प्रमुख पुरुष बनना पड़ गया था।

शोभाराम उसकी पीठ पर थे। शोभाराम, सच पूछा जाए तो, उसके एकमात्र अवलम्ब थे। दुर्भाग्य से अस्वस्थता के कारण शोभाराम अपने स्थान पर उसे बढ़ाए जा रहे थे। यह उसका बड़ा भारी भाग्योदय था। म्यूनिसिपल कमिश्नर होने पर शोभाराम और पद्मादेवी ने उसे बहुत-बहुत बधाइयां दीं। परन्तु बधाइयों की अब उसे क्या कमी थी। अब तो उसे पार्टियां दी जा रही थीं। सम्मानपत्र दिए जा रहे थे। अब उसके पास अत्यन्त व्यस्त कार्यक्रम था। उसे अब भाषण करने की आवश्यकता थी, पर वह भाषण नहीं कर सकता था। बोलने योग्य विषय-विवेचना की सामर्थ्य उसमें नहीं थी। अब तक शोभाराम उसे संभालते आए थे। अस्वस्थ रहने पर भी वे हर पार्टी

में जाते, उसकी ओर से दो-चार शब्द कहते। उन्होंने बड़ी कठिनाई से उसे दो-चार वाक्य याद करा दिए थे। जब भी कोई समारोह होता, वह लाज और संकोच से सिकुड़ा-सा हाथ जोड़कर अत्यन्त गम्भीरता से कहता, 'मित्रो, आपकी कृपा का आभारी हूं। मैंने प्रतिज्ञा की है कि मैं भाषण नहीं दूंगा। मैं जो चाहता हूं, वह कहकर नहीं, करके दिखाना चाहता हूं।'

इतनी-सी बात पर तालियों की गड़गड़ाहट से पार्टियां गूंज उठतीं। लोग उठकर उससे हाथ मिलाने और परिचय प्राप्त करने को आतुर हो उठते। वह इन सब बातों से थका हुआ, परेशान-सा घर लौटता। बहुत देर तक उसे नींद नहीं आती। वह अपने भूत-भविष्य पर आधी-आधी रात तक विचार करता रहता।

परन्तु अब तो उसके बोलने की बारी ही थी। कमेटी की बैठकें होने लगीं। वह कांग्रेस ग्रुप का लीडर था। धीरे-धीरे उसने अपने पद की महत्ता को समझ लिया। दूसरों को वह ज़ोर-शोर से भाषण देते सुनता, उसके मन में होता कि वह भी वैसे ही धड़ल्ले से बोले। पर खड़े होते ही उसका दिल धड़कने लगता था।

अभी नये चुनाव की बधाइयां चल रही थीं कि दिवाली की धूमधाम ने जुगनू को धर दबोचा। चारों ओर से मिठाइयों के थाल और उपहार चले आ रहे थे। आज उसे प्रथम बार ही अनुभव हुआ कि उसका न कोई परिवार है, न उसका कोई पारिवारिक जीवन है। न वह सच्चे अर्थों में नागरिक है। वास्तव में वह समाज-बहिष्कृत एकाकी पुरुष है, परन्तु आज उसे अनधिकृत रूप में नगर-पिता होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है और तत्काल ही जैसे उसे सभी प्रकार के नागरिक अधिकार प्राप्त हो गए हैं। वह न केवल एक सभ्य-शिष्ट नागरिक बन गया है अपितु शिष्ट नागरिकों का एक अधिष्ठाता, एक अग्रपुरुष बन गया है। इसीसे लोग उसकी जय-जयकार मनाते हैं, उसके सम्मान में दावतें देते हैं, उसे भेंट-उपहार भेजते हैं। उसे गर्व का आभास होता था। वह सोच रहा था कि वह भी यदि एक सभ्य-शिष्ट नागरिक होता, उसका एक प्रतिष्ठित परिवार होता, पत्नी होती, बच्चे होते तो आज उसका सम्पूर्ण जीवन पल्लवित हो उठता।

उसके पास आए हुए सभी उपहार पद्मादेवी के पास पहुंचते थे। प्रत्येक समारोह की पूर्ति वह शोभाराम की सहायता से करता था। परन्तु दो काम

उसने और भी यत्न से जारी रखे थे। एक दैनिक पत्रों का अध्ययन, दूसरे दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी में जाकर पुस्तकावलोकन। कौन-कौन पुस्तकें उसे पढ़नी चाहिएं, इसके लिए वह शोभाराम से परामर्श लेता था। और हिन्दी के अध्ययन के लिए उसने पद्मादेवी से सहायता लेना आरम्भ कर दिया था। शोभाराम के आग्रह से पद्मा ने यह भार लिया था। वह उसके भाषण, वक्तव्य तैयार कर देती थी, उसके लेखों में सुधार कर देती थी। उसे इस प्रकार की सहायता देने में पद्मा को सुख मिलता था और पद्मादेवी से ये सब सहायताएं प्राप्त करके जुगनू को प्रसन्नता होती थी। इसमें एक बात यह भी थी कि एकान्त मिलन, वार्तालाप, विनोद और सहवास के अधिक अवसर मिलते जा रहे थे। दोनों परस्पर अब अधिक संकोचरहित और खुले हो गए थे।

बहुधा वह कार्यव्यस्त रहता। शोभाराम प्रातःकाल जल्दी भोजन करके आफिस चले जाते। किन्तु जुगनू भोर ही निकल जाता और दोपहर में देर से आता। पद्मा उसके लिए गर्म खाना लिए बैठी रहती। जुगनू कहता, 'भाभी, मुझ नाचीज़ के लिए आप इतना कष्ट सहती हैं।' इसपर पद्मा मुस्कराकर रह जाती। कभी-कदाच एकाध विनोद-वाक्य कह देती।

अब उसमें बहुत-सी बातों में परिवर्तन हो चुका था, परन्तु जुगनू की आंखों में जो काम की भूख थी, वह वैसी ही थी। ज़रा भी उसे अवकाश मिलता, वह जाग उठती थी और पद्मा उसे ठीक पहचान गई थी। निस्सन्देह, पद्मा का रोगी पति उसकी काम-बुभुक्षा की तृप्ति नहीं कर पाता था। अपूर्ण अभिलाषा और विच्छिन्न उद्वेग कभी-कभी उसे अत्यन्त क्षुब्ध कर देते थे। उसी मनोवृत्ति में जुगनू के स्वस्थ सबल शरीर को निहारना, उसके साथ एकान्त में मिलना व वार्तालाप करना उसे अच्छा लगता था। इसमें उसे सुख मिलता, तृप्ति मिलती। वह उसके लिए भोजन लिए देर तक बैठी रहती। इसमें भी वह कभी ऊबती नहीं थी, परन्तु सच पूछा जाए तो वह जुगनू के प्रति जो धीरे-धीरे आकर्षित होती जा रही थी इसमें काम-तत्त्व का माध्यम है, यह बात साफ-साफ वह उतनी नहीं समझ पा रही थी, जितनी जुगनू। जुगनू शोभाराम और पद्मादेवी का उपकृत था। उनके अहसानों के बोझ से दबा हुआ था। शोभाराम उसे आश्रय न देते तो उसे खड़े होने का स्थान कहां था? यह वह जानता था, भूला नहीं था और अब तो पद्मादेवी केवल यत्न से उसके आराम और भोजन

की व्यवस्था करती है, यही नहीं, उसके गुरु की भांति उसे लिखना-पढ़ना भी सिखाती है, यह वह देख रहा था। फिर भी उसके मन में बहुधा ऐसी दुर्दम्य वासना उठ खड़ी होती थी कि वह उसे अपने अंक में समेट ले। उसे लेकर कहीं भाग जाए। परन्तु पद्मादेवी का मन केवल चंचल होकर रह जाता था। उसे अधिक से अधिक निकट से देखने का सुख-भाव उसके मन में उदित था, इससे अधिक विकार अभी नहीं बढ़ा था।

१७

जुगनू की तबियत कुछ खराब थी। उस दिन वह घर से बाहर नहीं निकला। शोभाराम आज जल्दी ही दफ्तर चले गए थे। कई मीटिंगें आज उन्हें अटेंड करनी थीं। पद्मादेवी खाने-पीने से जल्दी ही फारिग हो गई थी और अब वह एकान्त में बैठी कोई उपन्यास पढ़ रही थी। परन्तु उपन्यास में उसका मन नहीं लग रहा था। बहुत बातों का विचार उसके मन में उठता था। एक विचित्र प्रकार की चंचलता और उद्वेग वह अपने भीतर अनुभव कर रही थी। घर में आज इस समय अकेले पद्मादेवी और जुगनू थे। बारंबार उसका मन जुगनू की ओर जाता था और हर बार वह अपने विचार को उधर से बलपूर्वक खींचती और पुस्तक में मन लगाने की चेष्टा करती। परन्तु कोई दुर्दम्य आकांक्षा जैसे उसे हर बार खींचकर अपनी ओर ले जा रही थी। हकीकत तो यह थी कि इस समय उसका मन बहुत ही चंचल हो रहा था।

सूने कमरे में घड़ी की टिक-टिक अधिक ज़ोर की सुनाई दे रही थी। कभी उसकी नज़र कमरे में दीवार पर टंगी तस्वीरों पर, कभी पुस्तक पर पड़ती, पर हर वस्तु में उसकी आंखें जुगनू का स्वस्थ यौवन और अभिलाषाओं से भरा-पूरा चेहरा देख रही थीं, जहां आंखों में वासना की ज्वलन्त भूख प्रकट हो रही थी।

वह बड़ी देर तक बैठी इन्हीं सब विचारों के ताने-बाने बुनती रही। यद्यपि सर्दी के दिन थे, पर उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे गर्मी में उसका दम घुट रहा है। किसी अज्ञात प्रेरणावश एक-दो बार अनजाने ही उसके होंठ फड़के और जुगनू

का नाम उनसे फूट पड़ा।

अन्ततः वह पुस्तक सोफे पर एक ओर फेंककर उठ खड़ी हुई और आईने के सामने खड़ी होकर अपने रूप को देखने लगी। ऐसा प्रतीत होता था कि अपने ही रूप पर उसका मोह हो गया है। अपनी कंटीली आंखों में मंजे हुए काजल की रेखा देखकर उसके होंठों पर एक मुस्कान खेल गई। परन्तु दूसरे ही क्षण एक लम्बी सांस भी उसकी छाती से निकली। ज़रा आईने के सामने और खड़ी रहकर उसने अपने बाल ठीक किए, एक नज़र कसी हुई चोली पर डाली। एक आग्रह की प्रवृत्ति अचानक ही उसके मन में जागरित हुई। वह इतनी प्रबल थी कि उसकी सारी चेतना एकबारगी ही उसके वशीभूत हो उठी और वह किसी अज्ञात शक्ति से खिंची हुई चलकर जुगनू के कमरे में जा पहुंची।

जुगनू चारपाई पर पड़ा किसी पत्रिका के पन्ने उलट रहा था। पद्मादेवी को देखते ही वह लपककर झट उठ खड़ा हुआ। वह पद्मादेवी के स्वागत के कुछ शब्द कहना ही चाह रहा था कि उसकी दृष्टि पद्मा के मुख पर गई। वह भावातिरेक से लाल हो रहा था और इस समय उसकी आंखों से एक ऐसी चमक निकल रही थी कि जिसने जुगनू का सोया हुआ सम्पूर्ण यौवन जगा दिया।

वह अभिभूत-सा चुपचाप नीचे को देखता हुआ खड़ा रहा। पद्मादेवी की ओर आंख भरकर देखने और कुछ कहने का जैसे उसका साहस ही खो गया। उसका हृदय ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा।

लगभग ऐसी ही दशा पद्मादेवी की भी हो रही थी। सूने-से अकेले घर में इस एकान्त मिलन से उसकी छाती भी ज़ोर-ज़ोर से धड़क रही थी, संकोच और चंचलता दोनों ही में उसका मन उलझ रहा था।

पद्मादेवी की मनोदशा जुगनू से छिपी न रही। उसकी प्रवृत्ति अत्यन्त भड़क उठी और आंखों से जैसे आग की ज्वाला निकलने लगी। पर उसके मुंह से बोली न निकली। केवल उसके सूखे होंठ फड़ककर रह गए।

पद्मादेवी ही ने संयत होकर कहा, 'अब तबियत कैसी है आपकी ?'

'अच्छी है, जी हां, अच्छी ही है।'

'तो मौसम तो बहुत सुहावना है, ज़रा टहल आइए, मन बहल जाएगा।'

'लेकिन···' जुगनू इतना कहकर चुप हो गया। उसकी नज़र ज़मीन में गड़ गई।

'क्या सोच रहे हैं आप ?'

'जी मैं ? मैं, मैं सोच रहा हूं कि अब मैं यहां से चला ही जाऊं और फिर कभी लौटकर न आऊं।'

'ऐसी खराब बात आप क्यों सोचते हैं भला ? क्या यहां आपको कोई तकलीफ है या मुझीसे कुछ चूक हो गई है कि नाराज़ हो उठे हैं आप ?'

'नहीं, नाराज़ मैं नहीं हूं।'

'तब यहां से चले जाने की इच्छा आपके मन में क्यों उठी ?'

'इच्छा तो मेरी यहां से चले जाने की नहीं है।'

'तब फिर क्या बात है ?'

'बात कुछ नहीं है, पर अवस्था जैसी है उससे मेरा यहां से चला जाना ही ठीक है।'

बड़ी ही कठिनाई से लड़खड़ाती ज़बान से जुगनू ने ये शब्द कहे और एक बार पद्मादेवी की ओर देखने की चेष्टा करके मुंह दूसरी ओर फेर लिया।

पद्मादेवी का मन भी चंचल हो उठा जैसे वह उसके मन की भीतरी बात की तह तक देख चुकी। परन्तु उसने कहा, 'हुआ क्या है, साफ-साफ क्यों नहीं कहते ? क्या उन्होंने कुछ कहा है, या कोई अनुचित व्यवहार किया है ?'

'नहीं, यह सब कुछ नहीं है। मुझसे किसीने कुछ नहीं कहा है, न मुझे यहां कोई कष्ट ही है। फिर आपकी दया का तो मैं बखान नहीं कर सकता। बड़े सुख से मैं यहां रहा। आप दोनों ही आदमी मेरा जितना यत्न से ख्याल रखते रहे, उसके लिए मैं अत्यन्त कृतज्ञ हूं।'

'फिर ऐसी बात क्यों कही कि अवस्था····'

'ओह, वह बात नहीं है पद्मादेवी, पर मैं कैसे कहूं। मेरे मन की मत पूछिए। मेरा मन ही मेरा दुश्मन बन गया है। मैं तो यहां से स्वप्न में भी जाने की इच्छा नहीं रखता, पर मेरा भाग्य बड़ा बोदा है, मन होता है आत्मघात कर लूं। हाय, मेरा सुख सदा के लिए मुझे छोड़ गया। अब तो यह जीवन ही भार है।' इतना कहकर जुगनू दोनों हाथों से मुंह ढांपकर चारपाई पर बैठ गया।

अब असंयत होकर पद्मादेवी एकदम उसके निकट चली आई। उसके सिर पर हाथ धरके कोमल-आर्द्र स्वर में कहा, 'तुम्हारा दुःख मैं नहीं देख सकती। तुम्हारा दुःख क्या है ? मुझसे कहो। मैं सर्वस्व देकर भी उसे दूर करूंगी।'

'नहीं, नहीं, आपकी ये बातें मैं सहन नहीं कर सकता। मुझे आप आज्ञा दीजिए कि मैं अभी यहां से निकल जाऊं, अपने पापी हृदय को लेकर, और कभी यह काला मुंह आपको न दिखाऊं, बस, अब मैं नहीं ठहर सकता।' इतना कहकर वह उठकर उन्मत्त की भांति द्वार की ओर चला। पद्मा ने भी उन्मादिनी की भांति दौड़कर द्वार रोक लिया। दोनों हाथ पसारकर उन्होंने जैसे कराहते हुए कहा, 'नहीं, नहीं, तुम मुझे इस तरह छोड़कर नहीं जा सकते। नहीं जा सकते, ठहरो, तुम्हें मेरी कसम, ठहरो।'

'आह, कसम क्यों दिला दी ? अब आप मना करती हैं तो मैं कैसे जा सकता हूं ! आप जो कहेंगी, वही मैं करूंगा।' उसने पद्मादेवी के मुख की तरफ एक बार देखा, फिर उसके सामने घुटनों के बल बैठकर कहा, 'किन्तु आप नाहक ज़िद कर रही हैं। मैं नहीं जानता कि कब मेरे मुंह से क्या निकल जाए। आप स्वर्ग की देवी हैं। मैं आपकी पूजा करता हूं, परन्तु जब आप सामने आती हैं तो मैं आपे में नहीं रह सकता। मेरा मन मेरे वश में नहीं रहता।'

पद्मादेवी पीपल के पत्ते की भांति कांपने लगी। उसका सर्वांग पीला पड़ गया। उसने लड़खड़ाती ज़बान में कहा, 'यह तुम क्या कह रहे हो जगन ? मेरा सिर घूम रहा है।' इतना कहते-कहते पद्मादेवी धम से पलंग पर बैठ गई। एक बार उसने जुगनू की ओर देखा और आंखें नीची कर लीं।

'मैं क्या कहना चाहता हूं, यह आप जानना चाहती हैं ?' जुगनू ने जैसे जलते हुए शब्दों में कहा। उन शब्दों को सुनकर एक बार पद्मादेवी ने फिर आंख उठाकर जुगनू की ओर देखा। उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे लाल-लाल ज्वलन्त लोहपिण्ड सामने खड़ा है, उसको ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उसे जूड़ी चढ़ आई हो। जुगनू ने वैसे ही आवेशपूर्ण स्वर में कहा, 'आपके पति जैसा उदार पुरुष और आप जैसी श्रद्धा की पात्री स्त्री संसार में दुर्लभ हैं। मेरे रक्त की प्रत्येक बूंद आप दोनों की भक्त है। बड़े भाग्य से पूर्वजन्म के पुण्य से मुझे आप लोगों का आश्रय मिला। मेरा हृदय कृतज्ञता से भरा हुआ है। परन्तु आपको जब से मैंने देखा है, मन ही मन आपकी पूजा करता रहा हूं। स्त्री मात्र में मेरी

नई दृष्टि उत्पन्न हो गई है। मैंने ऐसा पहले कभी नहीं सोचा था। कभी ऐसा अनुभव मुझे नहीं हुआ था। आपको देखते ही एक अनिर्वचनीय सुख का स्रोत मेरी रगों में बहने लगता है। आपकी वाणी स्वर्ग-संगीत के समान मेरे मन में लहर उत्पन्न करती है। आप जब दूसरी ओर देखती होती हैं, तब मैं आपकी रूप-सुधा का पान करता हूं, जितनी ही वह रूप-सुधा मैं पान करता हूं, उतनी ही प्यास बढ़ती है। कभी तृप्ति होती ही नहीं। मेरी इच्छा होती है कि आपके चरण-नख पर अपने उत्तप्त होंठ रख दूं और कहूं—हे सौन्दर्य की देवी, यह अधम तेरा दास और पुजारी है, तेरा चरण-किंकर है।'

इतना कहते-कहते जुगनू एकदम चुप हो गया। उसने एक बार कनखियों से आंख उठाकर पद्मादेवी की ओर देखा, जो पत्थर की निश्चल मूर्ति बनी हुई थी। फिर उसने दोनों हाथों से अपना मुंह ढांप लिया। फिर जैसे एकाएक व्यग्र हो उठा हो। उसने कहा, 'मैं जानता हूं, मैं महापापी हूं, पतित हूं। बौना होकर सूर्य को छूना चाहता हूं। मैं अपने को धिक्कार देता हूं। मैं जानता हूं कि ऐसी दुर्भावना को मन में स्थान देकर मैंने भयानक अपराध किया है। आप कभी मुझे क्षमा न करेंगी। पर मेरा मन मानता नहीं है। इसीसे मैं यहां अब एक क्षण भी ठहरना नहीं चाहता। इसी दम चल देना चाहता हूं। मैं आज ही इस नगर को छोड़ दूंगा। नगर ही क्यों, इस देश को ही त्याग दूंगा। मैं दूर, अति दूर चला जाऊंगा। और आपकी मोहिनी मूर्ति की स्मृति को भुलाने की चेष्टा करूंगा। और यदि मुझे इसमें सफलता न मिली तो मैं पेट पर पत्थर बांधकर किसी नदी में डूब मरूंगा। बस, अब मेरा यही निश्चय है। लो, मैं चला, अभी चला।' इतना कहकर जुगनू उन्मत्त की तरह झपटता हुआ बाहर की ओर चला।

इसपर वध होती हुई गाय की भांति आर्तनाद करके पद्मा ने कहा, 'अरे, अरे, यह क्या करते हो? मत जाओ। मत जाओ।'

जुगनू ने रुककर कहा, 'यह क्या! इतनी बातें सुनने पर भी आप मुझे रोक रही हैं? मुझसे नाराज़ नहीं हुईं, मुझसे घृणा नहीं की आपने? मेरी ऐसी धृष्टता क्षमा कर दी?' वह एकदम पद्मादेवी के निकट आ खड़ा हुआ।

पद्मादेवी ने भर्राए हुए कण्ठ से कहा, 'मैं नहीं जानती कि मैं क्या जवाब दूं। न जाने मुझे क्या हो गया है, पर तुम मुझे इस तरह छोड़कर नहीं जा

सकते ; नहीं जा सकते ।' इतना कहकर पद्मादेवी ने दोनों हाथों से अपना मुंह ढांप लिया। तब जुगनू ने एकदम उनके पैरों के पास धरती में बैठकर कहा, 'यहां रहूंगा तो मैं पागल हो जाऊंगा पद्मारानी, आपको देखने में अपार सुख है और अथाह दुःख है। फिर, मैं यहां रहूं किसलिए...'

जुगनू एकदम चुप हो गया और मुंह उठाकर पद्मा की ओर देखने लगा।

पद्मा ने हांफते-हांफते कहा, 'वह सब मैं नहीं जानती, पर तुम मुझे छोड़कर जा नहीं सकते। ऐसा हो नहीं सकता।' पद्मा अभिभूत-सी होकर जुगनू के शरीर पर झुक गई।

'तो क्या मेरी प्यारी पद्मा, तुम भी मुझे चाहती हो ? मुझे प्यार करती हो ?'

जुगनू ने पद्मा के दोनों हाथ पकड़कर उसे अपनी ओर खींच लिया। पद्मादेवी का सर्वांग कांपने लगा। उसने उठने की चेष्टा की, परन्तु जुगनू ने उसकी कमर में हाथ डालकर उसे अपने अंक में समेट लिया। उसने कहा, 'जब से तुम्हें देखा है, तभी से पागल हो गया हूं। काश, शब्दों में शक्ति होती तो तुम्हें समझाता कि मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूं। किन्तु...मैं पागलों का सा आचरण कर रहा हूं। लेकिन मैं तुम्हें प्यार करता हूं, प्यारी पद्मा, मेरी रानी।'

पद्मादेवी ने बड़ी कठिनाई से उसे दोनों हाथों से पीछे को ढकेला और चुम्बन के लिए बढ़े आते हुए मुख को उसके सिर के बाल पकड़कर रोका और अपना सिर पीछे को झुका लिया। परन्तु उसके मुंह से बात नहीं फूटी, एक भी शब्द वह बोल न सकी, उसकी जीभ जैसे तालू से सट गई। उसमें जुगनू के कामोद्दीप्त अंगारे के समान मुख को देखने की भी सामर्थ्य न थी। उसने दोनों आंखें बन्द कर लीं।

'नहीं, नहीं, कुछ मत कहो, कुछ मत कहो। मुझे ही कहने दो।' उसने मत्त सांड की भांति लम्बे-लम्बे उच्छ्वास लेते हुए कहा। वह उठ खड़ा हुआ और पद्मा को अच्छी तरह अपने अंकपाश में जकड़ लेने के लिए दैत्य की भांति दोनों हाथ पसारकर आगे बढ़ा। परन्तु इसी बीच में पद्मा किसी अदृश्य शक्ति से प्रेरित होकर उठी और कुर्सियों से टकराती हुई कमरे से बाहर की ओर को भागी। जुगनू भी उसे पकड़ने के लिए पीछे भागा, पर टेबल से टकराकर गिर पड़ा। अपने कमरे में जाकर पद्मादेवी ने भीतर से सिटकनी चढ़ा ली और एक-

दम बदहवास की भांति पलंग पर पड़ गई

१८

बहुत देर तक भूमि पर उसी प्रकार जुगनू पड़ा रहा। घर में सन्नाटा था। कहीं से कोई आहट नहीं आ रही थी। बहुत देर बाद उसने मुंह उठाया। दुपहर हो गई थी। धूप में तेज़ी आ रही थी। लेकिन सर्दी के दिन, सिकुड़े-से, ठिठुरे-से। फिर भी मौसम सुहावना था। वह उठा, दुनिया उसे घूमते हुए लट्टू के समान दीख रही थी। यह क्या हो गया, इतनी बातें वह कैसे कह गया, अब क्या होगा? पद्मा क्या शोभाराम से सब हाल कह देगी, और मुझे ज़लील होकर यहां से मुंह काला करना होगा? नहीं, नहीं, अब मैं यहां नहीं रह सकता। मैं न पद्मादेवी को मुंह दिखा सकता हूं, न शोभाराम को। मुझे यहां से बस चल ही देना चाहिए। वह उठा, जैसे-तैसे उसने कपड़े पहने और बिना आहट किए वह मकान से बाहर निकल गया। एक बार उसने पद्मादेवी के कमरे के बन्द किवाड़ों की ओर देखा अवश्य।

पर वह जाए कहां? यह उसकी समझ में नहीं आ रहा था। परन्तु वह तेज़ी से एक ओर चला जा रहा था। उसे न भूख थी, न प्यास। बड़ी देर तक वह बाज़ार के चक्कर लगाता रहा। कई बार वह भीड़भाड़ में लोगों से टकराया, मोटर-रिक्शा की चपेट में आते-आते बाल-बाल बचा। किसीने कहा, 'अन्धे हो,' किसीने कहा, 'अजी साहब, ज़रा संभलकर चलिए,' किसीने केवल नाक-भौं सिकोड़कर देख भर लिया। परन्तु इन सब बातों की ओर उसका ध्यान न था। वह चला ही जा रहा था।

अचानक एक हिंस्र भावना उसके मन में उदय हुई और वह अकस्मात् ही कुछ निर्णय करके एक ओर को चल दिया। शीघ्र ही वह जी० बी० रोड जा पहुंचा और मोतीबाई के कोठे के नीचे जा खड़ा हुआ। परन्तु जिस तेज़ी से चलकर वह यहां तक आ पहुंचा था, उसी तेज़ी से वह कोठे पर चढ़ न सका। ज़ीने के नीचे सड़क पर खड़ा होकर ऊपर को देखने लगा। धूप चारों ओर फैली हुई थी। लोग आ-जा रहे थे। मोटर, रिक्शा, लारी, ट्रक इन सबकी सड़क

पर भरमार थी। भीड़ और शोर—सब मिलकर एक अशान्त-अप्रिय-सा वातावरण बना हुआ था। शान्त रात्रि में सेठ फकीरचन्द के साथ बढ़िया मोटर में बैठकर शराब के नशे में झूमता हुआ जब वह यहां उस दिन आया था और अनायास ही इस स्वर्ग-नसैनी पर चढ़कर स्वर्ग-सुख उपभोग कर गया था, वह सब उसे इस समय एक स्वप्न-सा लग रहा था। उसकी प्रवृत्ति अब सर्वथा पाशविक बन गई थी और वह वासना की प्रचंड आग में तप रहा था। फिर भी ज़ीने की पौर पर उसके पैर नहीं पड़ रहे थे। इसी समय किसीने पीछे से कहा, 'आदाबर्ज़ है हुज़ूरेवाला, कहिए मिज़ाज तो अच्छे हैं !'

जुगनू ने मुंह फेरकर देखा, वही नवाब, वही कोठी, अद्धी का कुर्ता, दुपल्लू टोपी, सुरमई आंखें, होंठों पर पान की लकीर, पैर में पम्प शू !'

'अच्छा, आप हैं। उस दिन आप ही हम लोगों को ऊपर ले गए थे, याद है न ?'

'जी हां, हुज़ूरेवाला हमारे आका लाला फकीरचन्द साहब के साथ तशरीफ लाए थे।'

'जी हां, हमारे साथ एक मजिस्ट्रेट साहब भी थे, जो मेरे बड़े दोस्त हैं।'

'जी हां, मुझे बखूबी याद है, लेकिन अब क्या इरादा है ?'

'ज़रा बीबी से मुलाकात करना चाहता हूं।'

'अब, इस वक्त ?'

'क्या इस वक्त की मनाही है ?'

'मनाही तो नहीं है हुज़ूरेवाला, लेकिन…'

'लेकिन क्या ?'

'खैर आइए, एक प्याला चाय तो पी लीजिए।'

'बस, चाय रहने दीजिए।'

'समझिए, मेरे ऊपर एक अहसान हुआ, आइए।' नवाब जुगनू को लेकर पंजाबी के गन्दे रैस्टोरेंट में घुस गया और सामने खड़े लड़के को आर्डर दिया, 'दो प्याला स्पेशल चाय ले आओ।' फिर एक कुर्सी जुगनू की ओर खिसकाते हुए कहा, 'बैठिए हुज़ूरेवाला, हां, आपका इस्मगिरामी क्या है ?'

'मेरा नाम मुंशी जगनपरसाद है और आप ?'

'मैं नवाब बन्दा-परवर

'कहां के नवाब हैं आप ?'

'जी, नवाब बेमुल्क,' नवाब ने एक ठहाका लगाया और जेब से सिगरेट निकालकर जुगनू की ओर बढ़ाते हुए कहा, 'शौक कीजिए।'

जुगनू ने सिगरेट ली। नवाब ने उसकी और अपनी सिगरेट जलाई। कुर्सी ज़रा पास खिसकाकर कहा, 'हां, तो आज एकाएक इस वक्त कैसे तकलीफ की ?'

'यह क्या कोई जुर्म हो गया ?'

'नहीं बन्दा-परवर, जुर्म नहीं हो गया, लेकिन आम तौर पर इस वक्त लोग अपने रोज़गार-धन्धों में मसरूफ रहते हैं, शाम को तफरीहन इस कूचे में आते हैं।'

'और इस वक्त आएं तो ?'

'महज़ आवारागर्द, छंटे हुए शोहदे इस वक्त इधर आने की जुर्रत करते हैं, या हम लोग, जिनका पेशा ही रज़ील है, लेकिन आप तो एक शरीफ आदमी हैं।'

'यहां हम आ गए तो शरीफ नहीं रहे ?'

'यह तो मैं अर्ज़ नहीं कर सकता हुजूरेवाला,' नवाब ने कनखियों से जुगनू की ओर देखते हुए कहा, 'लेकिन आंख के अन्धे और गांठ के पूरे शरीफज़ादे ही फिर वक्त-बेवक्त का खयाल नहीं करते। फरमाइए जेब में क्या है ?'

जुगनू का चेहरा फक हो गया। उसकी जेब तो एकदम खाली थी। यहां आकर जेब खाली करनी पड़ती है, रूप का नकद सौदा करना पड़ता है, इस बात का तो उसे ख्याल ही नहीं था। नवाब ने यह बात भांप ली थी, वह उड़ती चिड़िया को पहचाननेवाला, पक्का घाघ, रंडी का दलाल असली और फसली गाहक को पहचानता था।

रैस्टोरां का छोकरा दो प्याला चाय दे गया। जुगनू ने उधर देखा भी नहीं। उसका जैसे वहां दम घुटने लगा। कण्ठ से बात भी नहीं फूटी। वह टुकुर-टुकुर नवाब का मुंह देखने लगा।

'लीजिए, चाय पीजिए, चाय के साथ और कुछ मंगवाऊं ?'

'जी नहीं, लेकिन बात यह है कि मैं चाय कभी नहीं पीता।'

'आप जो पीते हैं, वह पिलाने की तौफीक तो इस गुलाम में नहीं है बन्दा-परवर, फिलहाल चाय पीजिए, एक नवाजिश होगी।'

जुगनू ने प्याला मुंह से लगाया। नवाब ने कहा, 'हां, तो मैं अर्ज़ कर रहा था। इस बाज़ार के रंग-ढंग ही निराले हैं। अव्वल तो यह कि सारे सौदे आम तौर पर रात की काली चादर के साए में ही होते हैं, दूसरे गुड़-तेल की तरह भाव-ताव यहां नहीं होता। बस, बेभाव की चपत खानी पड़ती है।' नवाब ने अपने प्याले को मुंह लगाया। जुगनू जवाब नहीं दे सका, चुपचाप चाय की चुस्की लेता रहा। एक चुस्की लेकर नवाब ने कहा, 'अब फरमाइए, क्या इरादा है?'

'मैं कुछ ज़्यादा खर्च नहीं कर सकता और इस वक्त तो मैं सिर्फ योंही चला आया था। महज़ मुलाकात के लिए।'

'तो फिलहाल आप कितना खर्च कर सकते हैं?'

'अब इस वक्त तो मैं खाली जेब ही जल्दी में निकल आया हूं। हकीकत यह है कि इरादा कुछ इधर आने का नहीं था, बस योंही चला आया।'

'अक्सर ऐसा होता है जनाबेमन, और शरीफों को ज़लील होकर लौटना पड़ता है। रंडी तो पैसे की यार है। आपका शायद इस कूचे में आने का नया ही शौक है।'

'हां, बस उस दिन मैं पहली ही बार आया था।'

'वह भी उन सेठ साहब के साथ और उन्हींके पैसे से आप तफरीह भी कर गए थे।'

'आपको इन बातों से क्या मतलब! आप कहिए, क्या खर्च करना होगा?'

'लीजिए, आप तो वही गुड़-तेल का सौदा करने लगे। आप क्या काम करते हैं बन्दा-परवर?'

'मैं कांग्रेस का ज्वाइण्ट सेक्रेटरी और म्यूनिसिपल कमिश्नर हूं।'

'तो हुज़ूर जैसे इज़्ज़तदार को इस वक्त पान के लिए सौ रुपए तो खर्चने ही होंगे। बीबी से बेतकल्लुफी की यह आपकी पहली ही मुलाकात है। आइए, ऊपर तशरीफ ले चलिए।'

'लेकिन, इस वक्त तो मैं महज़ योंही मुलाकात के लिए आया हूं।'

'जी हां जनाब, मैं समझ गया आपका मतलब।'

'लेकिन, इसके लिए मैं इतनी रकम नहीं खर्च कर सकता।'

'तो कितनी कर सकते हैं?'

'मैंने कहा न, इस वक्त जल्दी में मैं खाली जेब ही चला आया हूं।'

'मैं यह समझ गया था बन्दा-परवर, इसीसे मैंने आपको रोक लिया, आप एक शरीफ आदमी हैं, आपकी इज़्ज़त बच गई। खाली जेब इस कूचे में आने की जो जुर्रत करते हैं, उन्हें गर्दनियां देकर ज़ीने से नीचे धकेल दिया जाता है। आइए।'

नवाब कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। जुगनू भी उठ खड़ा हुआ। इस वक्त शर्म और क्रोध से उसका बुरा हाल हो रहा था।

दोनों रैस्टोरां से बाहर आए। नवाब ने कहा, 'आइए, ज़रा नई दिल्ली की ओर घूम आया जाए, मैं जानता हूं कि इस वक्त आप फुर्सत में हैं। मौसम भी बड़ा सुहावना है।'

'हो सकता है, लेकिन इस वक्त मेरी कहीं भी जाने की इच्छा नहीं है।'

'मेरे मेहरबान दोस्त, आप तो ऐसी टोन में बोल रहे हैं, जैसे मुझसे नाराज़ हों।'

'नहीं, मैं नाराज़ नहीं हूं। लेकिन अब मैं जाता हूं।'

जुगनू एक ओर को जाने के लिए मुड़ा। परन्तु नवाब ने उसका हाथ पकड़कर कहा, 'इस कदर बेमुरव्वती! किबला मेरी आरज़ू ही समझकर चलिए।'

'भाई, मुझे परेशान न करो। आज सुबह से ही मैं परेशान हूं।'

'यह मैं जानता हूं। इसीसे अर्ज़ करता हूं कि आपको एक दोस्त की सख्त ज़रूरत है और हज़रत, मुझसे बढ़कर दोस्त आपको इस सूए ज़मीन पर मिल नहीं सकता।'

'लेकिन, ईश्वर के लिए मुझे थोड़ी देर के लिए अकेला छोड़ दो।'

'इस परेशानी की हालत में? या वहशत, कहीं आप किसी मोटर-लारी के नीचे गिरकर अपनी जान न दे दें।'

'तो इसमें तुम्हारा क्या?'

'ओह दोस्त, मैं कैसे तुम्हें इस वक्त अकेला छोड़ सकता हूं।'

'लेकिन मेरी जेब में इस वक्त एक फूटी कौड़ी भी नहीं है, मुझसे तुम कुछ भी नहीं पा सकते।'

'मेरे जैसे रज़ील पेशा करनेवाले की बाबत तुमने ठीक ही अन्दाज़ लगा लिया है। लेकिन हम रज़ील आदमी भी सिर्फ अपने ग्राहकों से ही पैसे-रुपयों

का तग्राल्लुक रखते हैं। दोस्तों से नहीं, दोस्तों के लिए हमारी जानोमाल सदके।'

'लेकिन मेरी दोस्ती से तुम्हें क्या मिलेगा ?'

'राहत, तफरीह, नसीहत।'

'नहीं, मैं इस वक्त जाता हूं। मुझे एक ज़रूरी काम याद आ गया है।' जुगनू तेज़ी से चल दिया। नवाब ने लपककर उसकी बांह पकड़ ली। उसने हंसकर कहा, 'तुम्हारे मुकाबले कमज़ोर तो हूं। मगर तुम्हें कसम है, जो जाने का नाम लो।'

'भई, अजब ज़िद्दी आदमी हो। कह तो चुका—मेरी जेब में इस वक्त एक धेला भी नहीं है।'

'तो क्या हुआ ? नवाब की जेब में तो है। कहीं दोस्तों में भी हिसाब-किताब होता है ?'

नवाब की नज़र एक खाली स्कूटर पर पड़ी। उसे इशारे से रोककर वह जुगनू को घसीटता हुआ स्कूटर पर जा बैठा। कहा, 'कनाट प्लेस।'

स्कूटर दनदनाता हुआ नई दिल्ली की चमचमाती सड़क पर दौड़ लगाने लगा।

१९

कनाट प्लेस पहुंचकर पहले एक चक्कर उन्होंने बाज़ार का लगाया। बड़ी देर तक दोनों चुपचाप गुमसुम सजी-धजी दूकानों की बहार देखते रहे। फिर नवाब ने कहा, 'एक बात पूछूं ?'

'पूछो।'

'मैं अब तुम्हें 'तुम' कहकर पुकारूं तो नाराज़ तो न होगे ?'

'इससे क्या होगा ?'

'दोस्ती पर पक्की मुहर लग जाएगी।'

जुगनू हंस पड़ा। उसने कहा, 'बड़े मज़ेदार आदमी हो, अब तुम्हारी दोस्ती तो मैं छोड़ सकता नहीं।'

'शुक्रिया।'

'अब दोस्ती में भी शुक्रिया ?'

'गलती हुई। हां, यह तो कहो, अंग्रेज़ी समझ लेते हो ?'

'क्यों ? क्या बात है ?'

'दोस्त, प्लाज़ा में एक बढ़िया-सी अंग्रेज़ी पिक्चर आई है। मैं तो खाक-धूल कुछ समझ पाता नहीं, पर अंग्रेज़ी पिक्चर देखने का मुझे बेहद शौक है। कोई मशहूर पिक्चर मैं चूकता नहीं। चलकर वह पिक्चर देखी जाए। वक्त हो रहा है।'

'कौन-सी पिक्चर ?'

'हैलेन ऑफ ट्राय।'

'जैसी मर्ज़ी, चलो। अब तो मैं तुम्हारी दुम से बंधा हूं।' जुगनू ने हंसकर कहा।

'इससे मेरी दुम की रौनक कितनी बढ़ गई है, यह भी तो देखो !' नवाब ने ठहाका भरा।

दोनों दोस्तों ने लगभग मौन होकर ही पिक्चर देखी। विफल प्रेम का वह प्रभावशाली चित्र जुगनू के रक्त पर छा गया। आज जैसा उसका मन हो रहा था, वह बातचीत की स्थिति में ही न था। बीच-बीच में एकाध बात होती और दोनों दोस्त ध्यान से पिक्चर देखते। पिक्चर की समाप्ति पर बाहर आकर जुगनू ने कहा, 'अब ?'

'अब इधर आओ।' वह वैंगर रैस्टोरां की ओर बढ़ा। जुगनू ने बाधा देकर कहा, 'यार, बहुत खर्च कर रहे हो, यह ठीक नहीं है।'

'चले आओ दोस्त, भूख के मारे मेरे पेट में चूहे लोट रहे हैं।' जुगनू भी वास्तव में भूखा था। सुबह से उसने कुछ खाया न था।

दोनों ने डटकर नाश्ता किया और टहलते हुए जंतर-मंतर में घुसकर लान पर जा बैठे।

नवाब ने सिगरेट पेश करते हुए कहा, 'यहां अब डटकर बातें होंगी।'

'किस किस्म की ?'

'गदहपचीसी की। तुम यार अभी इसीके घेरे में हो। उम्र के लिहाज़ से मैं ज़रा आगे हूं, मगर तबियत से वही हूं। लो अब कच्चा चिट्ठा खोल डालो।'

'कच्चा चिट्ठा कैसा ?' जुगनू ज़रा घबराया।

'पहले तो यह बताओ, जेब खाली क्यों रहती है ? दिल्ली शहर में खाली जेब कैसे काम चल सकता है ?'

'ऐसी कुछ खाली भी नहीं, लेकिन मैं तनख्वाह सिर्फ सौ रुपये माहवार लेता हूं। कांग्रेस का ज्वाइण्ट सेक्रेटरी हूं, ज़्यादा तनख्वाह लेना मुनासिब नहीं समझता। आखिर कौम की खिदमत भी तो एक चीज़ है।'

'वह बात पीछे होगी। अभी यह बताओ कि तनख्वाह क्या सब खर्च हो जाती है ?'

'यह मैं नहीं जानता। मैं तो अपनी तनख्वाह एक आदमी को दे देता हूं।'

'वह आदमी औरत है या मर्द ?'

'औरत।'

'बड़े प्यारे मासूम बच्चे हो दोस्त, वह औरत जवान और खूबसूरत भी है न ?'

'है,' जुगनू के मुंह से एक ठण्डी सांस भी निकल गई।

'और तुम उसे प्यार करते हो, कहो हां।'

'ये सब बातें क्यों पूछ रहे हो ?'

'इसलिए कि तुम्हारी कुछ मदद करूं, तुम्हारे दिल की मुरादें पूरी करूं।'

'समझ लो, करता हूं। तो ?'

'तो इसी बात पर एक सिगरेट पिओ दोस्त,' नवाब ने तपाक से सिगरेट उसके सामने बढ़ाई, एक अपने होंठों में लगाई। फिर कहा, 'उस औरत का खाविन्द है ?'

'है।'

'और वह औरत भी तुम्हें चाहती है ?'

'चाहती है।'

'मिलना कैसे और कब होता है ?'

'मैं उन्हींके घर में रहता हूं। हर वक्त चाहे जब मिलना हो जाता है।'

'तो मुहब्बत का कुछ मज़ा भी चखा ?'

'आज रेल की पटरी के नीचे लेटकर जान देने के इरादे से निकला था। बस, इसीमें सब समझ लो।'

'क्या मतलब ? जब वह चाहती तो क्या उसका खाविन्द हारिज आता

'उसे कुछ भी मालूम नहीं है।'

'तुम्हारे साथ उसका सलूक कैसा है ?'

'उसीकी बदौलत दिल्ली में रह रहा हूं। मेरा तो न कहीं पैर रखने का ठौर था, न खाने को एक धेला। उसीकी बदौलत यह इज़्ज़त की नौकरी मिली है, म्युनिसिपल कमिश्नर भी हो गया हूं। चार बड़े आदमियों से मुलाकात भी हो गई है।'

'तो वह बहुत भला आदमी है। लेकिन तुम्हारी उस औरत से यह मुहब्बत कितने दिन की है ?'

'मैंने तो पहली ही नज़र में जब उसे देखा था, दिल दे दिया था। पर वह भी मुझे चाहती है, यह मुझे मालूम न था।'

'अब मालूम हुआ ?'

'हां।'

'कब ?'

'आज सुबह। और आज ही उसे भी मेरी मुहब्बत का राज़ मालूम हुआ। आज मैंने उससे सब कुछ कह दिया।'

'सुनकर बिगड़ी नहीं ?'

'पागल की भांति लड़खड़ाती हुई भाग गई और कमरा बन्द करके पड़ रही। मैं यहां भाग आया।'

'तो अभी बोहनी ही हुई है। कोई हर्ज़ नहीं। अच्छा, यह कहो उसका चाल-चलन कैसा है ?'

'निहायत पाकीज़ा। मुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं उसे गन्दगी में घसीट रहा हूं। मैं जान गया हूं कि उसका मन मुझपर है, पर वह अपने को बहुत रोकती रही है। आज मैं खुला तो वह भी खुल गई।'

'कुछ कहा उसने ?'

'बस, जब मैंने अपनी मुहब्बत का इज़हार किया तो वह रोती हुई मेरे ऊपर गिर गई और जब मैंने शैतान की सवारी की तो ज़बर्दस्ती छुड़ाकर भाग गई। अब नहीं जानता क्या होगा।'

'दोस्त, कभी शिकार खेला है ?'

'नहीं ।'

'मछली बंसी में फांसी है ?'

'हां ।'

'कांटे में फंसकर कितनी छटपटाती लेकिन बाद में सब खत्म । अब चखो दिल भर के ।'

'मेरा तो कलेजा कांप रहा है । मुंह दिखाने की हिम्मत नहीं होती ।'

'कभी किसी औरत की सोहबत भी की है ?'

'की है एक अंग्रेज़ औरत की । मैं उसका नौकर था ।'

'खैर, ताहम अभी मासूम हो । इस वक्त तुम्हें एक दोस्त की सख्त ज़रूरत थी । कहो हां ।'

'थी तो ।'

'और दोस्त मिल गया नवाब, लाओ हाथ दो ।'

दोनों दोस्तों ने हाथ मिलाए । नवाब ने दो और सिगरेट निकालीं । जुगनू ने कहा, 'अब मैं क्या करूं ?'

'घर जाओ और सब काम, बातचीत इस तरह करो कि जैसे कुछ हुआ ही नहीं है । और गौर से उसके तेवर देखो । फिर मौका पाकर उससे माफी मांगो । देखो, क्या कहती है ।'

'कहीं अपने खाविन्द से न जड़ दी हो ?'

'ऐसा होता तो वह भाग न जाती । शेरनी की तरह तुमपर टूट पड़ती और खड़े-खड़े निकालकर दम लेती ।'

रात हो गई थी । ठण्ड बढ़ रही थी । नवाब उठ खड़ा हुआ । उसने कहा, 'अब चला जाए, ज़रा अपना धन्धा भी देखूं । बाकी और मर्ज़ों का इलाज धीरे-धीरे होगा । घबराना मत दोस्त ।' नवाब ने जुगनू के कन्धे पर हाथ धरकर कहा ।

दोनों दोस्त चल दिए ।

२०

जब जुगनू वापस लौटा तो शोभाराम उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। जुगनू इस समय न शोभाराम से और न पद्मा से मिलना चाहता था। वह दबे पांव चुपचाप अपने कमरे में घुस गया। परन्तु शोभाराम उसकी प्रतीक्षा कर रहा था। उसने तुरन्त ही उसे बुला भेजा। जुगनू को जाना पड़ा। शोभाराम ने कहा, 'भई मुंशी, तुमने तो हद कर दी। इस कदर तबियत खराब, सुबह से गए और अब लौटे हो। मैं तो आज जल्द ही लौट आया था, और तभी से तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहा हूं। बहुत बातें करनी हैं।'

'कहिए।' जुगनू शोभाराम से आंख न मिला सका।

'बात यह है कि कल म्यूनिसिपल कमेटी के चेअरमैन और वाइस-चेअरमैन का चुनाव है। हमने यह निश्चय किया है कि कम से कम वाइस-चेअरमैन तुम्हें बनाया जाए। ये जनसंघी बड़ा हो-हल्ला मचा रहे हैं। अब उनसे मोर्चा तुम्हें ही लेना होगा। कमेटी ने तय किया है कि म्यूनिसिपैलिटी में तुम्हीं कांग्रेस पार्टी के लीडर रहो। क्या कहूं, मेरी तबियत खराब रहती है और कांग्रेस ने सब भार मुझीपर डाल दिया है और मैं, भई, तुम्हारे ही भरोसे पर हूं। अब सब झोंक तुम्हें ही झेलनी होगी। ऐसा न हो कि कांग्रेस की भद्द हो जाए।'

'कहिए, मुझे क्या करना होगा?'

'क्या करना पड़ेगा? यह कहो, क्या कुछ न करना पड़ेगा। दिल्ली म्यूनिसिपैलिटी कोई साधारण म्यूनिसिपैलिटी नहीं है। दिल्ली भारत की राजधानी है और यहां की म्यूनिसिपैलिटी का सालाना जमा-खर्च ढाई करोड़ रुपया है, बस, इतने ही से समझ लो कि तुमपर ज़िम्मेदारी का पहाड़-सा बोझ लद जाएगा।'

'तो भाई साहब मैं भी जान लड़ा दूंगा। जब आप मेरी पीठ पर हैं तो मुझे क्या चिन्ता। किन्तु मेरी कमज़ोरियों को आप जानते हैं। बस, राह दिखाते चलिए।'

'तुम्हारे गुणों को और शक्ति को भी मैंने जान लिया है। तभी तो मैंने तुम्हें आगे किया है। हिम्मत से काम लो और तन-मन से जुट जाओ। फिर हम दुनिया को एक करिश्मा दिखा देंगे।'

'खैर, देखा जाएगा। जहां तक मेहनत का सवाल है आपको शिकायत का मौका नहीं मिलेगा।'

'यह मैं जानता हूं। लेकिन भाई, पहले खाना खा लो। तुम्हारे लिए कब से ये खाना लिए बैठी हैं।'

'खाना तो मैं नहीं खाऊंगा। भूख नहीं है।'

'तुम्हारी तबियत तो अब ठीक है ?'

'ठीक ही है। न खाने से ठीक ही रहेगी।'

'तो खैर, थोड़ा दूध ही पी लो।'

शोभाराम ने तो यह कह दिया। पर पद्मादेवी इस बीच खाना लगाकर ले आई। खाना सामने रखकर कहा, 'कल से कुछ भी नहीं खाया है। जितनी तबियत हो, उतना ही खा लो।'

जुगनू 'नहीं' न कह सका। भोजन करने बैठ गया।

भोजन के बाद उसने शोभाराम से कहा, 'अब और कुछ आपका आदेश है भाई साहब, या अब मैं जाकर सो रहूं। मेरा सर दर्द कर रहा है और मैं बुरी तरह थका हुआ हूं।'

'तो जाओ सो रहो। और बातें सुबह होंगी।'

वह अपने कमरे में आकर चारपाई पर पड़ रहा। इस समय उसकी अजब मानसिक दशा हो रही थी। ज़िम्मेदारी का हिमालय-सा बोझ उसके सिर पर था। भूत-भविष्य उसकी आंखों में नाच रहे थे। कभी उसे भूली-भटकी पुरानी यादें आतीं, बीते हुए दिन सामने आते, कभी पद्मा, शोभाराम, नवाब और कभी शारदा का चेहरा उसके सामने आता, कभी वह स्वप्न देखता कि वह म्यूनिसि-पैलिटी का चेअरमैन बन गया है। इसके बाद ही उसके स्वप्निल विचारों का तांता टूट जाता और वह बेचैनी से छटपटा उठता। कोई हिंसक पाशविक प्रवृत्ति उसे उत्तेजित करती। वह सोचता, 'मुझे चेअरमैन बनना ही पड़ेगा। उस कुर्सी पर बैठते ही पद्मा मुझे प्राप्त हो जाएगी।' फिर वह पद्मा के ध्यान में डूब जाता।

रात बीती। कुछ सोते, कुछ जागते। सुबह जब वह उठा तो उसका शरीर आलस्य से भरा हुआ था और उसका मन बड़ा बोझिल-सा हो रहा था। वह झटपट उठा और नित्यकर्म से फारिग होकर उन सब विचारों में डूब गया

जो रात भर उसे परेशान करते रहे थे। उसकी समझ में कुछ नहीं आ रहा था। उसका मन और भी डावांडोल हो उठा। रह-रहकर वह सोच रहा था कि कहां के झंझट में आ फंसा है। उसे यहां से भाग चलना चाहिए। पर भागकर जाए कहां ? उसे सबसे अधिक रुचि नवाब की सोहबत में हुई थी। वह चाह रहा था कि चलकर अभी नवाब से मुलाकात करे। परन्तु इसी समय शोभाराम ने उसे फिर बुला भेजा।

पद्मा ने आकर कहा, 'वे तुम्हें बुला रहे हैं। नाश्ता भी वहीं कर लेना।'

जुगनू ने चाहा कि वह एक बार पद्मा के मुंह की ओर देखे, उससे कुछ बात करे। पर उसका साहस न हुआ। फिर उसे यह समझने में ज़रा भी देर न लगी कि पद्मा का स्वर निरुद्वेग और स्नेहसिक्त है।

उसकी छाती पर से कुछ बोझ-सा उतर गया और कपड़े पहनकर शोभाराम के कमरे में आया। शोभाराम भी कपड़े पहनकर तैयार था। उसने झट मुद्दे की बातों पर बहस करना आरम्भ कर दिया। पद्मा नाश्ता ले आई। नाश्ता करके वे दोनों साथ ही साथ घर से बाहर हुए। कमेटी में बहुमत कांग्रेस का था। पार्टी का लीडर जुगनू था। उसकी पीठ पर शोभाराम का हाथ था। अतः वह वाइस-चेअरमैन चुन लिया गया। इसमें कुछ भी दिक्कत न हुई। कुछ स्वतन्त्र सदस्य भी कांग्रेस के पक्ष में हो गए। उनके नेता लाला बुलाकीदास चेअरमैन चुन लिए गए। वे शहरी वार्ड के प्रभावशाली पुरुष थे। पैसेवाले थे, बेतरह पैसा उन्होंने खर्च किया था। कांग्रेस ने उनसे सांठ-गांठ करके उन्हें चेअरमैन और कांग्रेसी सदस्य जुगनू को वाइस-चेअरमैन बना लिया। जनसंघियों ने बहुत ज़ोर मारा, परन्तु उनकी एक न चली।

२१

जशन और मुबारकबादियों की सरगर्मी जब खत्म हुई तो अब बजट की बारी आई। शोभाराम ने कहा, 'भई मुंशी, बस यही तुम्हारी अग्निपरीक्षा है। भाषण तैयार कर लो। बजट पर यह तुम्हारा पहला भाषण है। वह ऐसा मार्के का हो कि सींक खड़ी रहे। बस, यह समझ लो कि कांग्रेस की इज़्ज़त

तुम्हारे हाथ में है । सवा दो करोड़ रुपयों का बजट है । हंसी-खेल नहीं । बड़ी-बड़ी रियासतों का भी बजट इतना नहीं होता । यह दिल्ली शहर है, भारत की राजधानी । और तुम्हींको एक दिन चेअरमैन की कुर्सी पर भी बैठना है । तुम्हें सब पहलुओं पर अच्छी तरह विवेचन करना है । दिल्ली में बड़े-बड़े कांइयां लोग हैं, फिर यहां तो गुटबाज़ी और गुण्डागर्दी का भी तुम्हें सामना करना है । तुम्हें वे सब बातें ध्यान में रखनी चाहिएं जिनसे जनता का सीधा सम्पर्क है । तुम नज़र नागरिकों की सुख-सुविधा पर रखना । लोगों की नुक्ताचीनी पर ध्यान नहीं देना । याद रखो कांग्रेस पार्टी का लीडर होने के नाते तुम्हें ही अब सब झोंक झेलनी पड़ेगी । कहीं ऐसा न हो कि कांग्रेस की किरकिरी हो जाए और मुझे मुंह दिखाने की जगह न रहे ।'

'लेकिन भाई साहब, मैंने तो कभी स्पीच दी ही नहीं है । डरता हूं कहीं भद्द न हो जाए ।'

'इस तरह डरने से तो काम चलेगा नहीं मुंशी । जब ओखली में सिर दिया तो मूसलों का क्या डर ? फिर हुल्लड़बाज़ी से घबराना क्या ? वहां गए हो तो कड़े से कड़ा मोर्चा लेना होगा । ये तथ्य और आंकड़े हैं । मैं लिख लाया हूं । सफाई, स्वास्थ्य-विभाग, शिक्षा और पानी की व्यवस्था पर सबसे अधिक खर्चा करना है । खाना खाकर बस पिल पड़ो । अभी तमाम रात पड़ी है तैयारी करने को ।'

'खैर देखूंगा । जो बन पड़ेगा, करूंगा । लाइए कागज़ दीजिए । और जो कुछ नोट कराना हो, करा दीजिए ।'

'पहले तुम इन कागज़ों को एक नज़र देख जाओ और अपने ज़हन में सब मामला क्रम से जमा लो । फिर सुबह हम लोग बैठकर सब तैयारी कर लेंगे ।'

'खैर, तो फिर ज़रा मुझे एक घण्टे की छुट्टी दीजिए । एक चक्कर मैदान का लगा आऊं । फिर काम में जुटूं ।'

'यही करो भाई । मैं तो अब सोऊंगा ।'

जुगनू वहां से जो चला तो सीधा नवाब के पास पहुंचा । नवाब का धन्धे का वक्त था । गाहक आ-जा रहे थे । इस वक्त जुगनू को देखकर उसने ज़रा त्योरियां चढ़ाईं । पर जुगनू ने कहा, 'दोस्त, इस वक्त मैं तुम्हारे काम में ज़्यादा हारिज नहीं होऊंगा । लेकिन तुमने सुना होगा कि मैं वाइस-चेअरमैन हो गया हूं ।'

'मुबारकबादी का खत मैंने लिखा था, मिल गया होगा।'

'मिल गया। लेकिन वह काफी नहीं है। कल बजट की स्पीच है। मैंने तो कभी स्पीच दी नहीं। फिर बजट किस चिड़िया का नाम है, यह भी मैं नहीं जानता। अब ऐसी तरकीब बताओ कि मेरी धाक बंध जाए। भरम ढका रहे। स्पीच ऐसी गज़ब की हो कि दिल्ली फड़क उठे।'

'तो दोस्त, नवाब को उस्ताद मानते हो न ?'

'मेरी स्पीच बन गई तो मान लूंगा।'

'खैर, तो कल सुबह कहां मिलोगे ?'

'सुबह मुझे फुर्सत नहीं मिलेगी।'

'दोपहर को ?'

'उससे क्या होगा ? शाम को तो स्पीच है।'

'मैं ज़्यादा टाइम नहीं लूंगा। सिर्फ पन्द्रह मिनट काफी हैं।'

'पन्द्रह मिनट में क्या होगा ?'

'बस, जादू की पुड़िया दे दूंगा। काम फतह।'

'अच्छी बात है, तो कहां ?'

'जहां तुम कहो।'

'मेरे आफिस में। धड़ल्ले से चले आना। चपरासी से कहना नवाब हूं। वह मेरे पास पहुंचा देगा।'

'बहुत अच्छा हुज़ूरेवाला। अब तो आपको सलाम करना पड़ेगा।'

'फिर यह क्या बात कही। दोस्ती की बात भूल गए ?'

'नहीं, भूला नहीं। मैंने सोचा शायद तुम भूल न गए हो। लोग जब बड़ी कुर्सी पर बैठ जाते हैं तो दोस्तों को भूल जाते हैं।'

'वे कमजर्फ होते होंगे। जगन ऐसा नहीं है।'

'तो दोस्त, मैं जादू की पुड़िया लेकर दोपहर को हाज़िर होऊंगा।'

'अच्छी बात है, अब मैं चला। तुम अपना धन्धा करो।' यह कहकर जुगनू चल दिया।

२२

बजट का भाषण तैयार करने में शोभाराम ने बड़ा परिश्रम किया था। हर बात की तह तक पहुंचने की उसकी आदत थी। उसने हर पहलू पर गम्भीर विवेचन किया। आवश्यक आंकड़े नोट कराए। बजट पेश किया चेअरमैन ने। अब बजट पर बहस की बारी आई।

जनसंघी सदस्यों ने अपना बुखार उतारना आरम्भ किया। यहां क्या कांग्रेसी, क्या स्वतन्त्र और क्या जनसंघी—सब अपनी-अपनी खिचड़ी पका रहे थे। उचित तो यह था कि यहां आकर सब एकमत होकर नागरिक सुख-सुविधा का ध्यान रखते, परन्तु सबको अपने-अपने दल की प्रतिष्ठा ही मुख्य दीख रही थी। बड़ी करारी चोंचें हुईं और अब जुगनू की बारी आई। इस समय उसका बुरा हाल हो रहा था। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे तेज़ बुखार चढ़ा हो। वह वास्तव में नहीं जानता था कि क्या कहे। परन्तु खड़े होते ही उसने बड़े ही प्रभावशाली ढंग से एक नज़्म पढ़ी जो नवाब ने लिखी थी। उसके गले के चमत्कार ने और नज़्म के मज़मून ने सन्नाटे का आलम पैदा कर दिया। सामने दर्शकों में शोभाराम बैठा मुस्करा रहा था और जुगनू उसे देखकर मन को ढाढ़स दे रहा था। नज़्म का बहुत भारी प्रभाव पड़ा। सभा-भवन का वातावरण एकदम शान्त हो गया। अब जुगनू ने कहना आरम्भ किया, 'मित्रो, क्या आप चाहते हैं कि हम केवल गाल बजाकर बाशूर बनें। कोरी बकवास करें। हमारे सामने शहर के हज़ारों बच्चों की तालीम का सवाल है। अंधेरे और तंग मकानों में बन्द लाखों उन बहनों-बेटियों की तन्दुरुस्ती का सवाल है कि जिनके लिए आज न अच्छे अस्पताल हमारे पास हैं, न जच्चाखाने। शहर के घर अंधेरे, कुरुचिपूर्ण, तंग, नाकाफी और पुराने ढंग के बने हुए हैं। उन्हींमें सब लोग भेड़-बकरियों की भांति भरे हुए हैं। मौत और ज़िन्दगी उनके लिए एक-सी है। हकीमों और डाक्टरों में उनकी आधी कमाई खर्च होती है। भारत की राजधानी के लिए यह कलंक की बात है। इस कलंक को हम दूर करेंगे या मर मिटेंगे। आज हम यह प्रतिज्ञा करते हैं। हां, कहिए साहबान, क्या आप मेरे साथ हैं?'

तालियों की गड़गड़ाहट से सभा-भवन गूंज उठा। जुगनू ने एक बार शोभा-

राम की ओर देखा और फिर एक नज़्म तरन्नुम के लहजे में पढ़ी। गलेदराज़ी में भला जुगनू को कौन पा सकता था ? नज़्म यह भी नवाब की बनाई हुई थी। नज़्म की समाप्ति पर फिर तालियों की गड़गड़ाहट से सभा-भवन गूंज उठा। जुगनू ने अपना भाषण जारी रखा, उसका ध्यान बिरादरी की ओर गया। खून ने जोश मारा। वह बोला, 'शहर की सफाई का दारोमदार किनपर है ? उन-पर जिन्हें आप भंगी और मेहतर कहते हैं, जिनकी बहू-बेटियां भोर के तड़के ही उठकर मैले के टोकरे सिरों पर लादे आपके घरों की सफाई करती हैं। उन्हें पीढ़ियों से आपके ये नरक ढोने पड़े हैं और आपने कभी उनकी ओर हमदर्दी की नज़र से नहीं देखा। कभी आपने उन्हें अपना साथी, एक नागरिक नहीं समझा। कभी आपने इन्सान नहीं समझा, सब मानवीय अधिकारों से वे वंचित हैं। हिन्दू समाज का वह गला-सड़ा अंग है। महात्मा गांधी ने उन्हें हिन्दुओं में मिलाए रखने के लिए जान की बाज़ी लगा दी थी। मैं यह जानना चाहता हूं कि आपने उनके लिए क्या किया है ?'

कांग्रेसी बेंचों से महात्मा गांधी की जय का नारा बुलन्द हुआ। जुगनू ने एक बार रुककर सभा पर और शोभाराम पर नज़र डाली। फिर आवाज़ ज़रा ऊंची करके कहा, 'मैं यह पूछना चाहता हूं कि आप अब उनके लिए क्या करना चाहते हैं ? वे अब हमारे समाज से पृथक्, गन्दे सुअरों की भांति नहीं रह सकते। हमें उनकी तनख्वाहें बढ़ानी होंगी। उनके लिए अच्छे हवादार मकान, रोगी होने पर चिकित्सा और दूसरी सब सुविधाएं देनी होंगी। महात्मा गांधी ने उन्हें हरिजन कहा है। हरिजनों को प्रेम से गले लगाना भगवान को प्रसन्न करना है।'

सभा-भवन तालियों से गूंज उठा। एक बार जुगनू ने फिर शोभाराम की ओर देखा। अब उसे आगे नहीं सूझ रहा था कि क्या कहे। पर नवाब ने उसे गुरुमन्त्र दिया था कि जब ऐसा अवसर आए तो वह नज़्म पढ़ना शुरू कर दे। शोभाराम का इशारा पाकर उसने फिर एक नज़्म पढ़ी। एक जनसंघी सदस्य ने उठकर कहा, 'क्यों साहब, यह क्या कोई मुशायरा हो रहा है या...'

उनकी बातचीत में ही कई सदस्य बोल उठे। 'चुप रहो, चुप रहो, कहने दो।'

और जुगनू ने कहा, 'मेरे दोस्त को नज़्म अच्छी नहीं लगती। वे कुछ

काम कर दिखाने को बेचैन मालूम पड़ते हैं। कुछ कर दिखाने का यह अच्छा मौका है। हमारे सामने बजट पेश है। यह बजट साधारण नहीं है। हमें यह रकम राजधानी का सिंगार करने में, यहां के लोगों को सब सुख-सुविधा देने में खर्च करनी है। मेरे मेहरबान दोस्त शायद यही सुनना चाहते थे। वही मैं कह रहा हूं। मैं अपना हाथ बढ़ाता हूं अपने दोस्त की तरफ, वे आगे आएं और यह भूलकर कि हम कांग्रेसी हैं, वे जनसंघी—मिलकर ईमानदारी से ऐसा उपाय करें कि हमारे हाथों एक पाई भी फिजूल खर्च न हो और हम सब, जिन्हें यहां के लिए शहर के नागरिकों ने हमपर विश्वास करके चुना है, कसम खाएं कि नागरिकों से विश्वासघात न करेंगे।'

तालियों की गड़गड़ाहट में जुगनू ने अपना भाषण खत्म किया। उसके बाद किसीका भाषण जमा नहीं। वास्तव में बजट का रूखा-सूखा आंकड़ों से भरा हुआ भाषण सबके लिए रुचिकर कैसे हो सकता था।

मीटिंग समाप्त हुई। अब जुगनू पर बधाइयों की वर्षा हो रही थी। लोग आ-आकर उससे हाथ मिला रहे थे और वह झुक-झुककर दोनों हाथ जोड़कर, 'मैं किस लायक हूं। मैं एक अदना खादिम हूं।' कहकर अपनी नम्रता प्रकट कर रहा था। उसकी बगल में शोभाराम खड़ा मुस्करा रहा था।

२३

कुछ ऐसी महानताएं हैं, जिन्हें भाग्यशाली पुरुष अपने गुणों या प्रयत्नों के द्वारा प्राप्त कर लेता है। बहुधा यह महानता उस व्यक्ति की अपनी नहीं होती, अपितु उस पद या ओहदे की होती है जिसपर परिस्थितियां उसे बैठा देती हैं। और जब ऐसी परिस्थितियां आ उपस्थित होती हैं कि वह उस पद से हट जाए तो वह महानता भी समाप्त हो जाती है। ऐसा बहुधा देखा जाता है कि एक व्यक्ति जो मिनिस्टर की महिमा-मण्डित कुर्सी पर आसीन है, उस कुर्सी से हटते ही एक निरीह वक्ता रह जाता है। बहुधा ऐसा व्यक्ति अपने कार्यालय में भी एक आडम्बर के ही सहारे अपनी पद-मर्यादा बनाए रखता है। परन्तु ऐसे लोग तो बिरले ही होते हैं जो हर हालत में महान होते हैं, जिनकी महत्ता उनके

व्यक्तित्व में होती है, पद में नहीं। बहुधा ऐसा भी होता है कि मनुष्य की त्रुटियां एवं अपराध भी उसके गुणों और विशेषताओं के पूरक प्रतीक बन जाते हैं। ऐसे पुरुष चापलूसों और प्रशंसकों के महत्त्व को ठीक-ठीक समझते हैं। निस्सन्देह वे इतनी समझ रखते हैं कि इन प्रशंसकों को तिरस्कार की दृष्टि से देखें। परन्तु यह भी वे जानते हैं कि उनकी महत्ता की सारी जमा-पूंजी भी वही हैं। सारी बातों के देखने से हमें यह स्वीकार करना ही होगा कि जुगनू में एक नैसर्गिक प्रतिभा तो थी ही और उसीने उसके व्यक्तित्व को अनुपम और अपराधों को क्षम्य बना दिया। कलाकार चाहे संगीतज्ञ हो या कवि, वह चाहे बाह्य आडम्बर या सज-धज पर आधारित हो या अन्त:सौन्दर्य पर, उसकी प्रवृत्ति का मूलाधार वासना ही होती है। वासना का कला से, बल्कि कहना चाहिए जीवन की महत्त्वाकांक्षा से, घनिष्ठ सम्बन्ध है। इसीसे कलाकार की कला में और उसके जीवन में जहां एक ओर लालित्य होता है, वहां दूसरी ओर पाशविकता भी होती है। ऐसा पुरुष अपने कृत्यों से महानता प्रकट करता है। उसके जीवन-क्रम और जीवन-विकास की कहानी आकर्षक और कौतूहलपूर्ण बनती जाती है और उसके चरित्र में उसके आसपास के लोगों का एक उत्सुक कौतूहल और अद्भुत रुचि उत्पन्न हो जाती है और अधिकांश में वही उस व्यक्ति की कीर्ति का कारण भी होती है। मनुष्य कलाकार हो चाहे राजनीतिज्ञ, पर ऐसे लोग बिरले ही होते हैं जो मानव-रुचि को अपनी ख्याति का माध्यम बना सकने में सक्षम हों। ऐसे पुरुषों की कुख्याति भी जनता की रुचि को अपनी ओर खींच लेती है। ऐसे लोग जब जन-साधारण में प्रमुख पद प्राप्त कर लेते हैं तो उनमें जनता इस कदर दिलचस्पी लेने लगती है कि उनके जीवन की असामान्यताएं रोमांस बन जाती हैं। जुगनू के जीवन में रोमांस था, विचित्रता थी, भयंकरता भी थी। उसके चरित्र में करुणाहीन विद्रोह था। उसके जीवन के तथ्यों की व्याख्या मनोरम है। उसका दुश्चारित्र्य ही उसका आकर्षण था। भले ही अज्ञान में ही सही, पर वह अपने भाग्य से संघर्ष करनेवाला योद्धा था। उसने भाग्य से युद्ध किया और परिस्थितियों पर सवारी गांठी। वह परिस्थितियों का पक्का शह-सवार था।

बजट के भाषण के बाद लोगों की प्रशस्तियों और हर्षध्वनियों के बीच वह जब सभा-भवन से निकला तो शोभाराम की आंख बचाकर वह वहां से खिसक

गया और सीधा नवाब के पास जा पहुंचा। नवाब उसे देखते ही उस गन्दे-से रैस्टोरां से बाहर निकल आया। उसने कहा, 'दोस्त, यहां नहीं। चलो हम कहीं एकान्त में बातचीत करेंगे। तुम्हारी स्पीच सुनकर मैं अभी चला आ रहा हूं। अब तुम्हारी फतह है।'

दोनों ने बस पकड़ी और इण्डिया गेट जा पहुंचे।

२४

इण्डिया गेट के सामने फैले हुए प्रशस्त लान में बैठकर दोनों दोस्तों ने दिल की घुण्डी खोल दी। समझ लीजिए रत्न-कांचन संयोग हो गया। नवाब ने कहा, 'अब कहो दोस्त, क्या इरादा है?'

'तुम्हीं बताओ, उस्ताद जो ठहरे।'

'तो एक ही बात में सुन लो, दुनिया भर से लड़ाई ठान लो।'

'अच्छी बात है।' जुगनू के मन में बहुत-सी बातें उभर आईं। उसने सोचा, 'मैं जात का भंगी, संस्कारों से हीन, परम्परा से दलित, कुचला हुआ, समाज ने जिसे पीढ़ियों से उभरने का अवसर नहीं दिया। आज परिस्थिति ने मुझे सामर्थ्य दी है तो क्यों न मैं दुनिया भर से लड़ाई ठान लूं? उस दुनिया से जिसने मुझे दबोच रखा था। अब जो मैंने उभार खाया है तो दुनिया के रहम पर नहीं, अपनी प्रवंचना ही की खातिर। आज भी यदि मैं कहूं कि मैं एक अशिक्षित भंगी हूं, तो आज ही मेरे विकास का खात्मा हो जाए। मैंने दुनिया से लड़कर ही तो आज यह फतह पाई है और यह लड़ाई अब जारी ही रहेगी।' —उसके मुख पर कठोर भाव उभर आए।

नवाब ने कहा, 'क्या सोच रहे हो दोस्त?'

'यही कि डटकर लड़ूंगा, अपने से भी और दुनिया से भी, भले ही हार खानी पड़े।'

'दोस्त, तुम हार खाने के लिए पैदा नहीं हुए हो। फतह तुम्हारी पेशानी पर है।'

'तो उस्ताद, अब राह दिखाओ। बस, पत्थर निगल गया हूं, वह नुस्खा

दो कि पचा ही जाऊं।'

'पत्थर क्या माने रखता है, नवाब का दम है तो पहाड़ पचा लेना।'

'खैर, अगली चाल ?'

'बस किश्त मात।'

'मगर कैसे ?'

'प्यादे सों फरजी भयो टेढ़ो-टेढ़ो जात।'

'क्या माने ?'

'अमा, माने साफ हैं। शतरंज खेली है कभी ?'

'किसी दिन एक बाज़ी खेल लो। मगर उस्ताद की शान नहीं रहेगी।'

'तो क्या ज़रूरी है कि उस्ताद से बाज़ी बदो।'

'फिर ?'

'प्यादे थे, वज़ीर बन गए। अब बादशाह को शह पर शह दिए जाओ, और मौका पाते ही घोड़े की मदद से किश्त मात।'

'घोड़ा कौन ?'

'मैं।'

'लेकिन बादशाह ?'

'चेअरमैन ! अभी वाइस-चेअरमैन ही तो बने हो। कोई मामूली होता तो इसीपर खुश होता लेकिन तुम्हें तो इतने से खुश नहीं होना है। चेअरमैन बनना है।'

'मैं चेअरमैन कैसे बन सकता हूं ?'

'बड़ी आसानी से। हाउस में तुम कांग्रेस ग्रुप के लीडर हो। कांग्रेस का हाउस में बहुमत है। चेअरमैन स्वतन्त्र उम्मीदवार है। उसकी पीठ पर हाउस नहीं है, दिल्ली की जनता है। दिल्ली की जनता ने उसे अवसर दिया और कांग्रेस ने उससे समझौता करके अपना मतलब साधा। अब हाउस तुम्हारा है दोस्त, बात-बात पर पख निकालो, चेअरमैन को कंडम करो, हाउस में हुल्लड़ मचवाओ। चेअरमैन आटे की लोई है, लाला है, भाग खड़ा होगा। या तुम्हारी शरण आएगा।'

'लेकिन कांग्रेस ने जो उसके साथ पैक्ट किया है।'

'वह खत्म हो गया। कांग्रेस ने उसे चेअरमैन बना दिया। अब कांग्रेस किसी

भी ऐसे काम को, जिससे कांग्रेस का बोलबाला हो, नापसन्द न करेगी। फिक्र मत करो। जनता की भलाई का नारा बुलन्द रखो। भीतर तुम, और बाहर मैं। अखबार तुम्हारा ही राग गाएंगे।'

'मेरा राग क्यों गाएंगे ?'

'तुम रिश्ते में उनके साले होते हो न ?'

'साला कौन ?'

'जोरू का भाई। वह मसल नहीं सुनी—खुदा की खुदाई एक तरफ, जोरू का भाई एक तरफ।'

'लेकिन यार, अखबारवालों से मेरा यह नया रिश्ता तुम कैसे कायम करते हो ?'

'अजी सभी कांग्रेसी अखबारवालों के साले होते हैं। कांग्रेस उनकी जोरू और कांग्रेसी उनके साले। वे न कांग्रेस के सामने चूं कर सकते हैं, न कांग्रेस के खिलाफ आवाज़ उठा सकते हैं।'

दोनों दोस्त खिलखिलाकर हंस पड़े। देर तक हंसते रहे। क्या ही नफीस जोड़ा किस्मत ने मिला दिया था ! एक था भंगी का बच्चा—परिस्थितियों के घोड़े पर सवार, और दूसरा था एक रंडी का दलाल—आठों गांठ कुम्मैत। जिनके आदर्श के धरातल पर न कोई धर्म-नीति थी, न नीति-धर्म। कुछ देर बाद जुगनू ने कहा, 'खैर, दूसरी बात ?'

'दूसरी बात यह कि अब तुम अपने दोस्त के घर से डेरा-डंडा उठाओ। स्वतन्त्र मकान में रहो। अपनी इज़्ज़त का पूरा ख्याल रखो।'

'लेकिन वहां तो मुझे कोई तकलीफ नहीं है। भाई साहब मेरा पूरा ख्याल रखते हैं।'

'तो क्या इरादा है ! भाभी साहिबा के सामने उनके पालतू कुत्ते की हैसियत से उनकी ड्योढ़ियों पर ही पड़े रहना चाहते हो। उनके दिए टुकड़े खाने के लिए। अमा, अब उनके टुकड़े नहीं, उन्हें ही हजम करना है।'

'लेकिन वे दोनों यह बात पसन्द न करेंगे।'

'इस बात से तुम्हें क्या सरोकार ? तुम्हें अब उनके पास इस तरह रहना पसन्द न होना चाहिए और तुम्हारी ही राय सबसे ऊपर होनी चाहिए। समझे ?'

'यह तो उस्ताद कुछ जंचती नहीं।'

'तो हलवाई की खसलत रखते हो। हर वक्त भट्टी के पास बने रहना चाहते हो, ताकि बनती हुई मिठाइयों को ललचाई नज़र से देखते रहो। चाशनी चखते रहो। लेकिन याद रखो, मैं तुम्हें हलवाई न रहने दूंगा।'

'तुम क्या चाहते हो ?'

'मैं तुम्हें वह रईस बनाना चाहता हूं जिसके शौक और मज़े के लिए हलवाई मिठाइयां बनाता है।'

'लेकिन मैं उनसे अलहदा नहीं रहना चाहता।'

'यानी बिना जूतम-पैजार वहां से निकलोगे नहीं ?'

'जूतम-पैजार कैसी ?'

'अजब नादान आदमी हो ! अमा, उस औरत पर तुम्हारी नज़र है, तुम उसे चाहते हो।'

'वह भी मुझे चाहती है।'

'और उसका खाविन्द भी दोनों की चाह को चाहता है ?'

'उसे भला ये सब बातें मालूम कहां ?'

'और यदि कभी मालूम हो गईं ?'

'तो बेढब बनेगी।'

'बस, यही तो बात है। इसीलिए कहता हूं कि आज़ाद बनकर रहो, फिर वह औरत तुम्हारी है। ज़रा सुलगने दो उसे।'

'मुझसे भला रहा जाएगा ?'

'दोस्तमन, यह ज़िन्दगी एक दरिया है, जो घूम-घुमौवल रास्तों में टेढ़ा-मेढ़ा, बल खाता, हरे-भरे मैदानों और साएदार दरख्तों में होकर बहता हुआ कहीं सिकुड़ता, कहीं फैलता, जैसी राह मिले वैसा ही रूप धारण करता हुआ आखिरकार समन्दर में जा मिलता है। क्यों ? जानते हो ?'

'तुम्हीं बताओ।'

'इसलिए कि ज़िन्दगी जो लोगों के हिस्से में आती है, उसमें वे कुछ कमी महसूस करते हैं। ख्वाहिशें दिलों में उछलती रहती हैं और रगों में लोहू उबलता रहता है, पस्त हौसले के आदमी तो इसीमें झुलसकर खत्म हो जाते हैं। लेकिन जिनके खून में हौसले होते हैं, उन्हें बेफिक्री की आरामदेह ज़िन्दगी फीकी और मुर्दार-सी लगती है। वे ज़िन्दगी को कस्दन् ज़्यादा से ज़्यादा खतरनाक और

संकटों से लबालब बना लेते । दोस्त, तुम एक हौसलेवाले आदमी हो, कहो हां !'

'हां ।'

'तो बस, उन टेढ़े-नुकीले और चट्टानों से भरे हुए खतरनाक रास्तों पर चलने को अपने को तैयार कर लो । और अज्ञात चीज़ों को हासिल करने का कस्द कर लो। उस्ताद की सीख मानो । ज़िन्दगी का दरिया, आखिर समन्दर की छाती में तूफान लाएगा।'

'लेकिन एक दिक्कत यह है कि मैं अभी इतना खर्चा नहीं बर्दाश्त कर सकता कि नया घरबार बसाऊं ।'

'नवाब कोरी राय नहीं देता, सब मुश्किलें आसान करना अपना फर्ज़ समझता है । यह लो।' उसने जेब से निकालकर नोटों का एक बंडल जुगनू के हाथों में थमा दिया। जुगनू ने कहा, 'यह क्या ?'

'सिर्फ पांच सौ हैं और जिस कदर ज़रूरत हो दूंगा, जब तक कि तुम्हारा हाथ खुल न जाए ।'

'लेकिन मैं तुम्हें यह तकलीफ नहीं देना चाहता।'

'तकलीफ क्या है ? मैं तो बीज बो रहा हूं ।'

'बीज कैसा ?'

'जैसे खेत में किसान बोते हैं ।'

'इसका मतलब ?'

'जब खेत हरा-भरा होकर लहराने लगे, तब मतलब पूछना ।'

'अच्छी बात है। जब ओखली में सिर दिया तो मूसलों से क्या डर !' जुगनू ने उठते हुए कहा। नवाब भी उठा । उसने कहा, 'एक बात याद रखना दोस्त ! कुछ लोग ऐसे होते हैं जो समाज-रचना के सहारे ज़िन्दा रहते हैं, उसका एक अंग बनकर। उनकी हालत वैसी ही होती है जैसी हमारे जिस्म में हाथ-पैर और दूसरी इन्द्रियां हैं। वे जब तक तन्दुरुस्त हैं और जिस्म में गुंथी हुई हैं, तभी तक ज़रूरी हैं ।'

'इसका मतलब ?'

'मतलब धीरे-धीरे समझना । अब चलो ।' नवाब ने सिगरेट सुलगाई और दोनों दोस्त घर लौटे।

२५

दूसरे ही दिन नवाब लाला फकीरचन्द की कोठी पर जा पहुंचा। दिन-दोपहर मुनीम-गुमाश्तों के बीच बैठे, बिजनेस करते हुए लाला फकीरचन्द को इस तरह धड़ल्ले से वेश्या के दलाल का अपनी कोठी पर आना पसन्द न आया। उन्होंने ज़रा रूखे स्वर में कहा, 'इस वक्त कैसे आए ?'

'सलाम करने चला आया। अरसे से दर्शन नहीं हुए थे।'

'मतलब की बात कहो, इस वक्त मुझे फ़ुर्सत ज़रा कम है।'

'तो बन्दा-परवर, जब फ़ुर्सत हो तब सही। आया था एक खुशखबरी देने। एक मुफीद बात कहने।'

'तो कहो न, कोई नया माल आया है ?'

'जी हां, मगर माल नर है, मादा नहीं।'

'क्या मतलब ?'

'मतलब यह कि यह जी० बी० रोड नहीं है, लाला की कोठी है और रात नहीं है, दिन है। नवाब बेवकूफ नहीं है कि वक्त और मौका न पहचाने। नवाब सिर्फ काम की बात ही पसन्द करता है।'

'तो भाई, बात साफ-साफ कहो।'

'आपके दोस्त अब म्यूनिसिपल चेअरमैन बन गए हैं, इसीकी मुबारकबादी देने आया था, उम्मीद है कि आप भी इस मौके से पूरा फायदा उठाएंगे।'

'कौन दोस्त ?'

'वह मुंशी साहब।'

'ओह, उस मरदूद का नाम न लो। मरदूद ने पूरे पचास हज़ार का जूता जड़ा है। साला मेरे मुकाबले खड़ा हुआ और मेरे ही हल्के में मुझे मात दे गया।'

'तो हुज़ूर क्या मुज़ायका है ! अब मय सूद के सब वसूल कर लीजिए।'

'लेकिन कैसे ?'

'आप तो किबला दानावीना हैं। दुनिया की आंख देखे हुए। बस खरीद लीजिए उसे और अपनी जेब में डाल लीजिए। और समझ लीजिए गोया आप ही चेअरमैन हैं।'

लाला फकीरचन्द नवाब का मुंह ताकने लगे। उन्होंने कहा, 'तुम्हारा मतलब क्या है ?'

'बिलकुल सीधी बात है, सरकार। समझिए मौके पर आपका कुत्ता बैठा है।'

'लेकिन वह तो कांग्रेसी है। मेरे हत्थे क्यों चढ़ने लगा ?'

'वह न कांग्रेसी है, न संघी। कोरा मुंशी है। चांदी का जूता मारिए और मतलब साधिए। आपने तो जंग के ज़माने से इसी जूते की करामात से करोड़ों कमाए हैं।'

'तो तुम समझते हो, वह मतलब का आदमी है ?'

'अब हुज़ूर, ज़र दीदम, फौलाद नरम।'

'तो ज़ामिन कौन है ?'

'यह नवाब।'

'और यदि धोखा हुआ ?'

'क्या नवाब के हाथों ?'

'भई, दूध का जला छाछ को भी फूंक-फूंककर पीता है।'

'तो सलाम, मैंने नाहक आपको तकलीफ दी।' नवाब उठकर चलने लगा। लाला फकीरचन्द ने कहा, 'भाई, तुम तो इतने ही से बिगड़ उठे। मैंने एक बात कही।'

'लाला साहब, हर बात की एक कीमत होती है और हर काम का एक वक्त होता है। मैं तो आपकी मुहब्बत और खैरख्वाही से चला आया था। मेरे हाथों आपको फायदा हो तो मुझे खुशी है।'

'तो तुम इस बात में कुछ तन्त समझते हो ?'

'लाखों पर हाथ मारने का मौका है साहब।'

'आओ, इधर बैठो नवाब। यार, तुम तो बात ही बात में नाराज़ हो उठते हो। लो सिगरेट पीओ।' लाला फकीरचन्द ने हाथ पकड़कर नवाब को गद्दी पर खींच लिया। सिगरेट पेश की, चाय मंगाई, नाश्ता मंगाया और फिर घुट-घुटकर पूरे डेढ़ घण्टे बातचीत होती रही।

जब नवाब 'रुखसत अर्ज़' कहकर उठने लगा, तो लाला ने कहा, 'मगर वह तो वाइस-चेअरमैन है।'

'तो आप उसे चेअरमैन बना दीजिए।'
'मैं इसमें भला क्या कर सकता हूं?'
'चांदी के जूते में बड़ी-बड़ी करामात है,-लाला साहब।'
'खैर, तो तुम जानो। मैं तैयार हूं। तो कल रात ही को रही?'
'हां, कल ही रात को आठ बजे। इम्पीरियल में।'
'मैं ठीक वक्त पर पहुंच जाऊंगा।'
'बेहतर, तो बन्दा आपके इस्तकबाल के लिए हाज़िर मिलेगा। आदाबर्ज़

नवाब ने झुककर आदाब बजाया और चल दिया।

२६

जुगनू ने घर आकर देखा कि डाक्टर खन्ना साहब ने उसे दूसरे दिन ऐट होम का निमन्त्रण भेजा था। शोभाराम ने बताया कि बहुत देर तक डाक्टर साहब का आदमी बैठा रहा। मैंने निमन्त्रण स्वीकार कर लिया है। कल मैं भी तुम्हारे साथ चलूंगा। जुगनू के मन में बहुत-से विचार इस समय उठ रहे थे। अत: उसने शोभाराम से अधिक बातचीत नहीं की। स्वीकृतिसूचक सिर हिलाकर अपने कमरे में सोने चला गया। और दूसरे दिन जब नवाब लाला फकीरचन्द पर मक्खन लगा रहा था, जुगनू शोभाराम के साथ डाक्टर खन्ना के ऐट होम में जाने की तैयारी कर रहा था।

ऐट होम बड़े ठाठ का रहा। यद्यपि चुने हुए आदमी ही उसमें शरीक थे, पर तड़क-भड़क में वह बड़े शान की दावत थी। ऐसी शानदार दावत जुगनू को अपने जीवन में पहली ही बार मिली थी। अब यह जुगनू वह जुगनू न था जिसका मन संकोच और हीन भावनाओं से सिकुड़ा हुआ था। न वह अब कोरा मुंशी था जिसके दो-चार शेर सुनकर मनोरंजन करने को लोग उत्सुक रहते थे। अब तो वह नगर का एक विशिष्ट मान्य पुरुष था। हर कोई उसका सम्मान करता था। हर कोई उससे हाथ मिलाता और उसकी कृपादृष्टि चाहता था। भाग्योदय के शिखर की ओर उसकी गाड़ी तेज़ी से दौड़ रही थी। स्वच्छ, केवल

खद्दर की शेरवानी और चूड़ीदार पायजामा पहने तथा नोकदार गांधी टोपी लगाए, करीने से मूंछें कतरवाकर वह अब वास्तव में एक प्रभावशाली तरुण प्रतीत हो रहा था। वह बड़ी शालीनता से मुस्करा-मुस्कराकर हर एक से हाथ मिला रहा था। मुस्कराहट के साथ ही वह लोगों पर अपनी कृपादृष्टि बिखेर रहा था।

लोगों से हाथ मिलाता, उनका अभिनन्दन करता हुआ वह जब भीड़ में आगे बढ़ रहा था तभी डाक्टर खन्ना लपकते हुए आए। तपाक से उसे ले जाकर उन्होंने एक कोच पर जा बिठाया। इस समय शोभाराम प्रबन्ध में जुटा हुआ था। अभी जुगनू को यहां बैठे कुछ मिनट ही हुए थे कि शारदा हंसती हुई आई और उसने एक बड़ी-सी माला उसके गले में डाल दी। इधर छः महीने से भी अधिक काल से शारदा से वह मिला नहीं था। इस समय भव्य वेशधारिणी श्वेत गुलाब के फूल के समान सुषमा की खान शारदा जैसे मूर्तिमती शरद ऋतु बन रही थी। कौमार्य का माधुर्य, सौन्दर्य की प्रभा और शिक्षा का प्रकाश—ये सब मिलकर इस समय शारदा की मूर्ति को ऐसी अनिर्वचनीय बना रहे थे कि जुगनू देखकर हक्का-बक्का हो गया। वह हड़बड़ाकर उठ खड़ा हुआ। बड़ी कठिनता से उसने कहा, 'प्रसन्न तो हो मिस शारदा!'

'अच्छी हूं। पर इधर तुम इतने दिन से क्यों नहीं आते?'

'मुझे अफसोस है मिस शारदा! मुझे काम में फंसे रहना पड़ा। फुर्सत ही नहीं मिली।'

'मैंने एम० ए० में फर्स्ट डिवीज़न में फर्स्ट पोज़ीशन ली है। तुम्हें मालूम है?'

'नहीं, मुझे तो कुछ भी मालूम नहीं।'

'वाह, इतने लोग आए, लेकिन तुम नहीं आए। मैंने तुम्हारी कितनी प्रतीक्षा की।'

'बड़ा भारी कुसूर हो गया शारदादेवी, अब इस बार माफ कर दो।'

'नहीं, माफ नहीं करूंगी।'

'तब क्या करोगी?'

शारदा हंसती हुई उसीके पास बैठ गई। जुगनू का खून गरम होने लगा। एक थरथराहट उसके शरीर में उत्पन्न हो गई। उसे कुछ भी जवाब देते न बन पड़ा। शारदा ने हंसते-हंसते एक कागज़ का टुकड़ा कपड़ों से निकालकर कहा,

'अब तो मैं कविता कर लेती हूं मुंशी।'

'यह मैंने तुम्हारी तारीफ में कविता लिखी है। मैं पढ़ूंगी। पता नहीं तुम पसन्द करोगे भी या नहीं।'

'देखूं ज़रा,' जुगनू ने कागज़ की ओर हाथ बढ़ा दिया। लेकिन शारदा ने लजाकर मुट्ठी भींच ली। कहा, 'नहीं, तुम मेरी हंसी उड़ाओगे। नहीं दूंगी।'

'लेकिन पढ़ोगी तब तो सुन ही लूंगा।'

'तभी सुन लेना।'

इसी समय भीड़ से निकलते हुए परशुराम पर जुगनू की नज़र पड़ी। यद्यपि आज परिस्थिति कुछ दूसरी थी, फिर भी परशुराम को देखते ही जुगनू का खून सूख गया। वह परशुराम से आंख नहीं मिला सका। परशुराम ने पास आकर कहा, 'शारदा, तुम्हें डाक्टर साहब बुला रहे हैं।' और वह एक प्रकार से शारदा को धकेलता हुआ ले गया। मुंशी आग-भरी आंखों से उसे देखता ही रह गया। इसी समय शोभाराम म्युनिसिपैलिटी के चेअरमैन लाला बुलाकीदास को लेकर आए। जुगनू ने खड़े होकर लाला बुलाकीदास की अभ्यर्थना की और पास बिठाया।

लाला बुलाकीदास साधारण पढ़े-लिखे प्रौढ़ अवस्था के आदमी थे। वे बड़े मिलनसार और सज्जन पुरुष भी थे। नगर में उनकी प्रतिष्ठा थी। अग्रवाल वैश्यों के वे नेता और चौधरी थे। उनका लोहे का कारोबार खूब बढ़ा-चढ़ा था। व्यापार के मामलों में उनकी नज़र पैनी थी। परन्तु उनके ये सभी गुण म्युनिसिपल चेअरमैन होने में तनिक भी सहायक न थे। एक आदर्श सज्जन और प्रतिष्ठित व्यक्ति होने पर भी उनमें वे गुण न थे जिनकी नेता होने के लिए आवश्यकता थी। वे सभा में भाषण बिलकुल नहीं दे सकते थे। आंखों की मुरव्वत और स्वभाव की शालीनता के कारण छोटा-बड़ा प्रत्येक जो जिस काम से उनके पास आता था, वह भला-बुरा जैसा भी हो, अपना काम करा ले जाता था। नाहीं उनसे हो नहीं सकती थी। शासन और व्यवस्था के लिए जिस कठोरता और दृढ़ता की आवश्यकता होती है, वह उनमें न थी।

जुगनू ने उन्हें सादर पास बिठाते हुए कहा, 'मैं तो आपका छोटा भाई, बल्कि बच्चा हूं। बिलकुल अयोग्य, और एक प्रकार से परदेशी, सहायकों और

मित्रों से रहित। बस आपका शरणागत मुझे आप अपने आंचल में ढांप लीजिए। यही मेरी प्रार्थना है।'

जुगनू ने ऐसी नम्रता और विनय से ये शब्द कहे कि लाला बुलाकीदास पानी-पानी हो गए। उन्होंने जुगनू के गले में हाथ डालकर आत्मीयता से कहा, 'तुम मेरे प्यारे हो, मेरी आत्मा हो। ऐसा क्यों कहते हो ? खूब लायक हो। सच पूछो तो मुझे ज़बर्दस्ती ही इस झमेले में फंसाया गया है। बस, समझ लो—मैं सिंदूर लगा हुआ पत्थर हूं, जिसे लोग देवता समझकर पूजा करते हैं। मुझमें न इतनी समझ है, न शक्ति। बस, मैं तो तुम्हारे ही आसरे हूं। तुम नौजवान हो, लायक हो, समझदार हो। सब कुछ तुम्हींको करना पड़ेगा भैया, मेरा तो नाम ही नाम है। मिट्टी का शेर हूं मैं भैया।'

जुगनू ने झुककर उनके पैर छुए। बड़े ही दीन भाव से कहा, 'आपके चरणों का दास हूं। आप हुक्म करते जाएंगे, मैं उसका पालन करता जाऊंगा। यों मुझे भी ज़बर्दस्ती फंसाया गया है। मैं तो मुल्क का एक अदना खिदमतगार हूं। यहां शहर की खिदमत करने का मौका मिलेगा, बस इसीसे मैंने मंज़ूर किया था। अब आप ही के हाथ मेरी इज़्ज़त है।'

'फिक्र न करो प्यारे, भले-बुरे में मैं तुम्हारे साथ हूं। दिल्ली शहर में कौन माई का लाल है जो मेरी बात पर हरफ लगाए। तुम डंके की चोट अपना काम करना। सब झोंक मैं संभाल लूंगा।'

जुगनू की नम्रता और दीन वचनों से लाला बुलाकीदास मौन हो गए। और इस कुछ ही क्षणों की मुलाकात ने उन्हें जुगनू की जेब में डाल दिया। अभी और भी बात होती, पर इसी समय शारदा ने अपनी कविता पढ़नी शुरू की। लोगों ने तालियों की गड़गड़ाहट में कविता का अभिनन्दन किया। और भी नज़्में पढ़ी गईं। लाला बुलाकीदास से भी कुछ कहने को कहा गया, पर वे तो बस खड़े होकर हाथ जोड़कर ही बैठ गए। अब जुगनू की बारी आई। वही मस्ती, वही तरन्नुम में नज़्म पढ़ना और अन्त में वही पेटेण्ट वाक्य, 'मैं आपका बच्चा हूं, आपका सेवक हूं, यह मेरी नहीं कांग्रेस की इज़्ज़त है। मैं आपके लिए मर मिटूंगा। मुझे आप हीके सहयोग का सहारा है। मैं मुल्क का एक अदना खिदमतगार हूं' आदि-आदि।

बार-बार तालियों की गड़गड़ाहट से जुगनू का अभिनन्दन हुआ। इसके

बाद फूलमालाओं की बारी आई। सबसे पहले शारदा ने और इसके बाद सैकड़ों व्यक्तियों ने उसे फूलों से लाद दिया।

दावत बड़ी शान से खत्म हुई। सबके अन्त में डाक्टर खन्ना ने अपने भाषण में जुगनू की तारीफ के पुल बांध दिए। शोभाराम देख रहे थे और मुग्ध हो रहे थे। वे खुश थे कि उनका रोपा हुआ पौधा किस तरह पनप रहा था। पर वे नहीं जानते थे कि उन्होंने आस्तीन में सांप पाला है।

२७

शारदा से उसे एकान्त में मिलने का और फिर बातचीत करने का अवसर नहीं मिला। जब से उसने परशुराम की वह नज़र देखी थी, शारदा की ओर रुख करने का उसने साहस नहीं किया था। घटनाएं भी ऐसी तेज़ी से नया-नया रूप धारण करती जा रही थीं कि उसे इधर देखने का अवसर भी नहीं मिला। परन्तु शारदा को वह भूला न था। अब इतने दिन बाद शारदा से फिर जो मुलाकात हुई और शारदा ने जिस मुक्त भाव से उससे बातचीत की, उसने उसके खून में फिर एक गर्मी पैदा कर दी। यद्यपि परशुराम की आंख वह आज भी देख चुका था, और उससे डर भी गया था। आज के जशन में एक ओर परशुराम की आंख थी जिसमें तिरस्कार कूट-कूटकर भरा था, दूसरी ओर सारा मान-सम्मान था। फिर भी वह शारदा की आज की शतधौत श्वेत कमल की सुषमा को, शुभ्र शारदीय मूर्ति को मन-मन्दिर में सजाकर घर लौटा। रात भर उसे नींद न आई। यद्यपि दावत में उसे असाधारण सम्मान और अभिनन्दन मिला था, परन्तु उसे केवल शारदा का ही ध्यान था। शारदा का हंसता हुआ फूल-सा चेहरा, उसकी नवीन कदलीपत्रों के समान देहयष्टि, उसका नवविकसित यौवन, अल्हड़ भोलापन, ये सब हजार रूप धारण करके उसके सामने आते रहे। वह जागते ही अनेक सपने देखता रहा।

सुबह ही उसे नवाब का सन्देशा मिल गया था कि इम्पीरियल होटल में उसकी दावत थी। नवाब ने यह भी इशारा कर दिया था कि इस दावत का ज़िक्र वह किसीसे न करे। आज उसे आफिस में भी बहुत काम करना था। नया

आदमी था, काम का कुछ भी तजुर्बा न था।

दफ्तर में आकर उसे ज्ञात हुआ कि दिल्ली का वाइस-चेअरमैन बनना हंसी-खेल नहीं है। मेज़ पर फाइलों का अम्बार लगा था। सेक्रेटरी एक-एक फाइल समझा रहा था, पर जुगनू खाक-धूल, कुछ नहीं समझ रहा था। वास्तव में यह सब समझने-करने की उसमें योग्यता ही न थी। फिर इस समय तो शारदा की मूर्ति उसके रक्त-बिन्दुओं में ऊधम मचा रही थी। लाला बुलाकीदास ने हर बात उसीपर डाल दी थी, मुंशी से कहो। बस उन्होंने यही नीति अपना ली। आज भी वे थोड़ी देर को आफिस में आए और 'मुंशी को समझाओ' कहकर चले गए। अब मुंशी था और काम का पहाड़।

सेक्रेटरी एक योग्य व्यक्ति था। वह एक आई० ए० एस० सिविलियन था। डिप्टी-कमिश्नर के पद पर रह चुका था। जागरूक और योग्य व्यक्ति था। अपने काम में सख्त और मुस्तैद। एक ही दिन में उसने चेअरमैन और वाइस-चेअरमैन की योग्यता और क्रियाशक्ति को समझ लिया था और अब वह सोलह आना अपने आफिस का सर्वेसर्वा था। सारे कामों का भार अब उसीपर था। कांग्रेस सरकार की यह एक विशेषता है जो शायद भारत की राजनीति के इतिहास में अद्वितीय है कि शीर्षस्थान गधों के लिए सुरक्षित रहते हैं। चाहे म्यूनिसिपल चेअरमैन हो या मिनिस्टर, उनकी योग्यता की नापतोल करने की कांग्रेस सरकार को आवश्यकता नहीं है। योग्य कर्मचारी उनकी अर्दली में रहते हैं, सब काम करते हैं ; इन कुर्सीनशीन गधों को केवल दस्तखत करने पड़ते हैं। दस्तखत करना अवश्य सब गधों पर लाज़िम है।

एक ज़माना था कि भारत में पुश्तैनी गधे राज्य करते थे। ये राजा-महाराजा, ज़मींदार और रईस होते थे, योग्यता उनमें भी नहीं होती थी। बस खानदानी अधिकार की बदौलत वे सबके सिर पर बैठते थे। काम-धन्धा करने-वाले शिक्षित सुयोग्य व्यक्ति सब उनके नौकर-चाकर होते थे। कहना चाहिए गधों के नौकर घोड़े। बस, वैसा ही सिलसिला ज़रा बदला हुआ रूप धारण करके अब यह चला। अन्तर इतना था, उन गधों को खानदानी अधिकार प्राप्त था, इन्हें जनता के प्रतिनिधि होने का। जनता के प्रतिनिधि ये चुनाव से होते थे, जो एक धूर्ततापूर्ण, बेईमानी और बदमाशी का संगठन होता था।

जो हो। आज आफिस में पहले ही दिन दस्तखत करते-करते जुगनू का

कचूमर निकल गया। लाल बुलाकीदास तो जुगनू पर सब भार सौंपकर बेफिक्र हो गए और जुगनू ने सेक्रेटरी को सब स्याह-सफेद करने का अधिकार देकर सिगरेट पर सिगरेट फूंकना शुरू कर दिया। बस, उसनें तय किया कि आफिस में बैठकर सिगरेट पिया करेंगे । जो होना होगा, हो जाएगा। आरम्भ में वह ज़रा सेक्रेटरी के रुआब में आ गया था, पर जब सेक्रेटरी ने अदब और नम्रता का व्यवहार किया तो वह निश्चिन्त हो गया। और इस प्रकार भारत की राजधानी का नगर-ताऊ अपने पहले दिन का संकट सही-सलामत झेलकर जब घर लौटा तो वह खुश था। उसे प्रतीत हो रहा था कि गाड़ी अपने आप ही तेज़ रफ्तार से दौड़ी चली जा रही है। कोयला झोंकनेवाले और ड्राइवर इंजिन को चलाने की ज़िम्मेदारी रख रहे हैं। वह केवल गद्देदार कुर्सी पर आराम से बैठकर सिगरेट फूंक रहा है। यही उसका कर्तव्य है। यही उसकी कौमी खिदमत है।

२८

इम्पीरियल होटल की इस दावत का कारण जुगनू की समझ में नहीं आ रहा था। इतने बड़े होटल में जाने की भी उसकी हिम्मत नहीं हो रही थी। परन्तु अब तो प्रतिदिन असाधारण अवसर आ रहे थे। वह कब-कब और कैसे इनसे कतराकर बच सकता था। यह सम्भव ही नहीं था। वह टैक्सी लेकर होटल गया। वहां नवाब और लाला फकीरचन्द ने उसका स्वागत किया। लाला फकीरचन्द को वहां देखकर उसे आश्चर्य भी हुआ और संकोच भी; पर जब लाला फकीरचन्द ने खुशामदी ढंग पर दोनों हाथ जोड़कर मुस्कराते हुए उसका स्वागत किया, तब उसे याद हो आया कि अब वह पहलेवाला मुंशी नहीं है। अब वह नगर का एक प्रतिष्ठित शक्तिशाली व्यक्ति है और ऐसे-ऐसे लाला अब उसके तलुए सहलाएंगे। उसने एक शानदार मुस्कराहट के साथ अभिवादन का जवाब दिया, लाला का मिज़ाज पूछा। लाला ने वैसी ही अधीनता से शिष्टाचार का उत्तर दिया। नवाब अलग खड़ा मुस्करा रहा था। जुगनू जानना चाहता था कि इस दावत का मतलब क्या है। इतने ही में लाला फकीरचन्द ने हाथ

जोड़कर कहा, 'आपने बड़ी कृपा की मुंशी साहब, जो आपने मेरी दावत कबूल फर्माकर मेरी हौसला-अफजाई की।'

'मुझे फुर्सत बिलकुल न थी। लेकिन आपका हुक्म मैं टाल न सका।'

'आपकी ऐन इनायत है। आइए!' लाला ने अदब से झुककर इस तरह जुगनू को आगे बढ़ने का इशारा किया जैसे वह कोई होटल का वेटर है और जुगनू कहीं का नवाब है।

तीनों व्यक्ति पहले ही से रिज़र्व टेबल पर शान से जा बैठे। एक के बाद दूसरे खाने के विलायती सामान आने शुरू हुए। जब तक दावत होती रही, तीनों व्यक्ति चुपचाप खाते-पीते रहे। बीच-बीच में इधर-उधर की बातें होती रहीं। सिर्फ एक बार जुगनू ने अवसर पाकर नवाब के कान में कहा, 'आखिर इस दावत की मन्शा क्या है नवाब?'

'चुपचाप देखते रहो और शान से अकड़े रहो। यह मत भूलना कि तुम अब भारत की राजधानी के एक प्रकार के लार्ड मेयर ही हो।'

जुगनू और भी गम्भीर हो गया। लाला फकीरचन्द ज्यों-ज्यों नम्रता दिखाते, त्यों-त्यों जुगनू और भी बेरुखी और बेपरवाही से पेश आता। इससे शंकित होकर लाला नवाब की ओर अभिप्रायपूर्ण नज़र से देखते। नवाब भेद-भरी मुस्कान से उनका समाधान कर देता। उस मुस्कान का अर्थ था 'फिक्र मत करो, फिक्र मत करो।'

इसी तरह दावत खत्म हुई। वेटर जूठे बर्तन ले गया और काफी के साथ बिल भी ले आया। लाला ने बिल का पेमेण्ट किया। नवाब ने अब लाला को एक इशारा किया। लाला ने कुछ क्षण बाद उठते हुए जुगनू से अत्यन्त अधीनता से कहा, 'बहुत बेअदबी कर रहा हूं, मुंशी साहब। पर मुझे एक निहायत ज़रूरी काम याद आ गया है। इजाज़त चाहता हूं।'

जुगनू ने नवाब की ओर देखा। नवाब का संकेत पाकर उसने कहा, 'कोई बात नहीं लालाजी, आपकी इस दावत के लिए बहुत-बहुत शुक्रिया।'

लाला फकीरचन्द के चले जाने पर जुगनू ने कहा, 'अब हम भी चलें नवाब।'

'जल्दी क्या है, ज़रा और बैठेंगे। काफी अभी खत्म नहीं हुई है। हमें तो लाला की तरह कोई ज़रूरी काम है नहीं।'

जुगनू ने काफी का प्याला उठाया। नवाब ने सिगरेट जलाई। एकाएक जुगनू की नज़र टेबल पर पड़े पर्स पर पड़ी, उसने कहा, 'अरे, लाला अपना पर्स तो यहीं भूल गए।'

'लाला लोग अक्सर यह गलती किया करते हैं।' नवाब ने धुआं फेंकते हुए कहा। 'उसे उठाकर चुपचाप जेब के हवाले करो।' जुगनू का कलेजा कांप गया। उसने गहरी नज़र से नवाब की ओर देखा। कोई उनकी बात नहीं सुन रहा था। न किसीका उनकी ओर ध्यान ही था। नवाब बेपरवाही से सिगरेट का धुआं फेंक रहा था।

जुगनू ने पर्स को उठाते हुए कहा, 'इसे लाला को वापस करना होगा।'

'देखा जाएगा दोस्त, अभी तो इसे जेब में रखो।' फिर उसने ज़रा झुककर आहिस्ता से कहा, 'लाला लोग ऐसे मौके पर भूला हुआ पर्स वापस नहीं लिया करते।'

'क्या मतलब ?'

'मतलब यह कि वे इस तरह पर्स भूल जाने के लिए ही ऐसी दावतें किया करते हैं।'

'मैं तुम्हारा मतलब नहीं समझा।'

'समझते रहना, अभी मासूम बच्चे हो। धीरे-धीरे बहुत-सी बातें समझनी पड़ेंगी।'

जुगनू ने कुछ-कुछ नवाब का मतलब भांप लिया। उसने कांपते हाथों से पर्स जेब में डाल लिया। नवाब ने कहा, 'अब दावत खत्म, चलो।' वह उठ खड़ा हुआ। जुगनू भी चुपचाप उठा।

टैक्सी को नवाब ने इशारे से बुलाया और दोनों उसमें जा बैठे। नवाब ने कहा, 'एक चक्कर कनाट प्लेस का लगाओ दोस्त, और फिर दरियागंज चलो।'

वह इत्मीनान से बैठकर सिगरेट का धुआं फेंकने लगा। जुगनू की धड़कती हुई छाती पर पर्स जैसे पहाड़ के समान वज़नी मालूम पड़ रहा था। वह उसी-की बाबत सोच रहा था। दोनों में बिलकुल बातचीत नहीं हुई। टैक्सी ने दरियागंज आकर अपनी चाल ढीली की।

दरियागंज पहुंचकर नवाब ने टैक्सी को छोड़ दिया। दोनों फिर रस्टोरां

में जा घुसे। नवाव ने चाय का आर्डर दिया और एकान्त कक्ष में बैठकर कहा, 'हां, अब यहां देखना चाहिए। पर्स में क्या है ?'

जुगनू ने पर्स नवाब के सामने टेबल पर रख दिया। नवाब ने गिना, पर्स में पंद्रह हज़ार के सौ-सौ के नोट थे। पर्स को लापरवाही से जुगनू के सामने फेंकते हुए उसने कहा, 'सिर्फ पंद्रह हज़ार।'

'पन्द्रह हज़ार !' जुगनू का मुंह आश्चर्य से फैल गया।

'गिन लो भई।' नवाब ने लापरवाही से कहा।

'तो फिर ?'

'तो फिर क्या ? रखो इन्हें।'

'मतलब यह कि मैं इन्हें रख लूं, लाला को वापस न दूं ?'

'लाला का कतई यही मतलब था।'

'यानी लाला हमें ये रुपये दे गए। जान-बूझकर इस तरह पर्स छोड़ गए ?'

'बेशक।'

'इतने रुपये वे हमें क्यों देने लगे ?'

'इस पंचायत से तुम्हें क्या मतलब ! तुम्हें रुपयों की इस वक्त सख्त ज़रूरत है दोस्त, नया डेरा बदलना है तुम्हें, उसमें फर्नीचर चाहिए, नौकर-चाकर चाहिए, और भी खर्चे हैं। बस, इनसे अपना काम चलाओ।'

'तो उन्हें कहकर देना था।'

'ऐसी रकमें कहकर नहीं दी जाती हैं।'

'तो फिर, यह रकम मुझे लाला को कब लौटानी होगी ?'

'कभी नहीं दोस्त, यह तुम्हारी कुर्सी की पहली बोहनी है। ऐसे-ऐसे बहुत पर्स अब तुम्हारी जेब में आते रहेंगे।'

'लेकिन लाला मुफ्त में इतनी बड़ी रकम हमें क्यों देने लगे ?'

'मुफ्त में नहीं दोस्त, इसके बदले में तुम्हें उनका ज़रा-सा काम कर देना होगा।'

'कौन काम ?'

'दो-चार कण्ट्रैक्टों पर लाला बुलाकीदास के दस्तखत करा देने होंगे। बस तमाशा खत्म और पैसा हज़्म।'

'कैसे कण्ट्रैक्ट ?'

'वह मैं फिर बताऊंगा।'

'लेकिन यह तो बहुत भारी रकम है ?'

'तो लाओ, ज़रा हलकी कर दूं।' नवाब ने पर्स में से पांच हज़ार रुपये निकालकर अपनी जेब के हवाले किए। बाकी पर्स जुगनू के आगे फेंक दिया।

रैस्टोरां का नौकर चाय ट्रे में सजा लाया। एक-एक प्याला चाय पीकर दोनों दोस्त बाहर निकले।

'बहुत वक्त हो गया। अब तुम जाकर आराम करो। लेकिन याद रखना, इन मामलों का ज़िक्र किसीसे न करना। नवाब के कारोबार तुम्हारे और नवाब के ही बीच में रहें।'

वह हाथ मिलाकर एक ओर चल दिया। जुगनू बड़ी देर खोया-सा खड़ा रहा। फिर धीरे-धीरे वह भी डेरे की ओर चल दिया।

२९

दरियागंज में एक उम्दा नया फ्लैट ले लिया गया। बढ़िया फर्नीचर से उसे सजा दिया गया। एक चपरासी और एक नौकर सेवा में मुकर्रर हो गए। जुगनू अब ठाठ से अपने फ्लैट में रहने लगा। कौन कह सकता था कि वह वही आवारागर्द भंगी है जो गन्दी खाकी पैण्ट पहने इस दिल्ली में आया था। दिल्ली शहर भी एक करामाती शहर है; जिसका हाथ पकड़ा, निहाल कर दिया। जुगनू के सितारे बुलन्दी पर थे। अब उसकी चांदी ही चांदी थी उसका घर अब दिल्लीवालों के लिए इबादतखाना बन गया था। लोग आते थे, जाते थे। बहुत लोग बहुत गर्ज़ लेकर आते थे। बहुत लोग कांग्रेस के काम से आते थे। बहुत लोग महज़ दोस्ती-मुलाकात के लिए ही उसकी ड्यौढ़ी पर सिजदा करते थे। एक नौकर हर वक्त आने-जानेवालों के लिए चाय बनाता रहता था। नवाब का हुक्म था—कोई आदमी चाहे भी जिस मतलब से आए, चाय और पान से अवश्य उसकी खातिर की जाए और उसका काम यथाशक्ति तुरन्त कर दिया जाए। नवाब ने जुगनू को एक यह भी गुरुमन्त्र दे दिया था

कि चाहे कितना ही छोटा आदमी हो, उसके साथ प्रेम और सहानुभूति से पेश आना। किन्तु किसीसे घनिष्ठता न बढ़ाना, न किसीको दोस्त-राज़दां बनाना। जुगनू के हक में यह बात अच्छी थी। वह नहीं चाहता था कि उसकी पोल खुले। वह खुद भी डरा-डरा-सा रहता था। परन्तु अब तो और लोग उसीसे डरते थे। धीरे-धीरे जुगनू इस रहन-सहन का अभ्यस्त और ढीठ होता जाता था।

शोभाराम का अब भी उसे बहुत भारी सहारा था। यद्यपि शोभाराम भी अब उससे दबता था, पर नवाब की बुद्धि से जहां वह अपनी तिकड़मबाज़ी चलाता था, वहां शोभाराम की बुद्धि से वह अपने पद और कांग्रेस लीडर की मर्यादा की भी रक्षा करता था। शोभाराम ने यद्यपि उसे डेरा बदलने को मना किया था और जब जुगनू नये डेरे में इस ठाठ-बाट से रहने लगा तो आश्चर्य भी किया था कि इतना रुपया उसके पास कहां से आया, परन्तु इस सम्बन्ध में उसने जुगनू से कुछ कहना ठीक नहीं समझा। असल बात यह थी कि वह रुग्ण रहने के कारण इन बातों से उदासीन रहता था। फिर अब जुगनू के आफिस से हट जाने पर काम का भार फिर उसपर आ पड़ा था। इसके अतिरिक्त कांग्रेसी अमलदारी में ऐसी हवा चल ही रही थी। फिर जुगनू शोभाराम के प्रति एकनिष्ठ सेवक की भांति व्यवहार करता था। उसके काम में सहायता भी देता था। एक विशेष गुण जुगनू में यह था कि वह परिश्रम से जी नहीं चुराता था। शोभाराम इस बात से बहुत खुश थे।

आवारागर्द और बेकार किन्तु कांग्रेसी नवयुवकों का उसका घर अब पनाहगाह बनता जा रहा था। जब वह ज़िला कांग्रेस कमेटी का ज्वाइण्ट सेक्रेटरी था, तभी से वह उनका मुरव्वी बन गया था। सच पूछा जाए तो कांग्रेस ने ऐसे नौजवानों की एक बड़ी बिरादरी बना दी थी। अंग्रेज़ी अमलदारी में, खासकर सन् '४२ के तोड़ के बाद, इस बिरादरी का निर्माण हुआ था। सभी देशों में ऐसे बिगड़ैल तरुण होते हैं। असल बात तो यह है कि तरुणों का रक्त ही बिगड़ैल होता है। जो उठती उम्र के लड़के पढ़ने-लिखने में तेज़ नहीं होते, माता-पिता का सही अनुशासन जिनपर नहीं होता, स्वभाव और परिस्थितियों से वे साहसिक हो जाते हैं। पारिवारिक असुविधाएं उन्हें घर से विद्रोही बना देती हैं। बहुधा ऐसे तरुण घर से भाग आते हैं और आवारागर्दी का जीवन

व्यतीत करने लगते हैं। ऐसे ही तरुण चोर, उठाईगीर, गिरहकट, व्यभिचारी, लम्पट और दुर्व्यसनी बन जाते हैं। बहुधा तिकड़म और तोड़-फोड़ के उपद्रव उन्हें पसन्द होते हैं और वे उनके कारण जेल के अनवरत यात्री बन जाते हैं। यों तो कांग्रेस ने जब स्वयंसेवकों का संगठन किया, तभी ऐसी प्रकृति और परिस्थितियों के तरुण उसमें भर्ती हो गए थे। वे बड़ा कड़ा काम करनेवाले, कष्टसहिष्णु और साहसी थे। गांधीजी की नीति में जो जेल जाने की सरल विधियों का—निरुपद्रव और महाप्रतिष्ठित स्वरूप और विधियों का आविष्कार हुआ और उसके कारण अपनी साहसिक प्रवृत्तियों से प्रेरित होकर ऐसे तरुण जब हज़ारों-लाखों की संख्या में जेलों में भर गए और नेताओं की शह पाकर उन्होंने हद दर्जे की शरारतें, तिकड़म, अव्यवस्था और अनुशासन-भंग की कार्रवाइयां जेलों में कीं और उसके कारण जो बड़ी-बड़ी जेल-यन्त्रणाएं भुगतीं, उससे इन तरुणों के रक्त और स्वभाव में एक व्यवस्थित गुण्डागर्दी ने घर कर लिया। और जब सन् '४२ में उन्हें खुले रूप में तोड़-फोड़ की छुट्टी मिली तो देश में ऐसी अशान्ति और अव्यवस्था का वातावरण उन्होंने उत्पन्न कर दिया कि अंग्रेज़ सरकार के अनुशासन का दिवाला ही निकल गया और उसे भारत को छोड़कर भागते ही बना। ऐसे तरुण अब बढ़-बढ़कर अपने साहसिक अनुशासन-भंग की डींग गर्व से हांकते थे। उनके सारे ही अनाचार अब देशभक्ति के रंग में शराबोर थे। इसलिए वे न केवल क्षम्य थे, अपितु प्रशंसनीय भी बन गए थे। जैसे धर्म के नाम पर दुनिया भर के अनाचार वैध बन जाते हैं, वैसे ही देश-भक्ति के नाम पर ये अनाचार भी वैध बन गए थे।

परन्तु जब कांग्रेस का राज्यारोहण हुआ, उनमें के अवसरवादी और बुद्धि-प्रधान लोग तो ऊंची-नीची कुर्सियों पर बैठकर व्यवस्थित हो गए, परन्तु ये बुद्धिहीन तरुण एकदम असहाय आवारागर्द बन गए। इन्हें न किसी काम-धन्धे की योग्यता थी, न उच्चशिक्षा, न चरित्र का सहारा। गुण्डागर्दी इनके रक्त में मिली थी। जब तक अंग्रेज़ों की अमलदारी रही, इनकी गुण्डागर्दी देशभक्ति का अंग रही, पर कांग्रेस-राज्य में वह अपराध बन गई और इस प्रकार वे कांग्रेस के आश्रय से वंचित हो गए। उनमें अब बहुत-से तो छोटे-मोटे धन्धों में अपने अत्यन्त असफल अनैतिक जीवन को बड़े ही असन्तुष्ट रहकर काट रहे थे। बहुत-से कांग्रेस-विद्रोही होकर लाल झण्डे के नीचे फिर वही अपना पुराना

गुण्डागर्दी का शोर-शिफा कर रहे थे। पर अभी ऐसे बहुत-से तरुण थे जो कांग्रेस के नाम और निष्ठा से चिपके हुए थे। अब भी वे अपने को कांग्रेसी और देश-भक्त मानते थे। उनके लिए कांग्रेस में अब केवल एक ही काम रह गया था कि जब कांग्रेसी नेताओं का चुनाव हो, तब वे अपनी गुण्डागर्दी, अनैतिक स्वभाव और साहसिक प्रवृत्ति से काम लेकर चुनावों को सफल बनाएं। इसलिए जब चुनावों की आंधी आती थी तो इन आवारागर्द तरुणों की चांदी बन जाती थी। कांग्रेस कमेटी के दफ्तर उनके शिविर बन जाते थे। वहां से उन्हें खाना मिलता और सुविधाएं प्राप्त होती थीं। सबसे बढ़कर बात यह कि कांग्रेस वर्कर का सम्मान प्राप्त होता था।

जुगनू ने इन तरुणों के गुणों और उपयोगिता को ठीक-ठीक समझ लिया था और उसके जैसे असंस्कृत और अयोग्य जन के लिए ऐसे तरुण बड़े उपयोगी थे। उसकी प्रकृति भी लगभग वैसी ही थी। अतः उनसे वह अन्य कांग्रेसी नेताओं की भांति दूर ही से काम न लेता था वरन् उन्हें सच्चे दिल से प्यार करता और उनके साथ मित्रता का व्यवहार करता था। इसलिए ऐसे सैकड़ों तरुण जुगनू के परम सहायक और प्रशंसक बन गए थे। और कांग्रेस के वातावरण में वे उसके परम सहायक प्रमाणित हुए थे। जुगनू ने अब मन में यह ठान लिया था कि वह ऐसे चुनिंदा गुण्डा प्रकृति के नौजवानों की एक वालंटियर कोर बनाकर उन्हें अपनी महत्त्वाकांक्षा का माध्यम बनाएगा। अतः ऐसे आवारागर्द तरुणों के लिए जुगनू का घर तीर्थ बन गया था। जुगनू उनसे दिल खोलकर बात करता और मुक्त हाथों से उन्हें सहायता देता था। ऐसे तरुणों की चरित्रहीनता की उसे परवाह न थी। बहुत-से तरुण उसकी छत्र-छाया में अभयदान प्राप्त कर मौज-मज़ा करते थे। बहुत-से तरुण म्युनिसिपल कमेटी में नौकर हो गए थे। बहुतों को छोटे-छोटे ठेके मिल गए थे। बहुतों को ठेकेदारों का प्रश्रय मिल गया था।

इन नौजवानों के नेतृत्व के सम्बन्ध में वह न शोभाराम के अनुशासन के अधीन था, न नवाब के। न वह उनके सम्बन्ध में अपने इन दोनों प्रधान सहायकों से किसी प्रकार की सम्मति-सहायता लेता था। रुपये-पैसे का उसे मोह न था। हाथ खुलते ही वह उन्हें खूब खिलाने-पिलाने लगा और वे अब जुगनू की जय-जयकार करने लगे।

लाला फकीरचन्द का काम आसानी से हो गया। कोई आठ-दस लाख के अनेक ठेके उन्हें मिल गए। जुगनू को लाला बुलाकीदास से उनके कण्ट्राक्टों पर दस्तखत कराने तथा मीटिंग में पास कराने में कोई कठिनाई न हुई। लाला फकीरचन्द अब जब-तब उसके यहां आते थे। फोन पर बहुधा बातें करते थे। हफ्ते में एकाध वैसी ही छोटी-बड़ी दावत हो जाती थी। लाला फकीरचन्द अपने को बड़े खुशदिल समझते थे। मुक्त हस्त से उपहार देते थे। दरी, कालीन, पंखे, टी-सेट, बर्तन, खाने-पीने की चीज़ें निरन्तर किसी न किसी बहाने से आती ही रहती थीं। पर जुगनू एक बुद्धिमानी का काम करता था। अपने इन आवारागर्द तरुण दोस्तों को लाला फकीरचन्द से चस्पां करता रहता था। वह बहुधा एक स्लिप लिखकर किसी भी तरुण को लाला फकीरचन्द के पास भेज देता। स्लिप में केवल एक वाक्य होता, 'पत्रवाहक को मैं आपके पास भेज रहा हूं।' और लाला फकीरचन्द को उसे निश्चय ही कोई काम देना पड़ता था। इस प्रकार लाला फकीरचन्द के विविध कामों में ऐसे सैकड़ों तरुण लग रहे थे जो जुगनू की सैनिक कोर के सिपाही थे।

लाला बुलाकीदास जुगनू से बहुत खुश थे। सब काम उसपर छोड़ वे अपने व्यापार-बिजनेस में लगे थे उनके नाम पर जुगनू को सब स्याह-सफेद करने का अधिकार था।

३०

तीन महीने बीत गए। शोभाराम को फिर बीमारी का दौरा हुआ। वे बहुत कमज़ोर हो गए थे। एक दिन शाम को जुगनू उन्हें देखने उनके घर गया। घर पर अकेली पद्मादेवी ही थी। वह बहुत थकी और उदास थी। पलंग पर लेटी किसी पत्रिका के पन्ने उलट रही थी। जुगनू को देखकर वह हड़बड़ाकर उठ बैठी। जुगनू ने कहा, 'भाई साहब कहां हैं ?'

'वे डाक्टर के यहां गए हैं।'

'मैंने सुना था कि तबियत फिर खराब हो गई है, इसीसे सोचा चलो ज़रा देख आऊं।' उसने कनखियों से उसकी ओर देखा। वह पलंग से उठ खड़ी हुई

थी। नीची नज़र किए वह अपने हाथ की पत्रिका को तोड़-मरोड़ रही थी। इस समय यद्यपि वह बहुत थकित और दुर्बल दीख रही थी, परन्तु अचानक जुगनू के आने से लज्जा की लाली और असमंजस की उलझन उसके मुख पर फैल गई थी। इस कारण वह बड़ी सुन्दर प्रतीत हो रही थी। वह आकर्षक, कोमल और सुन्दर तो थी ही, परन्तु इस समय उसकी सुषमा देखकर जुगनू उत्तेजित हो गया। इसी समय पद्मा ने कहा, 'उनकी तबियत खराब होने की खबर न पाते तो शायद न आते।'

जुगनू के कान में ये शब्द घुंघरू की झनकार की भांति गूंज उठे। उसे ऐसा लगा कि सामने एक पका फल है। उसे हाथ बढ़ाकर तोड़ लेने भर की देर है। उसने कहा, 'क्या कहूं, काम इतना है कि दम मारने तक की फ़ुर्सत नहीं मिलती।'

'तो आज फ़ुर्सत मिली!' पद्मादेवी ने ज़रा धीमे स्वर में कहा। ऐसा प्रतीत होता था कि वह कांप रही है। जुगनू ने आगे बढ़कर उसका हाथ पकड़ लिया और फिर उन्मत्त की भांति उसे खींचकर सीने से लगा अपने जलते होंठ उसके अधरों पर धर दिए।

'ओह, क्या करते हो?' कहती हुई वह छटपटाने लगी। उसने बड़ी कठिनाई से अपने को छुड़ाया और हांफती हुई वस्त्र ठीक करने लगी।

जुगनू ने कहा, 'इसी कारण मैं नहीं आता था। तुम्हें देखते ही मैं आपे में नहीं रह सकता। जब से गया हूं एक पल को भी नहीं भूला हूं। बस, जलते-भुनते हुए दिन-रात बीतते हैं। अब कब तक जलूं, तुम्हीं कहो।'

'अकेले क्या तुम्हीं जल रहे हो?'

'ओह, तो क्या तुम भी···' जुगनू फिर उसे बाहुपाश में बांधने को आगे बढ़ा। पर पद्मादेवी ने उसे रोककर कहा, 'पागलपन मत करो, उनके आने का समय हो रहा है।'

'लेकिन तुम अनुमान नहीं लगा सकतीं। मैं मर रहा हूं।'

'ऐसी बात क्यों कहते हो?'

'मैं मर जाऊंगा। मैं ज़िन्दा नहीं रहूंगा।'

पद्मादेवी का सारा शरीर पीपल के पत्ते की भांति कांपने लगा। उसके मुंह से बात नहीं निकली। जुगनू ने फिर आगे बढ़कर उसे अपने बाहुपाश में

कस लिया और उसके अनगिनत चुम्बन ले डाले। पद्मादेवी का शरीर निढाल हो गया। उसने एक प्रकार से अपने को जुगनू के अंक में समर्पित कर दिया। सिसकते हुए उसके कांपते हुए कण्ठ से ये शब्द निकले, 'ओह प्रियतम, मैं भी मर रही हूं। तुम्हारे बिना मेरा जीवन दूभर है।'

'तो तुम शोभाराम को प्यार नहीं करतीं ?'

'ओह ! मेरे लिए वह मुर्दा आदमी है।'

उसने आंखें बन्द कर लीं और उन आंखों से झर-झर आंसू बहने लगे। उद्वेग से उसका सीना उठ-बैठ रहा था।

आंसू बहती हुई आंखों पर जुगनू बारंबार चुम्बन अंकित करने लगा। पद्मादेवी ने कहा, 'वर्षों हो गए, मैंने उनके शरीर का स्पर्श नहीं किया। वे चिर-रोगी हैं। मैं एक पत्थर के देवता की पूजा करती हुई जी रही हूं। लेकिन··· लेकिन···' वह आगे न बोल सकी।

'तो प्रिये, मैं भी तुम्हारे ही लिए जीवित हूं।'

वह धीरे-धीरे जुगनू के आलिंगनपाश से अलग हो गई। उसने अपने आंसू पोंछ लिए और कहा, 'इस तरह इच्छाओं के वशीभूत होना अच्छा नहीं है।'

'लेकिन मैं तुम्हारे प्रेम का भूखा हूं।'

'तुम प्रेम को एक भूख समझते हो, पर मैं उसे दो आत्माओं का सुखद मिलन। जब से मैंने तुम्हें देखा है, मैं अपनी अन्तरात्मा में तुम्हारी स्मृति मात्र से ही एक मिलन-सुख का अनुभव करती रही हूं। परन्तु शायद ये सारी ही बातें बेकार हैं।'

'क्यों प्रिये, बेकार क्यों हैं ? मैं तुम्हारा चिरदास तुम्हारी सेवा में हूं।'

'तुम यहां से चले गए, मैं समझती थी कि मैं यह सहन नहीं कर सकूंगी, पर अब समझती हूं अच्छा ही हुआ।' उसने एक सिसकारी भरी।

जुगनू ने कहा, 'यदि मुझे तुम्हारी जैसी कोई स्त्री मिलती तो मैं निश्चय ही उससे विवाह करके अपने को बड़भागी समझता।'

पद्मादेवी ने एक चितवन उसपर फेंकी। ऐसी चितवन जो पुरुष को स्त्री का दास बना लेती है। फिर अपनी आंखें नीची कर लीं। कुछ देर बाद उसने कहा, 'शायद हम लोगों को पहाड़ पर जाना पड़ेगा। डाक्टर का कहना है, यह अब बहुत ही ज़रूरी है।'

'तो तुम कहो तो मैं साथ चलूं।'

'नहीं।'

'तो वादा करो, आवश्यकता होने पर तुम मुझे बुला लोगी।'

'मैं क्या कहूं, मेरा मन बहुत अधीर हो रहा है।'

'जब तक मैं ज़िन्दा हूं, तुम्हें किसी प्रकार की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।' जुगनू फिर उसे आलिंगनपाश में लेने को आगे बढ़ा, पर उसी समय ज़ीने पर किसीके आने की आहट मिली। दोनों सावधान हो बैठे। शोभाराम और डाक्टर खन्ना दोनों ही थे।

डाक्टर खन्ना ने कहा, 'अरे, मुंशी हैं, नमस्कार भई। बड़ी उम्र है तुम्हारी। हम लोग तुम्हारी ही चर्चा करते आ रहे थे।'

'यह तो आपकी बड़ी कृपा है। कहिए, आपका मिज़ाज तो अच्छा है ? घर में और सब तो ठीक हैं ?'

'सब ठीकठाक है भाई, लेकिन शारदा तुम्हें बहुत याद करती है। उस दिन दावत के बाद फिर आए ही नहीं।'

'क्या कहूं। भाई साहब ने मुझे ऐसी गाड़ी में जोत दिया है कि बोझा खींचते-खींचते कचूमर निकला जा रहा है।' उसने हंसते हुए कहा।

जुगनू का हास्य बड़ा मधुर था। कुछ क्षण पूर्व वह जिस प्रेम की दुनिया में विचर रहा था, उसकी मस्ती का बहुत-सा नशा उस हास्य में था।

शोभाराम ने उदासीनता से बैठते हुए कहा, 'क्या बहुत देर हुई मुंशी ?'

'नहीं, बस दो-चार ही मिनट हुए। मैंने तो सुबह सुना कि तबियत एकाएक फिर खराब हो गई।'

'अब तो डाक्टरों का कहना है कि पहाड़ पर जाना अत्यन्त आवश्यक है।'

डाक्टर खन्ना ने कहा, 'भई, पहले तन्दुरुस्ती और बाद में और कुछ। मसूरी में अपनी कोठी है ही, तरद्दुद का काम नहीं। बस, कल ही चले जाओ।'

'सोचता हूं, सालाना चुनाव हो जाए तो जाऊं।'

'गोली मारो चुनावों पर भाई, जान है तो जहान है,' डाक्टर खन्ना ने ज़ोर देते हुए कहा।

जुगनू ने कहा, 'भाई साहब, डाक्टर साहब ठीक कह रहे हैं। भाभी भी बहुत चिन्तित हैं। पहाड़ की आबोहवा और काम-काज से बेफिक्री—ये दो बातें

ऐसी हैं कि जाते ही तबियत बहाल हो जाएगी ।'

'खैर, सोचूंगा ।'

'सोचूंगा नहीं । बस चले ही जाओ । अब तो डाक्टर सेन ने भी यही राय दी है ।'

'अच्छी बात है । आप तार दे दीजिए । सोमवार को चल दूंगा । तुम मुंशी, क्या कर रहे हो ? तुम्हारा सब काम चल रहा है न ?'

'आप जैसे-जैसे आदेश देते जाते हैं, वही करता जा रहा हूं ।'

'भई, ज़रा लाला बुलाकीदास को संभाले रहना ।'

'आप बेफिक्र रहें । लेकिन आप कहें तो मैं साथ चलूं ।'

'न, न, ऐसी ज़रूरत नहीं है । ज़रूरत हुई तो लिखूंगा ।'

'और किसी बात की आवश्यकता हो तो कहिए ।'

'ऐसी कोई बात नहीं है ।' शोभाराम ने ये शब्द तो कहे, पर उनकी वाणी सूखी हुई थी । बात यह थी कि रुपये-पैसे की उन्हें इस समय बड़ी तंगी थी । कांग्रेस से वे केवल डेढ़ सौ रुपये ही लेते थे, पर इतने में घरखर्च भी बड़ी कठिनाई से चलता था । फिर बीमारी का खर्चा । पद्मादेवी के कई आभूषण बिक चुके थे । जुगनू यह बात जानता था । शोभाराम की पेशानी पर भी चिन्ता की रेखाएं थीं । पर शोभाराम बड़े दृढ़ चरित्र के व्यक्ति थे । कर्ज़ा वे लेते न थे । पर इस समय तो रुपयों की सख्त ज़रूरत थी । पर इस समय इस प्रसंग में किसीने बातचीत नहीं की । शोभाराम ने पद्मादेवी से कहा, 'चाय बनाओ ज़रा, और थोड़ा नाश्ता भी ।'

पर जुगनू और डाक्टर एकदम दोनों उठ खड़े हुए । बोले, 'नहीं, इस समय भाभी को कष्ट मत दो ।'

डाक्टर खन्ना ने कहा, 'बस, मैं अब चला ।'

जुगनू ने कहा, 'मैं भी चलता हूं भाई साहब, सुबह मैं आऊंगा । आप तैयारी कीजिए ।'

शोभाराम ने कोई जवाब नहीं दिया । दोनों चल दिए ।

३१

डेरे पर आकर जुगनू ने देखा, नवाब बड़ी देर से बैठा है। जुगनू ने कहा, 'कहो, कोई खास काम है ?'

'मोती बींधना होगा।'

'कैसा मोती ?'

'कीमती मोती।'

'तुम तो पहेलियां बुझाते हो नवाब, सीधी बात क्यों नहीं कहते।'

'सीधी बात तो गाली होती है।'

'तो गाली ही सही।'

'खैर, यह कहो, कहां गए थे ?'

'भाई साहब से मिलने गया था। तबियत उनकी बहुत खराब है, पहाड़ जा रहे हैं।'

'भाभी साहिबा से मुलाकात हुई ?'

'हुई।'

'कहां तक ?'

जुगनू ने नवाब की तरफ देखा और मुस्करा दिया। उसने कहा, 'मोती की बात कहो न ?'

'कह दूंगा, तुम पहले हीरे की बात बताओ।'

'बात क्या बताऊं। बस मर रही है। भाई साहब आ न जाते तो न जाने क्या कुछ न हो जाता।'

'तो अकेले में मुलाकात हुई न ?'

'जब मैं पहुंचा तो अकेली ही थी।'

'तो अब हेस-नेस कर डालो मुंशी। शिकार से ज्यादा खेल करना ठीक नहीं।'

'मेरी हिम्मत नहीं पड़ती। क्या करूं। और वह तो डर से मरी जाती है।'

'पहाड़ तो वह भी जा रही है न ?'

'जाना ही होगा।'

'खर्च-वर्च का क्या हाल है ?'

'हद दर्जे की तंगी है।'

'तो तुम मदद क्यों नहीं देते ? तुम्हारे पास तो रुपया है।'

'मैंने तय किया है, सुबह रुपए दूंगा।'

'किनको ?'

'भाई साहब को।'

'नहीं, भाभी साहिबा को दो।'

'खैर, कितना ?'

'दो हज़ार तो दो।'

'सुबह दे आऊंगा। अब मोती की बात कहो।'

'लाला बुलाकीदास की घरवाली से जान-पहचान करो।'

'किसलिए ?'

'नवाब का हुक्म है इसलिए।'

'इससे क्या फायदा होगा ?'

'यह तुम देख लेना। अमा, चौथी बीवी है, लाला पके कद्दू हैं और बीवी ककड़ी का ताज़ा रवा। उसे तुम्हारी सख्त ज़रूरत है। फिर अब तो रिश्ता भी कायम हो गया है।'

'कैसा रिश्ता ?'

'देवर-भाभी का। अब तो तुम सही मानों में लाला बुलाकीदास के छोटे भाई हो।'

'क्या वे मुझसे मिलेंगी ?'

'मैंने सुना है, सोशल वर्कर हैं, कांग्रेस में दखल रखती हैं। शाहखर्च और आज़ाद-तबियत हैं। परदा नहीं करतीं। उन्हें एक ऐसे आदमी की सख्त ज़रूरत है जो उन्हें आगे लाए। घर में ऐसी औरतों का दम घुटता रहता है। लाला बुलाकीदास के बूते का यह काम नहीं। वे तो अपने बही-खातों में फंसे रहते हैं। उनकी बीवी को अब तुम संभालो।'

'क्या मतलब ?'

'अजी मतलब यह कि उन्हें आगे लाओ। मुल्क की खिदमत का मौका दो, रास्ता दिखाओ। जैसे लाला बुलाकीदास का कमेटी में सब काम तुमने संभाला है, वैसे ही बीवी का भी चार्ज ले लो।' नवाब ने हंसते हुए कहा। जुगनू नहीं

हंस सका। अभी तक पद्मादेवी के आलिंगन और आंसू-भरी आंखों के चुम्बनों की गर्मी उसके रक्त में बनी हुई थी। उसने कहा, 'देखूंगा।' पर जुगनू को नवाब का यह प्रस्ताव कुछ अच्छा नहीं लगा। वह नहीं जानता था कि इससे क्या लाभ होगा। फिर बिना बुलाए वह वहां जाना नहीं चाहता था। लाला बुलाकीदास की उसपर कृपा थी, विश्वास था। वे जुगनू की सेवा, लगन और भलमनसाहत के प्रशंसक थे। जुगनू ही की बदौलत उनकी चेअरमैनी की गाड़ी रड़क रही थी। सब काम जुगनू करता था, श्रेय लालाजी को मिलता था। उन्होंने अब सभी महत्त्वपूर्ण काम जुगनू को सौंपे हुए थे। जुगनू के हाथ में पद थे, नौकरियां थीं, कण्ट्रैक्ट थे, परमिट थे, पट्टे थे, और नवाब की संसार-बुद्धि थी जिसे उसने सबकी नज़र से छिपाकर रखने ही में भलाई समझी हुई थी। अतः लाला बुलाकीदास को तो चेअरमैनी के सब झंझटों से जुगनू के कारण छुट्टी मिली हुई थी और जुगनू को बुलाकीदास के कारण आमदनी के हज़ार सूत्र मिल गए थे। अब रुपया था जो बरसाती नदी की तरह उमड़ता हुआ जुगनू के पास आ रहा था। वह अंधाधुन्ध खर्च करता था। फिर भी रुपया कम न होता था।

नवाब ने कहा, 'क्या सोचने लगे दोस्त ?'

'मैं सोच रहा हूं, लाला बुलाकीदास का मेरे ऊपर कितना विश्वास है, मेरे ऊपर आफिस का सब भार छोड़कर वे बेफिक्र हैं।'

'भई, तुम्हारे भाई साहब शोभाराम भी तो तुमपर आफिस का सब भार छोड़कर बेफिक्र हो गए थे। तुमने भार संभाल लिया और साथ ही भाभी का भी चार्ज ले लिया। ऐसा ही यहां भी करो। शोभाराम बीमार और कमज़ोर आदमी है। लाला बुलाकीदास बूढ़े और बनिए आदमी हैं। बीवी दोनों की जवान हैं। बस, उस्ताद की सीख मानो। लाला की कृपा का लाभ उठाकर उनके घर में घुस जाओ।'

'तुम समझते हो इससे कुछ फायदा होगा ?'

'नवाब तो फायदे ही की सलाह देता है। अच्छा, अब चलता हूं।' नवाब उठ खड़ा हुआ।

जुगनू पर अभी तक पद्मादेवी का रंग चढ़ा था। वह कुछ अनमना-सा हो रहा था। जब नवाब जाने लगा तो उसने कहा, 'जा ही रहे हो ?'

'हां, क्योंकि तुम्हें इस वक्त भाभी की यादगार के लिए अकेले रहने की सख्त ज़रूरत है।' वह हंसा और चल दिया।

३२

शोभाराम और उनकी पत्नी एक नई चिन्ता में उलझ गए। पहाड़ जाना होगा तो खर्च का कैसे प्रबन्ध किया जाएगा। किसी मित्र से रुपया कर्ज़ लेना शोभाराम पसन्द नहीं करते थे और रुपये प्राप्त करने का दूसरा तरीका उनकी समझ में नहीं आ रहा था। कुछ देर सोचते रहकर उन्होंने धीरे से कहा, 'पांच सौ तो चाहिए ही।'

'इतने से कम में तो काम चलेगा नहीं।'

'लेकिन मुझे तो अभी वही डेढ़ सौ मिलेंगे।'

'इनमें सौ रुपए तो खर्च ही हो जाएंगे। बहुत लोगों को देना है। फिर पहाड़ जाना है तो तैयारी भी करनी पड़ेगी। गर्म कपड़े भी चाहिए।'

'सोचता हूं, अभी टाल जाऊं। अगले महीने देखूंगा।'

'न, टालने से नहीं होगा?'

'तो खर्च का कैसे बन्दोबस्त होगा?'

'कुछ हो ही जाएगा।' पद्मादेवी ने धीरे से कहा। वह मन ही मन सोच रही थी, 'न होगा तो अपने रहे-सहे दो-चार गहने हैं, उन्हें बेच लूंगी। इनसे नहीं कहूंगी।'

शोभाराम की पेशानी पर बल पड़ गए। वे सोच रहे थे, 'न होगा तो डा० खन्ना से उधार मांगूंगा।'

इसी उधेड़बुन में रात भर दोनों जागते रहे। पद्मादेवी मन ही मन यह हिसाब लगाती रही कि गहने बेचकर कितना रुपया मिलेगा और शोभाराम यह सोचते रहे कि खन्ना ने इन्कार कर दिया तो क्या होगा! परन्तु दोनों ने मन की बात मन ही में रखी। लज्जा के कारण दोनों ही अपने विचार एक दूसरे पर नहीं प्रकट करना चाह रहे थे।

हठात् पद्मादेवी के मन में आया, इन्हें कुछ हो गया तो मेरा क्या होगा?

और इसके साथ ही जुगनू का वह उत्तप्त आलिंगन उसे आहत करने लगा। वह लम्बी-लम्बी उसासें लेने और अपनी चारपाई पर छटपटाने लगी। शोभाराम ने कहा, 'क्या कुछ तकलीफ है तुम्हें ?'

'नहीं तो ?'

'तो इस तरह क्यों कर रही हो ? नींद नहीं आ रही क्या ?'

'न।'

'तबियत तो ठीक है ?'

'ठीक ही है ?'

'तो सो जाओ।'

शोभाराम ने एक ठण्डी सांस भरी और करवट वदलकर सो रहे।

सुबह उठते ही जुगनू शोभाराम के घर पहुंचा। पद्मादेवी शोभाराम को मुसम्मी का रस पिला रही थी। इस समय जुगनू में जड़ता नाम मात्र को भी न थी। शोभाराम को हंसते हुए नमस्कार करके उसने पद्मादेवी से कहा, 'भाभी, ज़रा एक बात सुनना।'

पद्मादेवी अचकचाई। शोभाराम ने कहा 'क्या बात है मुंशी ?'

'भाभी से एक काम है, भाई साहब।' जुगनू ने मुस्कराते हुए कहा।

'सुन आओ मुंशी की बात।' शोभाराम ने रस पीते हुए कहा। इस समय उसकी आंखें एक दैनिक पत्र पर घूम रही थीं। दूसरे कमरे में आकर जुगनू ने दो हज़ार रुपयों के नोटों की गड्डी पद्मादेवी की हथेली पर रखते हुए आहिस्ता से कहा, 'तुम्हें मेरी कसम, भाई साहब से न कहना।'

'लेकिन इतने रुपए···'

'पहाड़ पर बहुत खर्च होता है। रख लो और जिस वक्त ज़रूरत हो मुझे लिखना। संकोच न करना। मैं और रुपया भेजूंगा।'

इतना कहकर जुगनू तेज़ी से लम्बे-लम्बे डग भरता हुआ वहां से चल दिया। पद्मादेवी कहती ही रही, 'अजी सुनो, सुनो।' और फिर कुछ देर तक वह जड़ बनी हुई हथेली पर रखी हुई नोटों की गड्डी को देखती रही। रात भर वह अपने अवशिष्ट गहने बेचने या रहन करने की बात सोचती रही थी। उसे इस प्रकार अयाचित रूप में रुपया मिल जाने की कोई आशा ही न थी। जुगनू की कसम उसके कानों में गूंज रही थी और जुगनू ने जिस तरह उसकी

नर्म-नर्म हथेलियों को अपने हाथों में दबाकर वे रुपये दिए थे, वह दबाव भी वह अभी महसूस कर रही थी।

३३

शोभाराम के घर से निकलकर जुगनू ने एक टोकरा बढ़िया दशहरी आम का खरीदा, उसका ठीक ढंग से पैकिंग कराया जैसे कहीं बाहर से आया हो और वह उसे लेकर लाला बुलाकीदास के मकान पर पहुंचा। जौहरी मुहल्ले में एक लम्बी पतली गली में लाला बुलाकीदास की पुश्तैनी हवेली थी। गली ज़रूर तंग और पतली थी, परन्तु मकान पुख्ता पत्थर का बना था। भीतर खुलासा सहन था। छोटी-सी फुलवारी भी सहन में लगी थी। जुगनू जानता था कि इस वक्त लाला बुलाकीदास घर पर नहीं होते। उसने टोकरा नौकर के हाथ भीतर भिजवा दिया। ज़बानी सन्देश दिया, 'मालकिन को मुंशी जगनपरसाद का प्रणाम कहना। ये आम लखनऊ से आए थे, कृपा कर स्वीकार करें।'

नौकर ने भीतर से लौटकर बैठकखाना खोल दिया और कहा, 'आप ज़रा बैठिए।'

जुगनू को बैठाकर वह भीतर चला गया और एक चांदी की तश्तरी में दालमोठ और पिस्ते की बर्फी लेकर तथा चांदी के गिलास में बर्फ का पानी लेकर आ हाज़िर हुआ। तश्तरी सामने टेबल पर रखते हुए उसने कहा, 'ज़रा मुंह जुठार लीजिए, मालकिन अभी आती हैं।'

'इसकी क्या ज़रूरत थी? जुगनू ने हंसते हुए कहा और एक पुश्तैनी रईस की तरह सोफे पर बैठकर लखनवी नफासत से नाश्ता करने लगा। नाश्ता खत्म होने पर नौकर चांदी की तश्तरी में पान दे गया। सिगरेट का डिब्बा पास रख गया। इसके बाद ही मालकिन ने बैठक में प्रवेश किया। हलकी आसमानी साड़ी, मुस्कराता चेहरा, भरा हुआ गुदगुदा शरीर, गोरा रंग, बड़ी-बड़ी नशीली आंखें, गले में मोतियों की एक लड़, कान में हीरे के टाप्स। होंठों पर पान की लकीर, सुडौल दांत, और टेढ़ी मांग में सिन्दूर की लकीर, उम्र

कोई बत्तीस साल।

'आपने बड़ी ज़हमत उठाई। क्या ज़रूरत थी भला इतनी तकलीफ करने की ?'

जुगनू ने खड़े होकर दोनों हाथ जोड़कर नमस्कार किया। मुस्कराते हुए कहा, 'तकलीफ क्यों कहती हैं ? मैं बेघरबार का आदमी, अकेला पंछी। अब तो यही मेरा घर है। एक दोस्त ने लखनऊ से भेजे थे, ले आया।'

'बैठिए आप। लालाजी तो आपकी बड़ी तारीफ किया करते हैं। कई बार कहा मैंने कि उन्हें एक बार खाने पर बुलाओ। पर उन्हें फुर्सत हो तब न। बीस झंझट बांध रखे हैं। अब आज आप खुद ही आ गए। बड़ी कृपा की।'

'तो हाथी के पांव में सबका पांव। दिल्ली शहर में कौन है जो उनका सामना कर सके और मैं तो उन्हें बड़ा भाई मानता हूं। आदमी क्या हैं, देवता हैं।'

'सब आप लोगों की कृपा है। सुना है आप तो कवि हैं।'

'यों ही कुछ कह लेता हूं। क्या आप भी कुछ शौक रखती हैं ?'

'कविता सुनने का मुझे बहुत शौक है। पढ़ती भी रहती हूं, पर आप तो उर्दू में कविता करते हैं।'

'लेकिन अब फुर्सत कहां मिलती है ! भाई साहब ने सारे काम का बोझ मेरे ही ऊपर डाल दिया है।'

'तो अपने आदमी पर ही तो भरोसा किया जा सकता है। उन्हें तो काम ही काम है। खाना-पीना भी तो समय पर नहीं होता।'

'नहीं, नहीं, भाभीजी, यह बात ठीक नहीं। आप उनपर ब्रेक लगाइए। उन्हें ज़बर्दस्ती आराम करने को मजबूर कीजिए। वे दिल्ली की हस्ती हैं। बस, पूजा करने के काबिल। जहां तक कमेटी के काम का तअल्लुक है, उस ओर से बेफिक्र रहें। मैं सब संभाल लूंगा।'

'यही तो बात है। लाख कहती हूं, सुनते नहीं हैं। भला किसके लिए इतनी हाय-हाय ! अकेले दम—न लड़का, न बच्चा। पर अपने शरीर को देखते नहीं। मैं तो देख-देखकर घुली जाती हूं।'

'जैसे वे दिल्ली की शोभा हैं, वैसे ही आप भी इस घर की शोभा हैं। आपके दर्शन तो पुण्यात्माओं ही को होते हैं। कुछ मेरे योग्य सेवा बताइए।'

'आप तो पहले ही उनके लिए इतना कर रहे हैं ; आपको धन्यवाद है।'

'आप तो भाभीजी, पराये आदमी की तरह बात कर रही हैं। भला धन्य-वाद की क्या बात है ?'

मालकिन हंस दीं। बड़ी बहारदार थी वह हंसी। जुगनू को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उसके चारों ओर चमेली के फूल बिखर गए हों। जुगनू ने भी हंसकर खड़े होते हुए कहा, 'अब आज्ञा दीजिए, बस इतनी अरदास है, अपना सेवक ही समझिए।'

'अरे, आप तो चल ही दिए। खाना खाकर जाइए।'

'नहीं, इस वक्त नहीं। फिर कभी।'

'वाह, यह कैसे हो सकता है ! वे सुनेंगे तो कितने खफा होंगे !'

'बस, माफी मांग लीजिएगा मेरी तरफ से। मैं फिर हाज़िर होऊंगा।'

'तो इस इतवार को रही।'

'जैसी आज्ञा। नमस्ते।'

'नमस्ते।'

३४

उस दिन डाक्टर खन्ना के ऐट होम में एक बाहरी व्यक्ति भी सम्मिलित था। वह रिश्ते में शारदा का चचेरा भाई होता था। दिल्ली में नया ही आया था। एक हायर सैकण्ड्री स्कूल में ड्राइंग-मास्टर था। अपने को चित्रकार समझता था। परन्तु कविता करने की उसे सनक थी। कहना चाहिए उसे कवितोन्माद की बीमारी थी। उसका नाम राधेमोहन था। जुगनू के व्यक्तित्व से वह बहुत प्रभावित हुआ। उस दिन पार्टी में उसे जुगनू से परिचित होने का अवसर नहीं मिला था। तब से वह बहुत बार शारदा से चिरौरी कर चुका था कि उसका परि-चय जुगनू से करा दिया जाए। पर उस दिन के बाद जुगनू वहां आया ही न था। जिस दिन शोभाराम पहाड़ को जा रहे थे, उन्हें स्टेशन पर विदाई देने जुगनू और डाक्टर खन्ना भी पहुंचे थे। कांग्रेस के और भी कार्यकर्ता थे। डाक्टर खन्ना के साथ शारदादेवी थी। और शारदादेवी के साथ राधेमोहन भी था।

हकीकत यह थी, राधेमोहन जुगनू से परिचित होने को अत्यन्त बेचैन था। पर यहां भी उसे जुगनू से बात करने का अवसर नहीं मिला। शारदादेवी ने अपना भाई कहकर परिचय भी दिया, पर इस समय जुगनू का ध्यान इधर-उधर बह रहा था। उसे बहुत आदमी घेरे हुए थे। शारदादेवी के साथ वह जब घर लौटा तो घर पर परशुराम शारदा की प्रतीक्षा कर रहा था।

परशुराम एक दृढ़ स्वभाव का पुरुष था। वह चरित्रवान भी था। मिज़ाज का तीखा और स्पष्ट वक्ता था। राधेमोहन से परशुराम का परिचय कराते हुए शारदा ने कहा, 'मास्टर साहब, आप ज़रा राधे भाई साहब को ले जाकर मुंशी से परिचय करा दीजिए।'

'क्यों ?'

'ये मुंशी पर लट्टू हैं। खुद भी कवि हैं। मुंशी भी कवि है।'

'हां भाई साहब, आपकी बड़ी कृपा होगी। मैं चाहता हूं कि मुंशी से मेरा परिचय हो जाए।'

'वह जानवर है।' परशुराम ने जैसे लाठी की चोट की।

शारदा परशुराम का मुंह ताकने लगी। उसके चेहरे पर कठोरता उभर रही थी।

राधेमोहन ने कहा, 'आप गाली क्यों देते हैं साहब ?'

'गाली नहीं देता हूं सिर्फ यह कहता हूं, मुंशी जानवर है।'

'आदमी को जानवर कहना गाली नहीं है।'

'नहीं, यदि आदमी के भीतर जानवर की आत्मा हो तो उसे जानवर कहना ही चाहिए ?'

'खैर, जानवर ही सही। मैं उनसे मिलना चाहता हूं। आप मेरा उनसे परिचय करा दीजिए।'

'वह करीब-करीब रोज़ ही शाम को दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी में जाकर बैठता है। वहां तुम उससे मिल सकते हो। या घर पर। पर अब तो वह बड़ा आदमी बन गया है। मिलना हो तो लाइब्रेरी ही में मिलना।'

राधेमोहन उसी शाम दिल्ली पब्लिक लाइब्रेरी जा पहुंचा। उसने देखा, वह एक कोने में टेबल के किनारे बैठा, बड़े मनोयोग से कोई पुस्तक पढ़ रहा था। वातावरण गर्म था। हवा बन्द थी, पर वहां पंखा इस कमी की पूर्ति कर रहा था।

वाचकों की भीड़भाड़ थी, पर शोर कतई न था। राधेमोहन चुपचाप उसके पास जाकर बैठ गया। एक पत्रिका उठाकर उसके पन्ने पलटने लगा। जुगनू ने उसकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया। वह मनोयोग से अपनी पुस्तक पढ़ता रहा। बहुत देर बाद उसने पुस्तक बन्द की और एक अंगड़ाई ली। राधेमोहन ने नमस्कार करके अपना नाम बताया और कहा, 'उस दिन डा० खन्ना के यहां आपके दर्शन हुए थे। मैं आपसे मिलना चाह रहा था।'

'क्यों ?' जुगनू ने रुखाई से कहा। परन्तु इसकी तनिक भी परवाह न करके राधे ने कहा, 'आपकी कविता मुझे पसन्द है। शारदा ने आपकी बहुत तारीफ की है, वह मेरी चचेरी बहिन होती है।'

जुगनू ने एक मिनट तक उसे घूरकर देखा। फिर कहा, 'उस दिन स्टेशन पर भी तुम शारदादेवी के साथ थे। क्या करते हो तुम ?'

'मैं आर्टिस्ट हूं साहब, यहां एक स्कूल में ड्राइंग-मास्टर हूं, पर कविता का मुझे भी शौक है।'

'अच्छा ही है।' जुगनू ने उपेक्षाभाव से कहा।

'पर आप तो जादू करते हैं जादू।'

'यह तुमसे किसने कहा ?'

'शारदा ने। वह तो आपकी कविता पर दीवानी है। जब आपकी बात करती है, बस उसकी ज़बान ही नहीं रुकती।' जुगनू यद्यपि मूढ़ पुरुष था, पर उसने राधे की मूर्खता को प्रत्यक्ष देख लिया और कहा—

'लेकिन, मैं तुम्हारे लिए क्या कर सकता हूं ?'

'मैं एक कलाकार हूं साहब, कोई गरज़मन्द आदमी नहीं हूं। मैं आपसे कुछ मांगता थोड़े ही हूं ? मैं तो आपकी कविता पर मुग्ध हूं। आपका प्रशंसक हूं।'

'तो मुझे इसकी क्या परवाह है ?'

'आप बड़े आदमी हैं महाशय, आपको किसीकी परवाह नहीं। पर मैं तो आपका भक्त हूं। खासकर मेरी स्त्री।'

'तुम्हारी स्त्री ?' जुगनू को एक कौतूहल हुआ।

'जी हां, कविता का उसे बेहद शौक है। उसने आपकी कविता डा० खन्ना के मकान पर सुनी थी, तभी से वह आपपर मुग्ध है।'

'लेकिन मैंने तो उसे देखा तक नहीं है।'

'उसने कहा है कि मैं आपको दावत दूं। किसी दिन भी आप मेरे यहां भोजन कीजिए, आपकी बड़ी कृपा होगी।' राधेमोहन अजब तरह से अपनी उंगलियां मरोड़ रहा था और मुस्करा रहा था।

जुगनू ने ज़रा शान से कहा—

'अजीब-सी बात है! खैर, कभी देखा जाएगा। लेकिन तुम भी तो बिलकुल नौजवान हो, इतनी जल्दी शादी कर ली? बाल-बच्चे कितने हैं?'

राधेमोहन ज़रा झेंप गया। उसने हंसते हुए कहा, 'अभी तो हमीं बच्चे हैं साहब, शादी को दो ही बरस तो हुए हैं।'

एक पाशविक चमक जुगनू की आंखों में और हिंसक मुस्कराहट उसके होंठों में फैल गई। उसने समझ लिया, कोई भोला शिकार है। कुशल शिकारी की भांति उसके कंधे पर हाथ रखकर उठते हुए उसने कहा—

'तुम मुझसे चाहते क्या हो दोस्त?'

'बस आपकी कृपादृष्टि चाहिए। तो मेरा निमन्त्रण स्वीकार हुआ?'

'देखा जाएगा। आओ, अभी तुम मेरे साथ आओ।'

वे वहां से चलकर चांदनी चौक में एक रैस्टोरां में जा बैठे। चाय और नाश्ते का आर्डर देने के बाद बातचीत शुरू हुई।

'हां, तो तुम आर्टिस्ट हो?'

'जी हां, आर्ट की ओर मेरी बचपन से ही रुचि है···।'

'क्या तुम पुश्तैनी आर्टिस्ट हो?'

'जी नहीं। यों तो हम पंजाबी हैं। हमारे यहां कपड़े का कारोबार होता है।'

'खैर, तो अब तुम्हारे आर्ट के कारोबार का क्या हाल है? क्या तुम मेरी तस्वीर बना सकते हो?'

'जी हां, आप हुक्म दीजिए।'

'सामने बिठाकर या फोटो को सामने रखकर?'

'फोटो से अच्छी बन पड़ेगी।'

'अच्छी बात है। एक फोटो मैं तुम्हें दूंगा। फीस क्या लोगे?'

'आपसे फीस नहीं लूंगा। तस्वीर बनाकर आपकी नज़र करूंगा।'

'तब तो तुम बहुत अच्छे आदमी हो। दोस्त बनाने के काबिल।'

राधेमोहन मूर्ख की भांति हंसने लगा। जुगनू ने कहा, 'तुमने कुछ और

भी चित्र बनाए हैं ?'

'जी हां, जब आप मेरे घर आएंगे तो दिखाऊंगा।'

'अपनी पत्नी के भी चित्र बनाए हैं ?'

'जी नहीं।'

'क्यों ? क्या वह खूबसूरत नहीं है ?'

'नहीं, यह बात नहीं। असल में मैं अभी कैमरा नहीं खरीद सका हूं। एक अच्छा-सा कैमरा खरीदने की जुगत में हूं।'

'मैं इस सम्बन्ध में शायद तुम्हारी कुछ मदद कर सकूं। एक अच्छा कैमरा मेरी नज़र में है।' जुगनू ने एक टटोलनेवाली दृष्टि उसपर डाली।

'तो आप ज़रूर ही उसकी बात तय कर डालिए। लेकिन अन्दाज़न उसकी कीमत क्या होगी ?'

'सस्ता ही मिल जाएगा। गरज़मन्द आदमी है। फेंक देने पर तुला हुआ है। तुम जानो सब लोग तुम्हारे जैसे आर्टिस्ट तो होते नहीं। काम की चीज़ को कूड़ा समझते हैं।'

'आप ठीक कहते हैं साहब, कला ही से सौंदर्य की परख होती है। सौंदर्य संसार की सबसे बहुमूल्य वस्तु है। कलाकार उसे संसार के जीवन-संघर्ष से बाहर निकालकर सजाता है। कलाकार के इस परिश्रम को समझना हर किसी के बलबूते की बात नहीं है। समझ रहे हैं न आप ?'

जुगनू ने इस बेवकूफ आदमी की ग्रामोफोन के रिकार्ड की भांति घिसी-पिटी बात सुनकर हंसते हुए कहा, 'खूब समझ रहा हूं भई। मालूम होता है, सौंदर्य परखने की यह नज़र तुमने अपनी स्त्री से पाई है।'

राधेमोहन पत्नी की स्मृति में मुग्ध हो गया। उसने उसी मुग्ध भाव से कहा, 'उसकी बात क्या कहूं, वह तो एक मधुर रागिनी है। एक कल्पना है, जिसमें चन्द्रमा की शीतलता भी है और चांदनी का उजाला भी।'

'और गुलाब, बेला, चमेली, चम्पा, जुही, गेंदा, इनकी बहार नहीं है ?'

'ओह, आप कवि हैं न, आप ही यह बात इस तरह कह सकते हैं।'

'लेकिन भाई, इन बातों को समझने की योग्यता कितनों में है !'

'अहा हा, कहा है—अरसिकेषु कवित्त्व निवेदनम्, इसीसे तो मेरी पत्नी ने जब से आपकी कविता सुनी है, आपकी प्रशंसा करती नहीं अघाती।'

'तो मालूम होता है, तुम दोनों की खूब घुटती है। तुम्हें वह खूब प्यार करती है।'

'ओह, प्यार की क्या कहते हैं आप, घर पहुंचने में एक मिनट की देर होती है तो रोते-रोते आंखें सूज जाती हैं उसकी।'

राधेमोहन चाय की चुस्की के साथ बढ़-बढ़कर अपनी स्त्री के रूप-गुण की तारीफ करता जाता था, और जुगनू उसकी मूर्खतापूर्ण उत्तेजक बातों से मन ही मन एक नई अभिलाषा से सुलग रहा था। उसने उठते हुए कहा, 'कुछ गाना-ऊना भी जानते हो!'

'मैं तो नहीं, पर मेरी स्त्री खूब गाती है। बहुत ही प्यारा गला है। हारमोनियम भी बजा लेती है।'

'तो भई, मुबारकबादी देता हूं, ऐसी गुणवती सुन्दरी बीवी मिलने के लिए। किसी दिन सुनूंगा आकर उनका संगीत।'

'लेकिन कविता आपको भी सुनानी पड़ेगी।'

'खैर, देखा जाएगा। देखो, वह सामने टैक्सी जा रही है, रोको उसे।'

राधेमोहन दौड़कर टैक्सी ले आया। जुगनू ने कहा, 'मैं तो अब ज़रा नई दिल्ली एक काम से जाऊंगा। कहो, तुम्हें कहां छोड़ दूं?'

'कष्ट मत कीजिए। मैं चला जाऊंगा। लेकिन आप कब आ रहे हैं मेरे घर? इसी इतवार को आइए न।'

'इतवार को नहीं, शनिवार की शाम को।'

'बहुत ठीक। मैं आपको आफिस से ही ले लूंगा। चार बजे मुझे छुट्टी मिल जाती है। मैं ठीक साढ़े चार बजे आ जाऊंगा।'

'अच्छी बात है, नमस्कार।'

जुगनू टैक्सी में बैठ गया। राधेमोहन के गवेपन पर वह मन ही मन हंस रहा था। और राधेमोहन जैसे कृतकृत्य होकर जाती हुई टैक्सी को खड़ा देख रहा था।

३५

जुगनू एक कल्पनाशील व्यक्ति था, यह तो हमें स्वीकार करना पड़ेगा। कल्पना और कठोर परिश्रम; बस, यही दो वस्तु उसके सारे कारोबार की पूंजी थीं। साहसिक भी उसे कहा जा सकता था। प्रकृति ने उसे पूर्ण स्वस्थ शरीर दिया था। और अभी वह अपनी जवानी के मध्य भाग के इसी छोर पर था, पैंतीस बरस की आयु तक भी नहीं पहुंचा था। यही वह आयु है जब यदि भाग्य अनुकूल हो तो कल्पना और श्रम उत्तम स्वास्थ्य के साथ मिलकर जीवन को रंगीन कर देते हैं। इधर वह नियमित रूप से अध्ययन भी कर रहा था। अध्ययन से उसमें गम्भीरता और ज्ञान की वृद्धि हुई थी। और अपनी प्रत्येक विषय की अनभिज्ञता को छिपाने का कौशल भी प्राप्त हुआ था। वह इस समय एक उच्च और ज़िम्मेदार पद पर पहुंच चुका था। उसकी त्रुटियां असाधारण थीं, पर आकांक्षा दुर्दमनीय और अपरिसीम थी। रुपया अब बरसाती नदी की भांति उमड़ता हुआ उसके हाथों में आ रहा था। आमदनी के गुप्त और प्रकट नये-नये अप्रत्याशित जरिए उसके सामने आते जा रहे थे। अनगिनत आदमियों की भीड़ गरज़मन्द की भांति उसे घेरे रहती थी। उसने नीति बनाई थी—सबको खुश रखना और सबसे लाभ उठाना। इसलिए वह खूब सावधानी से प्रत्येक काम करता था। वह मेधावी पुरुष था। एक बात तत्त्वतः उसने समझ ली थी कि हर प्रकार की कठिनाई और दुर्गमता के विरुद्ध घोर संघर्ष का नाम ही सच्चा जीवन है। भाग्य ने उसके जीवन को झकझोर डाला था और अधिकांश लोगों को जो बात भयंकर प्रतीत होती है, वह उसपर कोई प्रभाव नहीं डालती थी। सुख-चैन की जिन्दगी वह इस समय व्यतीत कर रहा था। पर सुख-चैन से उसे ज़रा भी दिलचस्पी न थी। वासना उसमें प्रचंड थी। वह कामी पुरुष था। स्त्री की भूख उसे हर समय सताती रहती थी और इसके लिए वह किसी भी कठिनाई को असाध्य न समझता था।

नवाब उसकी आंख और हृदय था, जो एक जहांदीदा और हद दर्जे का व्यवहार-कुशल, चतुर कौआ आदमी था। जुगनू के सब गुण-दोष उसने परख लिए थे। और वह उसे अपना एक हथियार बनाए हुए था। वह जानता था—रंडी की दलाली के रज़ील पेशे की अपेक्षा जुगनू जैसे आदमी की दलाली में कहीं

बहुत अधिक फायदा है, जिसे भाग्य उठाकर आसमान में उड़ाए लिए जा रहा था। वह हज़ारों उसकी जेब में डालता था और हज़ारों अपनी जेब में। दोनों दोनों के लिए काम के व्यक्ति प्रमाणित थे। और अब दोनों का अटूट सम्बन्ध दिन पर दिन दृढ़ होता जाता था। दोनों ही एक प्रकार से नीच पुरुष थे—एक था जन्मजात भंगी, अशिक्षित, आवारा और दुश्चरित्र, और दूसरा था पूरा काइयां, रंडी का दलाल, एक रज़ील-पेशा धूर्त आदमी। परन्तु मानसिक तुच्छता न जुगनू में थी न नवाब में। इसीसे दोनों की प्रगाढ़ मित्रता अब अटूट विश्वास में परिणत हो गई थी।

जुगनू के जीवन में अब भी कठिनाइयां बहुत थीं। परन्तु वह एक ऐसी वस्तु को लक्ष्य बनाए हुए था, जिसे शायद वह खुद भी ठीक-ठीक नहीं जानता था। पर कोई अज्ञात शक्ति उसे प्रेरित करती रहती थी। यथार्थ की अपेक्षा वह कल्पना-जगत् में बहुधा विचरण करता रहता था। और कल्पना ने उसकी अन्तरात्मा में आनन्द के अनेक स्रोत खोल दिए थे। परन्तु वह प्रत्येक काम अपने भयंकर व्यक्तित्व की सम्पूर्ण शक्ति से करता, उसकी अपनी उत्तेजना उसे गर्माती और प्रेरित करती रहती। वह जो कुछ भी करता, उसके परिणामों की एक परिपूर्ण मूर्ति अपने मस्तिष्क में पहले ही से बना लेता। इसलिए काम में ज़रा-सी भी त्रुटि वह बर्दाश्त नहीं कर सकता था। परिस्थितियों ने उसे ढीठ, कठोर, निर्मम और साहसी बना दिया था। और अब वह इस बात की ज़रा भी परवाह नहीं करता था कि उसके बारे में दूसरों की क्या राय है। वह अब व्यक्ति की राय को दो कौड़ी का भी महत्त्व न देता था। फिर बहुतों की राय की उसे क्या परवाह थी। महत्त्वाकांक्षा अब उसकी अपरिसीम हो रही थी। उसे जो कुछ भी मिलता, उससे उसे संतोष नहीं होता था। आकांक्षाओं के जो महल उसके मस्तिष्क में बनते जा रहे थे उनमें अभाव ही अभाव था। वह सदा यही सोचता था—अभी और, अभी और।

३६

राधेमोहन जैसे गधे की मुलाकात ने उसके कामुक मन में एक गुदगुदी उत्पन्न कर दी। उस बेवकूफ ने अपनी स्त्री की जो बढ़-बढ़कर तारीफ की थी, उसने उसके खून को गर्मा दिया था। उसे दीख रहा था कि यह शायद सबसे आसान शिकार होगा। रात भर वह उस अज्ञात, अपरिचित स्त्री की काल्पनिक मूर्तियां बनाता रहा। यह बात तो है ही कि सत्य से कल्पना अधिक सुन्दर होती है। क्योंकि वहां भावना ही भावना तो होती है। फिर जुगनू भावुक व्यक्ति था, भावावेश में वह तमाम रात उत्तेजित रहा। सुबह होते ही किसी दुर्दम्य पाशविक प्रेरणा से धकेला जाकर वह सीधा डाक्टर खन्ना के मकान पर जा पहुंचा। वह शारदा से इस गधे और इसकी पत्नी की कुछ अधिक जानकारी प्राप्त करना चाहता था। जानकारी ही नहीं वह चर्चा करना चाहता था और इसी आवेश में वह शारदा के सहवास का भी आनन्द लूटना चाहता था। सच पूछा जाए तो इस समय वह इस कदर काम-विमोहित हो रहा था कि उसका ज्ञान और सावधानता भी कुण्ठित हो गई थी। परन्तु वहां जाकर उसने देखा बरांडे में शारदा के स्थान पर परशुराम बैठा है। परशुराम को देखते ही उसके खून की सारी गर्मी ठण्डी पड़ गई। वह अनमना-सा होकर एक कुर्सी पर बैठ गया। परशुराम से उसे ज्ञात हुआ कि शारदा डाक्टर खन्ना और अपनी माता के साथ कहीं रिश्तेदारी में गई है। जुगनू परशुराम की नज़र पहचानता था, अतः उसने वहां से खिसक चलना ही ठीक समझा। परन्तु परशुराम ने बाधा देकर कहा,

'बैठिए, बैठिए, आप तो भागने लगे।'

'मुझे एक ज़रूरी काम याद आ गया।'

'परन्तु शारदादेवी यदि यहां मिल जातीं तो आप शायद वह ज़रूरी काम भूल जाते।'

'आप तो व्यंग्य कर रहे हैं।'

'आपको शायद बुरा लगा। लेकिन मैं आपसे कविता के सम्बन्ध में बात करना चाहता हूं।'

'कविता के सम्बन्ध में क्यों?'

'इसलिए कि आप अपने को कवि कहते हैं।'

'आप शायद यह स्वीकार नहीं करते।'

'यदि कहूं कि आपका अनुमान सच है, तो ?'

'तो आप अपने घर, और मैं अपने घर, बस।'

'यानी आप किसी व्यक्ति की राय की परवाह नहीं करते।'

'मैं न व्यक्ति की परवाह करता हूं न समाज की !'

'अर्थात् आप सबके मुकाबिले धांधलेबाजी करते हैं।'

'आप मेरा अपमान कर रहे हैं, परशुरामजी।'

'मैं आपको सचेत कर रहा हूं जगनप्रसादजी।'

'मेरा नाम मुंशी जगनपरसाद है।'

'मुंशी नाम नहीं होता। नाम की पूंछ होता है। नाम तो आपका जगन-प्रसाद ही है।'

'मेरा नाम मुंशी जगनपरसाद है।' जुगनू ने क्रुद्ध होकर कहा।

परशुराम ने हंसकर कहा, 'आपके पिता-माता तो शायद आपको जुगनू कह-कर पुकारते होंगे।'

जुगनू का रक्त ठण्डा पड़ गया। मन के भीतर का चोर कांप गया। क्षण भर उसने परशुराम की ओर घूरकर देखा, फिर शंकित स्वर में कहा, 'आपका मतलब ?'

'मतलब की बात जाने दीजिए। आपको मुंशी कहलाना यदि इतना अधिक पसन्द है तो मेरा कुछ बनता-बिगड़ता नहीं है। मुंशी कहने में मेरी ज़बान नहीं घिस जाएगी। खैर, तो मुंशीजी, आप जो कविता करते हैं, तो उसके विषय में आप क्या सोचते हैं ?'

'मैं तो कुछ नहीं सोचता। जो देखता हूं वही कहता हूं।'

'परन्तु आप जो देखते-सुनते हैं, वही क्या सब ठीक होता है ?'

'यह मैं क्या जानूं ?'

'तो आप जिस बात को जानते नहीं, उसे दूसरों से कहते क्यों हैं ?' जुगनू को गुस्सा आ गया। वास्तव में अब वह निरीह मुंशी न था, म्युनिसिपल चेअर-मैन था। उसने कहा—

'आप जो जानते-बूझते हैं, वह सब ठीक होता है ?'

'ठीक ही होता है। मैं यदि कहीं गलती करता हूं तो उसे वहीं सुधार लेता हूं। अपनी गलती को समझने की योग्यता मुझमें है।'

'मुझमें नहीं है ?'

'शायद नहीं है।'

'कैसे भला ?'

'तो आप बताइए कि आप शारदा को इश्क का पाठ क्यों पढ़ाते हैं ? किसलिए उसके चारों ओर मंडराते फिरते हैं ? क्या काम है आपका उससे ? क्या आप नहीं जानते, वह एक शरीफ खानदान की क्वांरी लड़की है ?'

'तो फिर ?' जुगनू ने तैश में आकर कहा।

'तो फिर क्या, मुझे तो आप शरीफ आदमी नहीं मालूम देते। क्या आप मुझे बता सकते हैं कि आप किस शरीफ खानदान में पैदा हुए हैं, और आपकी पुश्तैनी हैसियत क्या है ?'

जुगनू के शरीर से पसीना छूटने लगा। उसका मुंह सूख गया। परशुराम ने यद्यपि केवल क्रोध और उद्दण्डता से ही वह बात कही थी पर जुगनू के मन में चोर बैठ गया। उसने कहा—

'आप गालियां देने पर आमादा हैं, मैं आपसे बात करना पसन्द नहीं करता।'

'तो मैं भी आपका शारदा के पीछे मंडराना नहीं पसन्द करता।'

'पसन्द-नापसन्द करनेवाले आप होते कौन हैं ? शारदा स्वयं ही मुझसे मिलना पसन्द करती है।'

'लेकिन मैं तो पसन्द नहीं करता ?'

'आप शारदा के कौन होते हैं ?'

'मैं उसका शिक्षक और रक्षक हूं।'

जुगनू ने परशुराम के चेहरे की ओर देखा। वह कठोर और रूखा चेहरा इस समय क्रोध से लाल हो रहा था।

उसने कहा, 'आपको और भी कुछ कहना है ?'

'जी हां, मुझे यही कहना है कि आप शारदा से मिलना बन्द कीजिए।'

'नहीं तो आप गालियां देंगे ?'

'गालियां ही क्यों, आवश्यक होने पर मारपीट भी कर सकता हूं।'

'आपको शायद जेल जाने का भय नहीं है।'

'जेल की क्या बात है, फांसी चढ़ने का भी भय नहीं है।'

'अजीब आदमी हैं आप, हवा से उलझते हैं। आप जेल जाएं या फांसी चढ़ें—मुझे आपसे कोई सरोकार नहीं; मैं जाता हूं।

'क्या एकदम चल ही दिए?'

'मैं जाता हूं,' कहकर जुगनू वहां से बेंत से पीटे कुत्ते की भांति दुम दबाकर भागा।

उसके जाने पर एक घृणापूर्ण मुस्कराहट परशुराम के होंठों पर फैल गई। उसने उसकी ओर देखकर भुनभुनाते हुए कहा, 'कायर! कमीना! कुत्ता!!!'

३७

राधेमोहन की पत्नी एक अल्पशिक्षित, कच्ची उम्र की लड़की थी। सज-धजकर रहने की वह शौकीन थी। राधेमोहन ने यद्यपि बहुत डींग मारी थी कि वह जुगनू की कविता पर लट्टू है, वास्तव में न वह इस बात को समझती थी कि कविता किस चिड़िया का नाम है न उसे कविता से कोई दिलचस्पी ही थी। जुगनू से भी उसका कोई आकर्षण न था। राधेमोहन ने जो समा बांधा था वह हवाई ही था, या कहना चाहिए उसका गधापन था। अलबत्ता यह बात अवश्य थी कि वह स्त्री राधेमोहन की अभावपूर्ण गृहस्थी में संतुष्ट न थी। वह एक शौकीन-मिज़ाज स्त्री थी और सज-धजकर सैर-सपाटा करने, सिनेमा देखने और खुशगप्पियां लड़ाने में रुचि रखती थी, जिसका यहां राधेमोहन की गृहस्थी में प्रायः अभाव ही था।

दावत की तैयारी दोनों ने मिलकर खूब ठाठदार की। राधेमोहन रसोईघर में खुद ही पिल पड़ा था। कहना चाहिए, वह एक जनखा-सा आदमी था। उस दिन उसने स्कूल से छुट्टी ले ली थी। और तमाम दिन दोनों कच्चे पति-पत्नी उस भंगी के बच्चे की दावत की तैयारी इस तरह कर रहे थे जैसे कोई मिनिस्टर ही उनके घर आ रहा हो।

जुगनू अपने साथ एक कैमरा भी खरीद लाया था। कैमरा कीमती था—

और उसने उसे राधेमोहन के लिए ही खरीदा था।

राधेमोहन ने कैमरा देखकर कहा, 'चीज़ तो उम्दा मालूम पड़ती है, नई भी है। कितने में सौदा हुआ?'

'दे देंगे जो कीमत ठीक समझेंगे। सस्ता ही मिल जाएगा। वह आदमी गरज़मन्द है। अभी तुम इससे काम लो।'

राधेमोहन कैमरे का इस्तेमाल करना बिलकुल ही नहीं जानता था। परन्तु उसने बड़े चाव से कैमरा ले लिया। कब कीमत देनी पड़ेगी—इस बात की भी उसने ज़्यादा परवाह न की।

खाना-पीना देर तक होता रहा। राधेमोहन की स्त्री का नाम गोमती था। वह मुंशी के सामने नहीं आई। परदे ही में रही। खाने-पीने से फारिग होने पर मुंशी ने ज़रा रंगीनी से कहा, 'भई, यह क्या बात है, भाभी साहिबा परदे ही में रहेंगी? तुम तो कहते थे वे मेरी कविता पसन्द करती हैं?'

'ज़रूर करती है। कल से पचास बार-सौ बार कह चुकी है।' इतना कहकर उसने रसोईघर की ओर मुंह करके कहा, 'भई, इधर आओ, मुंशी साहब से कैसा परदा, ये तो घर के ही आदमी हैं।'

पर उस स्त्री ने परदे ही में से जुगनू की प्यासी आंखों को भांप लिया था। आंखों के उन भावों को, जिन्हें स्त्रियां तुरन्त समझ लेती हैं, समझ लेने में उसे क्षण भर की देर न लगी। उसने राधेमोहन के आवाहन का कोई उत्तर नहीं दिया। बाहर वह नहीं आई।

राधेमोहन ने समझा उसकी बड़ी हेठी हुई। औरत ने हुक्म नहीं माना, तैश में आकर वह भीतर गया। दबे कण्ठ से भर्त्सना की—ऊंच-नीच समझाया। बहुत बड़ा आदमी है मुंशी। हर किसीके घर नहीं जाता। हम उससे फायदा उठाएंगे। इस तरह परदे में रहना जंगली प्रथा है। आजकल की पढ़ी-लिखी स्त्रियां परदा नहीं करतीं। परदा करनेवाली स्त्रियां जाहिल होती हैं। यही राधेमोहन के उपदेश का सार था। परन्तु गोमती इस सारगर्भित भाषण से भी प्रभावित नहीं हुई। उसने कहा, 'बड़े आदमी हैं तो अपने घर के होंगे। हमें क्या? उनके सामने जाने की क्या ज़रूरत है?'

'मैं कहता हूं कि तुम एकदम जाहिल हो, गंवार।'

'खैर, जैसी हूं—वैसी ही तो रहूंगी।'

'लेकिन मैंने उससे कहा है कि तुम उसकी कविता पसन्द करती हो ।'

'मैं कविता-अविता क्या जानूं !'

'अरी मूर्खे, मैंने तो तेरी तारीफ ही की थी । अब तू यहां पर्दे में बैठी रहेगी तो मेरी भद्द न होगा ?'

'मैं पराये मर्द के सामने क्यों जाऊं ? भद्द होगी तो हो जाए ।'

'वह क्या बाघ है, तुझे खा जाएगा ?'

'बाघ हो या गीदड़ । मैं नहीं जाती, बस ।'

'कहीं मैं तुझे धुनकर न रख दूं ! सुनती नहीं है ?'

'मारो फिर । वे भी देख लें तुम्हारी बहादुरी ।'

'मैं कहता हूं—ज़रा कपड़े बदलकर आ जाओ । आजकल तो सब पढ़ी-लिखी स्त्रियां लोगों से मिलती-जुलती हैं । सभा-सोसाइटी में जाती हैं ।'

'जाती होंगी । मैं नहीं जाती ।'

'मैंने उससे तुम्हारी कितनी तारीफ की थी । सोचो तो कितनी किरकिरी होगी ?'

'अच्छी ज़बर्दस्ती है । मुझे तो उसके सामने आते शर्म लगती है ।'

'वह तो बहुत भला आदमी है । बड़े-बड़े लोग उससे मिलने आते हैं ।'

'होगा । मुझे तो वह कोई लफंगा-सा लगता है ।'

'मैं तेरे हाथ जोड़ता हूं । बस ज़रा देर को चली चल । वह आसमानी साड़ी पहन लेना । और बालों को ज़रा ठीक कर लेना ।'

गोमती चुप हो गई । पर गुस्से से उसके होंठ फूल रहे थे ।

कुछ रुककर राधेमोहन ने कहा, 'आती हो ?'

'मेरी जान मत खाओ । आते हैं, ज़रा कपड़े तो बदल लेने दो—अच्छी मुसीबत है । मुस्टंडों को खाना बनाकर खिलाओ फिर सामने आकर हाज़िरी भी दो ।'

राधेमोहन कृतकृत्य हो गया । वह अपनी सुन्दरी नवोढ़ा पत्नी की झांकी जुगनू को कराने के लिए आतुर हो रहा था । जब वह बाहर बैठक में आया तो जुगनू ने कहा, 'अच्छा, अब चलूंगा । भाभी साहिबा को बहुत-बहुत धन्यवाद देना ।'

'धन्यवाद अब आप ही दे-दिला लीजिए—वह आ रही है ।'

'अच्छी बात हैं'। हकीकत तो यह है, ऐसा अच्छा खाना मैंने बहुत दिन से नहीं खाया था। भई राधेमोहन, तुम हो बड़े खुशकिस्मत। बड़ी अच्छी बीवी पाई है।'

यही तो बात थी जिसे राधेमोहन सुनना चाहता था। उसने हंसकर कहा, 'अफसोस यही है कि मैं उसके योग्य नहीं हूं। असल में तो उसे किसी राजा-नवाब के घर जाना चाहिए था।'

इसी समय गोमती आधा घूंघट निकाले धीरे-धीरे वहां आई। जुगनू ने खड़े होकर कहा, 'नमस्ते भाभीजी, खाना तो आपने ऐसा खिलाया कि तबियत होती है अब मांगकर फिर निमन्त्रण लूं। बहुत दिन से ऐसा स्वादिष्ट खाना नहीं खाया था।' राधेमोहन ने बीच ही में उत्साहित होकर कहा, 'मूंग की दाल का हलुआ तो इनके जैसा कोई बना ही नहीं सकता।'

'वाकई लाजवाब था। भाभी, अब आप कब बुला रही हैं मुझे—हलुआ खाने को ?'

'जब चाहे आइए।' गोमती ने ज़रा शर्माते हुए मुस्कराकर कहा।

'अच्छी बात है। जब चाहूंगा तभी आ जाऊंगा। लेकिन भाई राधेमोहन, तुम तो जानते ही हो, मेरे पीछे यह म्युनिसिपैलिटी का बड़ा बवाल लगा है। पलक मारने की फ़ुर्सत नहीं मिलती।'

गोमती ने भी चुप बैठना ठीक नहीं समझा। उसने कहा, 'आप उन्हें नहीं लाए ?'

जुगनू ठहाका मारकर हंस दिया।

राधेमोहन ने तनिक रसिकता से कहा, 'अभी मुंशीजी का ब्याह कहां हुआ है ?'

गोमती को यह कुछ अजीब-सा लगा। इतनी उम्र तक कुंवारा रहना उसकी दृष्टि में अजीब-सी बात थी। परन्तु उसने कुछ जवाब नहीं दिया। तनिक मुस्कराकर रह गई। आधा-सा घूंघट, लाज से जड़ीभूत शरीर, अविकसित बुद्धि, अल्हड़-सा व्यवहार, गदराया हुआ उभारदार यौवन—यह सब देखकर जुगनू की वासना भड़क उठी। मूर्ख राधेमोहन की उपस्थिति उसे नगण्य-सी लगी। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, यह अरक्षित माल है और अनायास ही इसका गफ्फा बनाया जा सकता है। उसने प्यासी चितवनों से गोमती को देखा। एक

बार गोमती की नज़र मिली। और वह और भी लाज से सिकुड़ गई। जुगनू की वह नज़र उसे अच्छी नहीं लगी। परन्तु राधेमोहन का इधर ध्यान ही न था—उसने कहा, 'मुंशीजी, अब आप अपनी कोई कविता तो सुनाइए।'

'भाभीजी कहें तो सुना सकता हूं।' उसने फिर वैसी ही नज़रों से गोमती की ओर देखा। पर गोमती ने कोई जवाब नहीं दिया। वह नीची नज़र किए बैठी रही।

राधेमोहन ने कहा, 'अरे भई, ज़रा कह दो।'

गोमती का मन वहां से भागने को हो रहा था। वास्तव में वह एक असंस्कृत और एक शौकीन प्रकृति की स्त्री तो थी, पर उसका चरित्र निर्मल था। एक प्रकार से उसे भोली स्त्री कहा जा सकता था। निस्सन्देह परिस्थिति-वश ऐसी स्त्रियां आसान शिकार बन जाती हैं। परन्तु इस समय तक भी गोमती का मन विकाररहित था और आज जुगनू की नज़रें उसे असह्य और अप्रिय प्रतीत हो रही थीं। पति के अनुरोध पर भी उसने मुंह नहीं खोला। हकीकत यह थी कि कविता के सम्बन्ध में उसे कुछ भी अभिरुचि नहीं थी।

जुगनू ने कहा, 'अच्छा, तो मैं अब चला, भाभी मेरी कविता नहीं सुनना चाहतीं। है न यही बात ?'

राधेमोहन ने क्रुद्ध दृष्टि से पत्नी की ओर देखा, पति की वह नज़र देख-कर उसने कुण्ठित होकर आहिस्ता से कहा, 'सुनाइए'।

जुगनू ने बेहूदा-सी गज़ल पूरे हाव-भाव से पढ़ी। वह इस समय एक उच्छृंखल लोफर की भांति उत्तेजित हो रहा था। उसकी आंखों में वासना की आग भड़क रही थी। राधेमोहन की उपस्थिति की तनिक भी परवाह बिना किए गोमती को अभिप्रेत बनाकर उसने कुछ शेर ऐसे भद्दे इशारों के साथ पढ़े कि गोमती को गुस्सा आ गया। यद्यपि वह उन शेरों का—गज़ल का पूरा अर्थ नहीं समझ सकी थी, फिर भी ऐसी गज़लें उसके लिए सर्वथा ही अज्ञात और अपरिचित न थीं। अशिक्षित स्त्रियों में ऐसी इश्किया गज़लें प्रायः गाने का रिवाज है। ब्याह-शादियों में स्त्रियां निधड़क इससे भी अधिक नंगी गज़लें गाती हैं, जिनके बहुत कम भाव वे समझ पाती हैं। परन्तु पुरुष के मुंह से सम्पूर्ण वासना की उत्तेजना से भरपूर चेष्टाओंसहित ऐसे शेर सुनने का गोमती को यह प्रथम अवसर ही था। उन अटपटे शब्दों को कुछ समझ और कुछ न

समझकर परन्तु जुगनू की वासना और लिप्सा को पूर्ण रूप से समझकर गोमती को क्रोध हो आया।

परन्तु जुगनू को इसकी परवाह न थी। वह पूरी मस्ती से अपनी गज़ल प्रभावशाली लहजे में झूम-झूमकर पढ़ रहा था। और राधेमोहन खूब नाटकीय ढंग से प्रसन्नता और अपनी रसिकता प्रकट कर रहा था।

गज़ल समाप्त करके जुगनू ने कहा, 'शायद भाभी को पसन्द नहीं आई।'

राधेमोहन ने पत्नी की ओर देखते हुए कहा, 'वाह, वाह, बहुत अच्छी है आपकी कविता।' परन्तु जुगनू इस समय गोमती की उस खामोशी से ज़रा कुण्ठित हो रहा था, जो उसने अपने पति के छिछोरेपन और वाचालता के मुकाबिले में धारण की थी। यद्यपि वह जान गया था कि वह एक भोलीभाली मूर्ख स्त्री है, पर उसने देखा कि वह अपने पति से अधिक मूर्ख नहीं है। आत्म-चेतन की यत्किंचित् भावना उसमें है।

गोमती की खामोशी ने जुगनू को अप्रतिभ कर दिया। राधेमोहन ने भी अपनी पत्नी की नाराज़ी को भांप लिया। पर उसे देखा-अनदेखा कर वह हंसने और जुगनू की कविता की तारीफों के पुल बांधने लगा।

एकाएक गोमती ने दबे हुए क्रुद्ध स्वर में कहा, 'चुप भी रहो न, बिना बात इतना क्यों हंस रहे हो?'

राधेमोहन की हंसी और वाचालता एकदम गायब हो गई। उसने अपना सिर झुका लिया। और अपने होंठ इस प्रकार फुला लिए जैसे बच्चा डांट खाने पर फुला लेता है।

जुगनू ने एक बार छिपी नज़र से गोमती की ओर देखा, पर इस बार गोमती उस नज़र से एकदम क्रुद्ध होकर उठकर तेज़ी से घर के भीतर चली गई।

रोधेमोहन और जुगनू दोनों ही अप्रतिभ हो गए। दोनों ही एक दूसरे को देखने का साहस न कर सके। जुगनू अपनी झेंप मिटाने को योंही गुनगुनाने लगा। पर राधेमोहन पत्नी की इस हरकत पर अत्यन्त लज्जित-सा हो रहा था। इसी समय जुगनू यह कहकर चल खड़ा हुआ, 'अच्छा भई, अब मैं चला।' चलते-चलते उसने एक बार घर के भीतर फिर नज़र डाली, और पूरी बेहयाई के साथ ज़रा उच्च स्वर में कहा, 'नमस्ते भाभीजी,' और चल दिया।

३८

इस घटना के दूसरे ही दिन जुगनू की दावत लाला बुलाकीदास के यहां हुई। लाला बुलाकीदास दिल्ली के पुराने रईस और खानदानी जौहरी थे। दिल्ली की प्राचीन परम्पराएं और मर्यादाएं उनके घर में पालन होती थीं। दावत भी रईसी ठाठ की थी। जुगनू को संगमरमर की मेज़ पर चांदी के बर्तनों में तकल्लुफ की दावत दी जा रही थी। बीसियों किस्म के नमकीन, मिठाइयां अचार, मुरब्बे, चाट, सोंठ और पकवान थे। कई किस्म के रायते थे। लाला बुलाकीदास स्वयं खड़े होकर मेज़बानी कर रहे थे। वे बड़े प्रेम से, नम्रता से और मिठास से बारंबार प्रत्येक चीज़ को परसने, दुबारा थोड़ी और लेने का आग्रह कर रहे थे। बड़ी शाहाना दावत थी। ऐसी दावत जुगनू के जीवन में पहली ही थी! लाला बुलाकीदास की विनम्र भावना को देखकर जुगनू कुछ लज्जित-सा हो रहा था; वह कुछ घबरा भी रहा था। सच पूछा जाए तो उससे कुछ भी खाते-पीते न बन पड़ रहा था। थाल में कोई बयालीस कटोरियां थीं; छोटी-छोटी। सबमें भिन्न-भिन्न खाद्य-पदार्थ थे। चटनी, अचार, मुरब्बे से लेकर दालमोठ, रायता, साग-तरकारी तक। थाल इतना बड़ा था कि बिना खड़ा हुए किनारे तक हाथ पहुंचना कठिन था। जुगनू को यह पता ही न लगता था कि किस कटोरी में क्या है, और उसे कैसे खाया जा सकता है। लाला बुलाकीदास की उपस्थिति और बारंबार यह पूछना कि और क्या चीज़ मंगाई जाए, कौन चीज़ पसन्द है—उसे और भी घपले में डाल रहा था। वह चाहता था एकान्त। परन्तु यहां एकान्त कहां था। वह खा रहा था—भाग्य-भरोसे। सच पूछा जाए तो वह हास्यास्पद बन रहा था। कौन वस्तु कैसे खाई जाए, यह जानना उसके लिए असंभव था। अतः वह पूड़ी का टुकड़ा उठाकर कभी इस कटोरी में, और कभी उस कटोरी में डुबकी लगा मुंह में कौर रख लेता था। एक बार एक कौर में समूचा नीबू का अचार उसने मुंह में रख लिया। और उसे हलक में उतारते उसे नानी याद आ गई। दूसरे कौर में एक पूरा रसगुल्ला ही उसने पूड़ी में लपेट लिया। और तीसरी बार शिमले की एक समूची मिर्च। और चौथी बार बैंगन के भुर्ते को दही समझकर रबड़ी की कटोरी में डाल लिया। दावत चल रही थी, और आंखों में आंसू आ

रहे थे । मुंह में समूची अचार की मिर्च भरी थी, जिसे किसी तरह वह हलक से उतारने का भगीरथ प्रयत्न कर रहा था । लाला बुलाकीदास बारंबार पूछ रहे थे कि और क्या मंगाऊं और जुगनू को उनके लिए मुस्कराना भी पड़ रहा था । क्या किया जाए, दिल्ली की दावत थी।

राम-राम करके दावत खत्म हुई। और बहुत इसरार-हुज्जत के बाद जुगनू ने खाने से हाथ खींचा। बड़ी भारी मुहिम फतह हुई। हाथ धोकर वह बैठा तो लाला बुलाकीदास ने सिगरेट पेश की । और इसी समय श्रीमती बुलाकीदास कमरे में हंसती हुई आईं । उनके पीछे से महरा पानों से भरा डला लिए । जुगनू ने खड़े होकर उनकी अभ्यर्थना की । श्रीमतीजी ने पान देने का महरा को इशारा किया, और जुगनू से कहा, 'शायद खाना पसन्द नहीं आया ? कुछ खाया ही नहीं आपने !'

जुगनू क्या जवाब दे यही न समझ पा रहा था । वह केवल हाथ जोड़कर मुस्करा भर दिया, पर उसका रोम-रोम कह रहा था—कसम है झाड़ू-टोकरे की, कि ऐसी दावत उसकी सात पुश्त को भी कभी नहीं नसीब हुई थी ।

इस समय श्रीमतीजी का निखार मोतियों की आभा को मात कर रहा था । उनके व्यक्तित्व में न केवल सौन्दर्य और भरपूर यौवन ही का प्रसार था, एक ऐसी गरिमा, गांभीर्य और रुआब का भी उसमें मिश्रण था कि जुगनू को उनके सामने आंखें उठाने और बोलने की हिम्मत नहीं होती थी । उनकी आंखें बड़ी-बड़ी थीं । जिनमें से दया और बड़प्पन झांक रहा था । उन्होंने देखा, मुंशी कुछ झेंप रहा है, तथा बोल नहीं रहा । उन्होंने कहा, 'आपने आज यहां आकर बड़ी कृपा की । आप तो अकेले ही हैं, कभी-कभी आ जाया कीजिए । मैं आपसे एक काम में मदद लेना चाहती हूं ।'

'आज्ञा कीजिए ।'

'मैं अपना एक पुस्तकालय बना रही हूं । मैं चाहती हूं कि कुछ अच्छी-अच्छी पुस्तकें आप मेरे लिए छांट दें, और एक लिस्ट बना दें ।'

सम्भवत: श्रीमती बुलाकीदास जुगनू को कालिदास का अवतार समझ रही थीं । और जुगनू ने भी बड़ी शान से किन्तु नम्रतापूर्वक कहा, 'बड़ी खुशी से, किन्तु आप कैसी पुस्तकें पसन्द करती हैं ?'

'कविता, उपन्यास, साहित्य, इतिहास सभीमें मेरी रुचि है । मैं चाहती हूं

हमारे गर्ल्स स्कूल में एक बहुत उत्तम पुस्तकालय हो जाए।'

'यह तो आपके बहुत प्रशंसनीय विचार हैं।'

'मैं आपको एक और कष्ट देना चाहती हूं।'

'आज्ञा कीजिए।'

'इसी सोमवार को हमारे स्कूल का वार्षिकोत्सव है। लड़कियां एक अभिनय कर रही हैं। आप ही उसका सभापतित्व कीजिए। देखिए, इन्कार मत कीजिए।'

'मैं इस योग्य तो नहीं हूं। पर आपकी आज्ञा है तो पालन करना ही होगा।'

'बहुत-बहुत धन्यवाद। हम तो यह भी चाहते हैं कि कमेटी हमें कुछ सहायता भी दे। सब भार अकेले मेरे ही पर्स पर है। हमें सहायता मिलनी ही चाहिए। ये तो कुछ सुनते नहीं, आप ही कुछ कीजिए।'

'ज़रूर, ज़रूर। मुझसे जो बन पड़ेगा, अवश्य करूंगा। अब आज्ञा दीजिए। बहुत-से आवश्यक काम पड़े हैं।'

लाला बुलाकीदास उठ खड़े हुए। उन्होंने कहा, 'गाड़ी आपको छोड़ आएगी। मैं शायद आज न आ सकूं। ज़रा कल की मीटिंग का एजेण्डा देख लेना।'

'आप चिन्ता न करें लालाजी।' और वह शान से दोनों को नमस्कार करके गाड़ी में जा बैठा। गाड़ी में बैठकर उसने सन्तोष की सांस ली। नीबू के अचार की खटास अब भी उसके मुंह में आ भरी थी।

३९

डेरे पर लौटकर जुगनू ने देखा कि नवाब आरामकुर्सी पर दोनों टांग पसारे सिगरेट का धुआं उड़ा रहा है। उसके पास ही दूसरी कुर्सी पर एक और बुज़ुर्ग हैं। ये कोई नये ही आसामी हैं। जुगनू ने कभी उन्हें देखा नहीं है, मगर बैठे इस इत्मीनान से हैं जैसे यह इन्हींका घर हो।

दुबले-पतले आदमी, लम्बा कद, चुचका हुआ चेहरा, आंखों पर बड़े-बड़े तालों और मोटे फ्रेम का पुराना चश्मा, बेतरतीबी से चेहरे पर छितराई हुई खिचड़ी दाढ़ी, सिर पर पुराने फैशन के लम्बे बाल, उम्र पचास के पार। ढीला पायजामा, और चपकन। उंगलियों में तीन-चार चांदी की अंगूठियां। मुंह में ठूंसी हुई पान की

गिलौरी। और दो उंगलियों में नफासत से पकड़ी हुई सिगरेट।

जुगनू को देखते ही तपाक से खड़े हो गए मुस्कराकर। एक अजब अन्दाज़ से आदाबर्ज़ कहा। नवाब ने परिचय दिया। 'मेरे दोस्त हैं, मौलवी लियाकत-हुसेन, कल ही लखनऊ से आए हैं। आपसे मिलाने को ले आया। बहुत कमाल के शायर हैं। मर्सिया कहने में इस वक्त इनकी जोड़ का दूसरा नहीं है। गज़ल और रुबाई कहने में भी कमाल हासिल है। यों अरबी-फारसी में भी आलिम हैं।'

'लेकिन आपका एक अदना खादिम हूं। बहुत तारीफ सुन चुका हूं—नवाब साहब से। इज़ाजत हो तो अपना मतलब अर्ज़ करूं।'

जुगनू की जगह कोई समझदार आदमी होता तो कहता आलिम या शायर क्या कोई भांड़ मालूम होता है। पर जुगनू ने कहा, 'फर्माइए, क्या हुक्म है ?'

'अमा हुक्म या अर्ज़दाश्त जा कुछ है, वह मैं बताए देता हूं। परसों यहां आल इण्डिया मुशायरा है। दूर-दूर के शायर आए हैं। आप भी लखनऊ से उसी काम के लिए तशरीफ लाए हैं। अब सबकी ओर से आपको दावत देने आए हैं। मुशायरे की सदारत आप ही को करनी होगी।' नवाब ने बीच ही में अपने खास लहजे में कहा।

'लेकिन मैं तो अपने को इस काबिल नहीं समझता।'

'हज़रत बज़्मे-अदब की सदारत हर किसी नाकिस का काम नहीं। यह तो आप ही जैसे पहुंचे हुए औलिया के हिस्से की चीज़ है। हूं ऊं।' मौलाना ने मुस्कराकर एक अजब अंदाज़ से हूं ऊं कहा।

'मुझे औलिया कौन कहता है ?'

'खुदाए मैं कहता हूं। झूठ हो तो शैतान मुझे दोज़ख में ले जाए।'

'यह मुंशी, मंज़ूर कर लो। मौलाना की बात रख लो। ये तो मुझे सिफारिश के लिए ही पकड़ लाए हैं।'

'लेकिन मौलाना, मैं तो शायरी का अलिफ-बे भी नहीं जानता।'

'खुदा के लिए बनाइएगा नहीं, बन्दा भी लखनऊ का पानी पिए है। आप क्या उन डींग हांकनेवालों को तरजीह देते हैं, जिनकी अक्ल दरिया के गंदले पानी की तरह है, जो हमेशा नीचे की ओर ही बहता है, ऊपर उठकर ज़िन्दगी की बारीकियों की बात वे सोच ही नहीं सकते।'

जुगनू मौलाना की बताई हुई ज़िन्दगी की बारीकी की बातें कुछ भी नहीं

समझा। पर उसने कहा, 'आप ठीक फर्माते हैं मौलाना।'

'मेरे प्यारे,' मौलाना ने जुगनू के कन्धे पर हाथ रखते हुए मुरव्वाना लहजे में कहा, 'ज़िन्दगी एक पहाड़ है जिसपर बड़ी मुश्किल से धीरे-धीरे चढ़ा जाता है, मगर गिरने में चन्द मिनट ही लगते हैं। हूं ऊं !!' मौलाना ने कुछ इस अन्दाज़ से मुस्कराकर हूं ऊं कहा मानो कोई बड़ा भारी राज़ जाहिर कर दिया हो, 'देखो दोस्त, तुम्हारी उम्र ही अभी क्या है। भाई, यह 'तुम' कहने से नाराज़ न होना। अभी तुम मेरे लड़के की उम्र के हो। हां, मैं कह रहा था तुम्हारी उम्र में आदमी खुश रहता है। बड़ी-बड़ी उम्मीदों के कुलाबे बांधता है। वह हर आदमी से उम्मीद रखता है, हर चीज़ को आसान समझता है, लेकिन वह उन्हें कभी पा नहीं सकता ; सिर्फ एक चीज़ उसे ज़रूर ही मिलती है—मौत ! समझे भाईजान ! मंज़िलें दूरतर हो गईं, फासले कम से कम रह गए। हूं ऊं !' मौलाना ने एक गहरी सांस ली और बड़े-बड़े चश्मे के तालों से घूरकर जुगनू को देखा। जुगनू को कुछ भी नहीं सूझ पड़ रहा था कि क्या कहे।

उसने कहा, 'आपने तो मुझे डरा दिया, मौलाना।'

'क्या मौत से ? डर गए तुम मेरे नौजवान दोस्त ! लेकिन अभी मौत को तुम क्या जानो। मुझे देखो—तिल-तिल वह मुझे खा रही है। जब मैं तुम्हारी तरह जवान था, एक मिनट के लिए, अगर आज वही हो पाऊं तो कस्म खुदा की, मैं अपने को पहचानूं ही नहीं। देखो, मेरे काले घुंघराले बाल थे; ठीक वैसे जैसे तुम्हारे हैं। भरे हुए कल्ले थे, वे अब चुचक गए हैं। गालों पर झुर्रियां पड़ गईं। दांत टूट गए। ये सब मौत के खेल हैं। अमा, जैसे बिल्ली चूहे को मारने से पहले उसके साथ खेलती है, उसी तरह मौत भी अपने शिकार को खत्म करने से पहले उसके साथ खेल खेलती है। और इस तरह कदम-कदम वह नज़दीक आती जाती है। समझे मियां—खाना, पीना, सांस लेना, सोना, जागना सब कुछ मौत ही है। हूं ऊं !'

उन्होंने अपने बड़े-बड़े तालों के चश्मे में से घूरकर जुगनू को देखा, फिर कहा, 'अभी तुमपर जवानी का नशा छाया है, मुहब्बत की आंख-मिचौनी खेलने में बहुत मज़ा आता होगा। अमा, ये सब खेल मेरे खेले हुए हैं। लेकिन इसके बाद ? इसके बाद बस मौत ! वही मौत कि जिसकी गोद में जाकर कोई वापस नहीं लौटता। चार पैसे का मिट्टी का खिलौना यदि टूट जाता है तो उसके टूटे

टुकड़े भी संभालकर रखे जा सकते हैं, मगर मौत का शिकार बन चुकने के बाद इस जिस्म को नहीं रखा जा सकता। हूं ऊं !'

मौलाना घूर-घूरकर जुगनू को अपने चश्मे के तालों में से देखने लगे। जुगनू के मन पर इस समय इन सब मनहूस बातों से एक अवसाद-सा छा गया। उसने मन ही मन कहा, 'यह पाजी नवाब का बच्चा किस मनहूस मुर्दे को यहां उठा लाया। उसने नज़र उठाकर भी मौलाना को नहीं देखा, नीची नज़र से फर्श को ताकता रहा। इसी समय मौलाना ने यह शेर जड़ा, 'इनायत है नज़रे-तगाफुल भी उनकी। बहुत देखते हैं जो कम देखते हैं।' इतना कहकर मौलाना खिलखिलाकर हंस पड़े।

नवाब ने कहा, 'मौलाना साहब वल्लाह ! आप एक ही ज़िन्दादिल आदमी हैं। आपकी सोहबत गनीमत है। भई मुंशी, मौलाना के लिए कुछ मंगवाओ।'

'अभी लीजिए।'

मौलाना 'क्या ज़रूरत है, क्या ज़रूरत है' कहते ही रह गए, मगर गज़क, कबाब, और शराब, सोडा, बर्फ धीरे-धीरे सब समान मुहैया हो गया। लाला बुलाकीदास की उस रईसाना किन्तु वैष्णवी दावत में जो कसर रह गई थी, वह आधी रात के बाद तक भी पूरी होती रही। सबसे ज्यादा मौलाना ने पी और वाही-तबाही बकते हुए वहीं टें हो गए और नवाब ने भी फर्श पर पैर पसार दिए। समझिए तीन पापग्रह सातवें घर में आ जुड़े थे।

४०

गोमती और राधेमोहन का जोड़ा एक मज़ेदार चीज़ थी। उसे स्त्री-पुरुष न कहकर स्त्री-पुरुष की तस्वीर कहना ज़्यादा उपयुक्त होगा। राधेमोहन में ज़रा-सी एक भावुकता और यत्किंचित् कलात्मकता थी। इतने ही से वह पूरी तरह अपनी पत्नी का भक्त था। यह भक्ति दासता की सीमा को छू रही थी। उसके पति-प्रेम में अनेक प्रकार की बेहूदगियां थीं, जिनमें एक बेहूदगी उसकी नम्रता थी। गोमती एक अति साधारण बुद्धि की औरत थी। अभी उसकी उम्र भी कच्ची थी और बुद्धि भी। साधारणतया उसे सुन्दर कहा जा सकता

था। उसका शरीर भरा-भरा, चेहरा गोल, नाक-नक्श सलोने और सीना उभारदार था। स्वस्थता की चमक उसके गालों पर थी। यत्किंचित् मोटे होंठ और नाक के ज़रा फूले हुए नथने उसकी विलासी प्रकृति को व्यक्त करते थे—परन्तु उसमें न विचारों की उच्चता थी, न साहस। वह एक पिंजरे में बन्द पालतू कबूतरी थी। पिंजरे के बाहर भी एक संसार है इसका उसे ज्ञान न था। मर्द के नाम पर उसने केवल अपने पति को देखा था। पर उसके पति में मर्द का कोई लक्षण ही न था। न वह कठोर था न दृढ़। उसमें स्त्रियोचित लज्जा, कोमलता और प्रेम का बाहुल्य था। उम्र अभी उसकी भी कच्ची ही थी। स्त्री के नाम पर उसने भी अभी केवल गोमती ही को जाना-माना था। और वह उसमें इस कदर डूबा हुआ था, कि दुनिया में कोई और भी औरत है, इसे देखने की उसे फ़ुर्सत ही नहीं थी।

कल्पना उसके जीवन में बहुत थी। साहित्य में, कविता में, तो कल्पना बहुत काम देती है, पर जीवन में कल्पना का मूल्य कानी कौड़ी के बराबर भी नहीं होता। जीवन तो एक ठोस सत्य है। पर इस गम्भीर रहस्य को भला वह तरुण क्या जानता था! वह उच्च शिक्षित भी न था। यद्यपि उसने बी० ए० तक शिक्षा पाई थी पर यह कोरी शिक्षा ही थी, उससे उसके मन का कोई परिष्कार नहीं हुआ था। अतः न तो उसमें संसार में रहने की कोई योग्यता ही थी न अनुभव। इस प्रकार के दयनीय मूर्ख तरुण—जैसा राधेमोहन था—दुनिया में बहुत हैं। वे सब अपने जीवन में ठोकरें खाते और गिरते-पड़ते ही उम्र काटा करते हैं। उन्हें न जीवन का श्रेय प्राप्त होता है न उत्कर्ष। भले ही वे उच्च कोटि के शिक्षित या धनी हो जाएं।

जुगनू की उस दावत के बाद इन दोनों पति-पत्नी में एक गृहयुद्ध आरम्भ हो गया। राधेमोहन कहता था, 'तुमने तो उसके सामने अपनी मूर्खता का प्रदर्शन किया, मेरी बड़ी भद्द हुई। मैंने तुम्हारी उससे बड़ी-बड़ी तारीफें की थी। मुझे कितना शर्मिन्दा होना पड़ा।'

जवाब में गोमती कहती, 'बेवकूफ मैं नहीं, तुम हो। क्या जरूरत है कि औरत पराये मर्द के सामने आए, हंसी-ठिठोली करे। तुम्हारे वे दोस्त हैं, तुमने दावत दी, चलो ठीक हुआ, पर मैं भी उसकी हाज़िरी बजाऊं, इसकी क्या ज़रूरत है?'

'बहुत ज़रूरत है। आजकल के ज़माने में पढ़ी-लिखी औरतें परदे में नहीं रहतीं। सबसे मिलती, बात करती हैं। जो ऐसा नहीं करतीं वे सोशल नहीं कहलातीं। वे जाहिल होती हैं।'

'तो मैं ज़ाहिल ही अच्छी।'

'मेरे साथ रहकर तुम जाहिल नहीं रह सकतीं।'

'तो क्या मैं दुनिया के सामने नाचूं।'

'नाचना-गाना भी कला है। तुम्हें वह भी सीखना चाहिए। आजकल तो नाचना-गाना दहेज से भी बढ़कर ज़रूरा हो गया है। जो लड़की नाचना-गाना नहीं जानती उसका ब्याह नहीं होता।'

'खैर, तो अब मुझे ब्याह नहीं करना है। मेरा ब्याह हो चुका।'

'पर तुमको मेरी इज़्ज़त का ख्याल रखना ज़रूरी है।'

'पराये मर्दों के साथ तुम्हारी औरत बेहया बनकर हंसी-ठिठोली करे यही तुम्हारी इज़्ज़त है? कोई मर्द इस बात को पसन्द नहीं कर सकता।'

'इतनी बड़े घरों का औरतें हैं, सबसे मिलती हैं। सभा-सोसाइटी में जाती हैं--उनके आदमी मर्द नहीं हैं?'

'हां। नहीं हैं। सब नामर्द हैं।'

'तो तुम मुझे भा नामर्द ही समझती होगी?'

'तुम तो नामर्द हो ही।'

'क्या पिटना चाहती है?'

'औरत को पीटने से ही क्या तुम मर्द बन जाओगे?'

'कहता हूं, मुझे गुस्सा न दिला।'

'कहती हूं, ज़रा गुस्सा करो। मर्द नहीं तो मर्द की गैरत ही शायद तुममें पैदा हो जाए।'

राधेमोहन को जवाब नहीं सूझा। वह ज़ोर-ज़ोर से सांस लेते हुए और मुट्ठियां भींचे हुए तेज़ी से घर से बाहर निकल गया।

गोमती का घर बहुत छोटा था, एक छोटा-सा सोने का कमरा, जो दिन में बैठक का काम भी देता था, एक रसोईघर, और ज़रा-सा सहन। सहन में और किरायेदारों का भी हिस्सा था। वह चींटी की भांति अपनी घर-गिरस्ती में लगी रहती थी। घर की झाड़-बुहार, बर्तन साफ करना, कपड़े धोना, सीना,

पिरोना। वह इस कड़े परिश्रम की बचपन से अभ्यस्त थी। गुनगुनाती जाती थी और काम करती जाती थी। संगीत वह न जानती थी, न उसका उसे ज्ञान था। पर मन की नैसर्गिक तरंगों में वह चिड़ियों की चहक के समान चहकती रहती थी। सच पूछा जाए तो वह अपने आपसे अज्ञात थी, अपने स्त्रीत्व से भी और अपने यौवन की भूख से भी। फिर भी उसके जीवन में एक उत्सुकता का पुट था। वह प्रत्येक नई बात को चाव से देखती थी। बहुत कम उसे घर से बाहर निकलने के अवसर मिले थे। बहुत कम वह नये आदमियों के सम्पर्क में आई थी। खासकर गैर मर्दों में तो यह जुगनू ही पहला आदमी था जिसे धकेलकर उसका पति ज़बर्दस्ती अपनी पत्नी के अधिक निकट लाना चाहता था। जवाब में गोमती ने यद्यपि उसे अपनी नैसर्गिक विरोध-सामर्थ्य से परे धकेल दिया था, पर इस धकापेल में कहीं उसके स्त्रीत्व को जुगनू का पुरुष छू गया। उस स्पर्श को गोमती ने समझा जैसे कोई गन्दगी के छींटे उसकी उज्ज्वल साड़ी पर पड़ गए। इसीसे वह बहुत नाराज़ हो उठी। परन्तु उसकी नाराज़ी का कारण जो ये छींटे थे—उन्हें वह बार-बार देखने लगी, क्रोध से, क्षोभ से, विद्वेष से। और जब इसी प्रश्न को लेकर उसके पति से उसका वाद-विवाद हुआ तो वह खीझकर अपने विरोध-विद्रोह को पुष्ट कर उठी। इन सब कारणों से एक बात हुई कि उसकी चेतना में वे छींटे—अभिप्राय यह कि—उस परपुरुष की स्मृति अज्ञात ही में अंकित हो गई। पति के वाग्युद्ध में परास्त होकर घर से भाग जाने के बाद वह निर्द्वन्द्व रूप में जुगनू के सम्बन्ध में सोचने लगी। परन्तु उसका सोचना अब उन सब विरोधी बातों से सम्बन्धित न था, केवल जुगनू के पुरुष-व्यक्तित्व के सम्बन्ध में था। स्पष्ट ही उसके मानस-पटल पर अब तक एक ही पुरुष-मूर्ति थी—राधेमोहन की। और अब उसीके बराबर दूसरी मूर्ति आ खड़ी हुई, जुगनू की। अयाचित भाव से ही उसे दोनों की तुलना करनी पड़ी। उसकी एक ओर पति था, अस्थिर-चित्त, ढीला-ढाला, कोमल, स्त्रैण गुणों से युक्त, जो उसकी ज़रा-सी डांट खाकर उसके तलुए सहलाता था, व्यंग्य सुनकर हंस देता था। दूसरी ओर जुगनू, एक सुडौल, सुदृढ़ शरीर, संयत हास, प्यासी चितवन, विशाल वक्ष। पहली बार उसे भान हुआ कि वह पुरुष, जो स्त्री का आलम्बन है, उसका चरम रूप उसका पति नहीं है। उससे उत्कृष्ट और पुरुष भी हैं। उनमें एक यह मुंशी

है। कितनी मिठास थी उसकी हंसी में। कितना अच्छा लगता था उसका 'भाभी' कहना, कितनी प्यास थी उसकी चितवन में।

परन्तु, परन्तु, जैसे वह एकाएक चौंक उठी। वह मेरा कौन है? परपुरुष है, मैं क्यों उसकी ओर देखूं। मेरा आदमी तो वह है नहीं। नहीं, नहीं, उसके यहां आने की कोई ज़रूरत नहीं है। मेरा आदमी जैसा है, वैसा है; मुझे अन्य किसीकी आवश्यकता नहीं है।

यह पहला ही अवसर गोमती के जीवन में था, जबकि उसका नारीत्व और पत्नीत्व अपनी-अपनी रुचि और चाह पर उसके अन्तर में द्वन्द्व कर रहे थे। विचारणीय विषय ऐसे भी होते हैं, यह उसने आज से पहले समझा ही नहीं था। अन्तर्द्वन्द्व अन्ततः खत्म हुआ या नहीं, यह नहीं कहा जा सकता। पर उसने समझा कि खत्म हो गया। उसके पत्नीत्व ने नारीत्व को पछाड़ दिया। उसने मन ही मन निर्णय किया, वह मुंशी मेरा कौन है? क्यों मैं उसकी बात सोचूं? अब वह हमारे घर नहीं आने पाएगा। नहीं आने पाएगा।

इस प्रकार उसके पत्नीत्व ने उसके नारीत्व को परास्त तो कर दिया, पर परास्त नारीत्व ने विद्रोह करना आरम्भ कर दिया। घर के हर कोने में खाते-पीते, सोते, उठते-बैठते हर जगह उसका नारीत्व उंगली पकड़कर जुगनू को उसके सामने ला खड़ा करने लगा, और जुगनू हर बार मुस्कराकर 'नमस्ते भाभीजी' कहकर उसे परेशान करने लगा। कभी वही अश्लील नंगी गज़ल के टूटे-फूटे टुकड़े और उसके बाद वही हंसी-ठहाका, वही वज्र-वक्ष, वही सुडौल दांत, वही सलोनी मूर्ति। गोमती को घर का काम-धन्धा करना दूभर हो गया। सोना, उठना-बैठना कठिन हो गया। उसने देखा, वह परपुरुष उसके नारीत्व की कलाई कसकर पकड़े उसीके घर-आंगन में हंसता हुआ घूम रहा है। और यह सब देखकर उसका पति निर्लज्ज हास्य कर रहा है। गोमती का पत्नीत्व क्रुद्ध स्वर में कह रहा है, 'अरे नामर्द, कुछ तो शर्म कर। ज़रा मेरा हाथ थाम। मुझे सहारा दे।'

४१

'बज़्मे अदब' की सदारत जुगनू ने इस शान से की कि देखनेवाले भी दंग रह गए। भारत, पाकिस्तान और बर्मा तक के शायर इस मुशायरे में आए थे। एक से बढ़कर एक आलिम, प्रसिद्ध और बुज़ुर्ग। परन्तु सबके सिर पर सदारत की कुर्सी पर यह जाहिल भंगी का बच्चा बैठा था। और जब कोई शायर अपनी दाढ़ी सहलाता हुआ कविता-पाठ करने मंच पर आता, और अदब से 'जनाबे सदर' कहकर उसे सम्बोधित करता तो जुगनू ज़रा मुस्कराकर आहिस्ता से गर्दन टेढ़ी करके सिर हिला देता। हो सकता है कि आप इस बात पर विश्वास न करें। आप शायद सोच रहे हों कि ऊंची कुर्सियों पर बैठने के लिए ऊंची योग्यता दरकार है। परन्तु आपका यह सोचना बेकार है। ऊंची योग्यता का ऊंची कुर्सी से कोई रिश्ता नहीं है। आपमें चाहे जितनी ऊंची योग्यता हो, ऊंची कुर्सी आपको नहीं मिल सकती। ऊंची कुर्सी के लिए उंचा पद चाहिए, और ऊंचे पद के लिए ऊंची अवसरवादिता चाहिए। आप सब ऊंची कुर्सियों पर प्रायः गधों को बैठा देखेंगे। घोड़े सिर्फ बोझा खींचते हैं। गधे ऊंची कुर्सियों पर ऊंघते हैं। आज के सभ्य-शिष्ट समाज का यही दस्तूर है। कहते हैं कि रावण के दस सिरों के ऊपर एक गधे का सिर था। यही गधे का सिर सर्वत्र ऊपर रहता है। आप जिसे भाग्य कहते हैं, मैं उसे अवसर कहता हूं, आप कहते हैं भाग्य ने, मैं कहता हूं अवसर ने जुगनू को दिल्ली शहर की नामी-गिरामी चेअरमैनी की कुर्सी पर ला बिठाया। वहां वह लाखों नागरिकों के सिर पर पैर रखकर इतमीनान से बैठा अबाध शासन कर रहा था। हज़ारों छोटे-बड़े उसके द्वार पर हाज़िरी देते थे; सैकड़ों को वह पद, नौकरी, काम, रोज़गार-धन्धे देता था। और ये सब महिमामण्डित काम करते उसे अब एक साल होने आ रहा था, एक बार भी कभी किसीने उसकी योग्यता पर सन्देह नहीं किया, उसके नाम पर उंगली नहीं उठाई। तो दो घण्टे के लिए इस मुशायरे की सदारत की ऊंची कुर्सी पर बैठने की ज़िम्मेदारी निबाहना कौन बड़ी बात है। अरे साहब, दुनिया को आप खोलकर देखिए—अभी अंग्रेज़ी अमलदारी तक भारत में कितने राजा, महाराजा, नवाब थे। सब लाखों मनुष्य के सिर पर

लात रखकर ही तो ऊंची कुर्सियों पर बैठते थे। उनकी योग्यता उनका पद थी। बड़े से बड़े विद्वान, योग्य पुरुष उनके नौकर, उनके हुक्म के बन्दे थे। सेठों को, साहूकारों को देखिए। मालिक की योग्यता से किसीको क्या मतलब ! मालिक का पद ही काफी है। बस, वह सबसे बड़ा, सबसे श्रेष्ठ और सबसे ऊपर है। ऐसी ही यह पद की मर्यादा है। सो जुगनू भी एक पद पर आसीन था—ऊंची कुर्सी पर, सो उसके लिए सब जगह ऊंची कुर्सी तैयार थी। कहना चाहिए, जहां ऊंची कुर्सी पर बिठाने के लिए किसी योग्य पुरुष की ज़रूरत होती, वहां उसपर नज़र पहुंचना स्वाभाविक था। आज की हमारी स्वदेशी सरकार भी वज़ारत की ऊंची कुर्सियों पर ऐसे ही आदमियों को बिठाती है। चपरासी तक के लिए योग्यता का सर्टिफिकेट दरकार है। परन्तु मिनिस्टर को किसी योग्यता की ज़रूरत नहीं। समझ लीजिए पद ही सबसे बड़ी योग्यता है।

जुगनू को मान-सत्कार से मोटर से उतारकर ले जाया गया। भाषणों द्वारा उसका यशोगान किया गया, और फिर फूलमालाओं से उसे लाद दिया गया। सदारत की कुर्सी ग्रहण करते समय उसने बहुत-बहुत अपनी नालायकी का इज़हार किया। पर सबने इसे उसकी विनम्रता, शिष्टाचार ही समझा। उसकी अयोग्यता अस्वीकार कर दी गई और वह राजधानी का नामी-गिरामी आल इण्डिया मुशायरा धूमधाम से जुगनू की सदारत में समाप्त हुआ। समाप्ति पर धन्यवाद और कृतज्ञता के बोझ से लदा-फदा जब वह लौट रहा था तब वही मौलाना बड़ी गम्भीरता से बड़े-बड़े तालों के चश्मे से अदीबों को घूरते हुए जुगनू की बगल में बैठे थे, जिन्होंने पिछली रात उसके साथ शराबखोरी करके उसीके डेरे पर बदहोशी में रात काटी थी।

४२

शारदा ने एम०ए० में प्रथम स्थान लिया था। उसकी सखी-सहेलियों ने डाक्टर खन्ना को घेरकर एक पिकनिक का प्रस्ताव उपस्थित किया। लड़कियां उनके पीछे पड़ गईं, ओखला, कुतुब, कोटला फिरोजशाह, हुमायूं का मकबरा कहीं भी

चलकर डटकर खाया-पिया जाय, होहल्ला मचाया जाए, दिन भर सैर-सपाटा किया जाए। चैत के आखिरी दिन। कुछ गर्मी, कुछ सर्दी। खुले हुए दिन। धूप यद्यपि ज़रा तेज़ी पकड़ गई थी, पर अभी भी लोगों के मन में बीती हुई कड़ाके की सर्दी की याद थी। शारदा डा० खन्ना की इकलौती बेटी थी। सुशीला और आज्ञाकारिणी, बुद्धिमती और उच्चशिक्षिता। डाक्टर दुनिया में अपने धंधे के बाद यदि किसीको प्यार करते थे तो शारदा को। शारदा ने भी हंसकर सहेलियों का अनुमोदन किया। बस, पिकनिक जम गई। सब प्रबन्ध-भार रहा शारदा और उसकी सहेलियों पर। सहेलियां एक से बढ़कर एक नटखट। उमा, अरुणा, रजनी, शोभा, विद्या, कनक और बहुत-सी। स्थान चुना गया—हौज़खास। एक विस्मृत सम्राट के विस्मृत राजप्रासाद का खंडहर, जहां सैकड़ों वर्ष पूर्व अलाउद्दीन खिलजी ने भारत पर अबाध शासन किया था। खुशी की एक लहर छोकरियों के मन में समा गई। खूब विचार-विमर्श के बाद खूब बढ़िया-सा प्रोग्राम बनाया गया। शारदा अपनी सहेलियों के साथ तीन दिन सब सौदा-सुलफ खरीदने, सामान जुटाने, खानसामा, बावर्ची, नौकर-चाकरों की व्यवस्था करने में व्यस्त रही। प्रोग्राम बना—सब सामान और नौकर-चाकर सवेरे ही वहां पहुंच जाएंगे। सब लोग दस बजे पहुंचेंगे। फिर वहीं लंच और तीसरे पहर की चाय होगी। गाना-बजाना होगा, कविता-पाठ होगा और फिर चांदनी रात का लुत्फ लेकर थोड़ी देर इधर-उधर होहल्ला मचाकर दो घड़ी रात गए सब लोग घर लौटेंगे।

मुशायरे से घर लौटकर जुगनू को शारदा का निमंत्रण-पत्र मिला। निमन्त्रण-पत्र के एक कोने पर लिखा था, 'मुंशी, आना ज़रूर।' एक स्लिप डा० खन्ना की भी थी। डाक्टर ने लिखा था, 'मुंशी, तुम बड़े भुलक्कड़ हो। और इधर-उधर तुम्हें काम-काज भी बहुत रहता है। देखना, कहीं इस निमन्त्रण को भूल मत जाना। वरना शारदा तुम्हें कभी माफ न करेगी।'

निमन्त्रण-पत्र पाकर तथा डाक्टर खन्ना का पुर्जा पढ़कर जुगनू के मन में शारदा की याद फिर ताज़ा हो गई। उस दिन परशुराम की फटकार खाने के बाद जुगनू ने फिर उधर जाने का साहस नहीं किया था। उसे काम की व्यस्तता तो थी ही। यह भी भय था कि कहीं फिर वह रूखा-सूखा अध्यापक न भिड़ जाए। असल बात यह थी कि जुगनू परशुराम की सूरत से ही घबराता था।

अब तक जितने आदमियों से वह मिला था, उनमें से एक परशुराम ही ऐसा व्यक्ति था, जिसपर उसका रंग नहीं जमा था तथा जो उसे रंगा गीदड़ समझकर उसीके मुंह पर बेतुकी सुनाता था, इसीसे शारदा के प्रति अतीव आकर्षण होने पर भी इन दिनों वह उधर जाने का साहस न कर सका था। पर इस निमन्त्रण-पत्र ने जैसे अकस्मात् ही शारदा की अमल-धवल शुभ्र शरदिन्दु-सी मूर्ति उसके सामने ला खड़ी कर दी। वह बड़ी देर तक शारदा की हस्तलिखित उस अनुरोध-पंक्ति को देखता रहा।

४३

एक ज़माना था कि दिल्ली एक उजाड़-सा शहर था। आप यदि लालकिले से चांदनीचौक में एक दौड़ लगाएं और फतहपुरी पर आकर दम लें तो बस, समझिए आपने दिल्ली की परिक्रमा कर ली। बस, इतनी ही दिल्ली थी उन दिनों। गदर के बाद जो लालकिले की लाली गई तो दिल्ली की उदासी दिल्ली में छाई ही रही। पर वे दिन भी आए जब नई दिल्ली बसी। जार्ज पंचम का दरबार हुआ। दिल्ली को राजधानी बनाया गया। बरसों तक बड़े-बड़े यन्त्रों से पत्थरों पर खराद की गई। कौंसिल-भवन बना, सैक्रेटेरिएट बना, वाइसराय का घोंसला बना और धीरे-धीरे आज की दिल्ली मीलों में फैल गई। उसे बागों का और पार्कों का शहर कहें कि सड़कों का शहर, महलों का शहर या कि भाग-दौड़ का शहर। और आज तो वह अन्तर्राष्ट्रीय हलचलों का शहर बनता जा रहा है। विभिन्न देशों के नर-नारियों के जमाव ने उसमें एक ऐसी सार्वभौमिक आबोहवा को प्रवाहित किया है कि देखते ही बनता है।

हौज़खास कभी सुल्तान अलाउद्दीन के राजमहलों से जगमग रहता था। अब वे महल खण्डहर, तथा हौज़खास खेतों में परिणत हो चुका है। परन्तु अब वहां मनोरम पार्क, प्रशस्त हरे-भरे लान बना दिए गए हैं। वस्ती भी काफी बढ़ गई है। राजधानी के सैलानी लोगों की पिकनिक का वह एक बहुत ही मनोरम ठीया है।

पिकनिक की इस पार्टी में कोई बीस-पच्चीस स्त्री-पुरुष थे। पुरुष कम और

स्त्रियां अधिक। पुरुष लगभग सभी तरुण, एक डाक्टर खन्ना ही प्रौढ़ थे, और स्त्रियों में सब लड़कियां, शारदा की सहेलियां। परन्तु एक प्रौढ़ महिला भी थीं, डा० खन्ना की जोड़-तोड़ की—मिसेज़ डेविड। शारदा की वे अध्यापिका रह चुकी थीं। उम्र कोई चालीस साल। मोटी और ठिगनी। जात की आयरिश थीं। पर उर्दू बड़े मज़े में बोल लेती थीं। बहुत दिनों से दिल्ली में रहती थीं। इस समय वे बुलाकीदास गर्ल्स हायर सैकण्डरी स्कूल की प्रिंसिपल थीं। उनके पति कोई एक मदरासी फिरन्ते थे। उन्हें उन्होंने अपनी चढ़ती जवानी में छोड़-छाड़ दिया था। अब वे सिर्फ उनका नाम ही नाम ग्रहण कर रही थीं। बहुत मज़ेदार औरत थीं। लड़कियां उन्हें खूब बनाती थीं। चेहरा उनका गोलमटोल एक टमाटर के समान था। कभी-कभी साड़ी पहनती थीं जो उनपर खूब फबती थी। आज भी वे एक साड़ी में ही आई थीं। प्रसव-वेदना से वे जीवन में मुक्त रही थीं। इससे उनके चेहरे पर वात्सल्य-भाव के स्थान पर एक परेशान-सी कठोर गम्भीरता सदैव बनी रहती थी। बहुत ही कम उन्हें हंसते हुए देखा जाता था। औरतों में घूम-फिरकर चन्दा एकत्र करने में और फैंसी फेअर के जमाव करने में लासानी थीं। अपने जीवन में वे भारतीय और पाश्चात्य जीवन का कुछ मिला-जुला-सा संस्करण थीं। और वे बहुधा इस विषय पर बहस भी किया करती थीं। पर दृष्टिकोण उनका यही रहता था कि सब भारतीय ईसाई हो जाएं, और यूरोप की सभ्यता के पुजारी बनें।

दो-तीन लड़कियों ने उन्हें घेर रखा था, और वे उन्हें बना रही थीं और खिजा रही थीं। उन्हें बनाने और खिजाने में उन्हें लुत्फ आ रहा था। उमा को अपनी ओर घूरते और मुस्कराते देखकर उन्होंने कहा, 'तुम्हारी साड़ी का रंग बड़ा शोख है उमा, और जूते भी तुम्हारे बड़े भद्दे हैं।'

'अफसोस है मैडम, इनके पास न दूसरी साड़ी है, न जूते।' कुमुद ने नकली गम्भीरता से कहा।

'मैंने तुमसे नहीं कहा था कुमुद। बिला वजह तुम्हें बीच में नहीं बोलना चाहिए। एटीकेट सीखो।'

'मुझे अफसोस है मैडम, आप ठीक कहती हैं। लेकिन…।'

'लेकिन क्या? उमा एक एम० पी० की लड़की है, जो धनी भी है और इज़्ज़तदार भी। समझीं?'

'समझ गई मैडम ।'

मिसेज़ डेविड ने उमा की ओर नज़र उठाकर कहा, 'तुम क्या कहती हो उमा ?'

'जी, उन फूलों की बाबत मैं कहना चाहती हूं कि कितने सुन्दर हैं। मैं जब-जब उनकी तरफ देखती हूं, ऐसा मालूम होता है वे मुझे हिल-हिलकर इशारे से बुला रहे हैं।'

मिसेज़ डेविड इस जवाब से ज़रा नाराज़ होकर कुछ कहना ही चाह रही थीं कि मालती ने आगे बढ़कर कहा, 'मैडम, ऐसी हालत में इन्हें उन फूलों के बीच में जाकर डान्स करना चाहिए। हम लोग तालियां बजाकर इनका अभिनन्दन करने पर आमादा हैं।'

सब लड़कियां खिलखिलाकर हंस पड़ीं। मिसेज़ डेविड 'यू नॉटी गर्ल्स' कहकर वहां से चल दीं। परन्तु शारदा की एक बंगाली सहेली ने उन्हें रोककर कहा, 'मैडम, मैं आपसे कुछ मश्विरा लेना चाहती हूं, अपनी हैल्थ के सम्बन्ध में। मैं भद्दी होती जा रही हूं, आप देखती हैं न।'

इस बंगालिन लड़की का नाम नीलम था। उसे घूर-घूरकर देखते हुए मैडम ने कहा, 'बहुत खराब बात है। तीसरे पहर रोज़ घूमो, और हफ्ते में एक परगेटिव लो। समझती हो ना, रात को सूप और टोस्ट, बस।'

वास्तव में नीलम कोई मोटी लड़की न थी। उसकी अपेक्षा तो मिसेज़ डेविड एकदम ढोलक बनी हुई थीं। पर मन की हंसी होंठों पर रोककर नीलम ने कहा, 'यस मैडम, पर हम बंगाली लोग सरसों का तेल बहुत खाते हैं, यह क्या नुकसानदेह नहीं है ?'

'ओह, वैरी बैड। सरसों का तेल हाज़मा खराब करता है।'

'आप ठीक कहती हैं। लेकिन मैडम, मेरा ख्याल है यह कम्प्लेक्शन के लिए भी शायद खराब चीज़ है।'

'ओह, बहुत खराब, लेकिन रात को जल्दी सोना, और सोने के पहले चेहरे पर कोल्ड क्रीम लगाना कभी न भूलो।'

'मैं हमेशा याद रखूंगी मैडम। बहुत-बहुत धन्यवाद।' नीलिमा कठिनाई से आती अपनी हंसी रोकती हुई चली गई। इसी समय मालती ने आगे बढ़कर कहा, 'डायन' अपने साज-सिंगार में ही अपना भद्दापन दिखाना चाहती है। मैडम,

क्या यह खराब बात नहीं ?'

'कौन बात ?'

'जी यही, बंगालिनों का साड़ी पहनने का ढंग। बाईं तरफ उसमें एक फालतू-सी सिकुड़न पैदा हो जाती है। आपने देखा न मैडम !'

'लेकिन साड़ी पहनने का बंगाली ढंग अच्छा होता है।'

'जी, खाक अच्छा होता है। क्यों रजनी, तेरी क्या राय है ?'

'अच्छा, तो तुम अब मेरी सलवार पर फब्तियां कसनेवाली हो !' रजनी ने तिनककर कहा।

'अख्खा, तो तुम्हारी सलवार में क्या सुरखाब के पर लगे हैं ?'

'लड़ो मत, लड़ो मत।' कहती हुई मिसेज़ डेविड और भी गम्भीर हो गईं।

इसी समय डाक्टर खन्ना हंसते हुए जुगनू के हाथ में हाथ दिए आए और कहने लगे, 'आप अच्छी तो हैं मैडम, बाद मुद्दत देखा आपको।'

'तो आपकी बला से। डाक्टर जो ठहरे आप, जिन मरीज़ों से आपको फीस मिलेगी उन्हींके मिज़ाज पर तो आप हथेली लगाएंगे।'

डाक्टर को आते देख सब लड़कियां फुर्र हो गईं।

डाक्टर खन्ना ने कहा, 'माई गॉड, मैं तो आपकी इस कदर नाराज़गी बर्दाश्त नहीं कर सकता।'

'शुक्र है खुदा का, यह बात तो सुनने को मिली।' फिर उन्होंने जुगनू की ओर घूमकर कहा, 'आप···आप ही शायद······।'

'ओह, इनसे परिचय कराना तो मैं भूल ही गया। ये मेरे दोस्त मुंशी जगन-परसाद हैं। म्युनिसिपैलिटी के वाइस-चेअरमैन।'

'हां, हां, आपकी तो इस वक्त दिल्ली में धूम मची है। इसी सोमवार को तो आप आ रहे हैं हमारे स्कूल के जल्से को रौनक देने।'

'मुझे याद है मैडम।'

'तो डाक्टर खन्ना, आप भी भूल न जाना। शारदा का एक ओरियण्टल डान्स होगा। मैं उससे वादा करा चुकी हूं।'

'तो आप तो उसकी पुरानी उस्ताद हैं, आपसे नाहीं नहीं कर सकती।'

'बड़ी अच्छी लड़की है, अब इसकी शादी कर डालिए।'

'बस, इसी फिक्र में हूं।'

४४

शारदा ने बहुत ही सादा लिबास धारण किया था। सफेद सिल्क की सलवार और कमीज़ और उसपर सफेद ही दुपट्टा। वह प्रत्यक्ष ही शरद ऋतु की देवी बन रही थी। इधर तीन-चार मास से जुगनू ने उसे देखा नहीं था— आज जो देखा तो जैसे उसकी सम्पूर्ण चेतना को शारदा की वह मूर्ति आहत कर गई। उसे आज शारदा में बहुत परिवर्तन नज़र आ रहे थे। उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे एकाएक इन्हीं तीन-चार महीनों में उसकी जवानी अधिक उभर आई है। वह दूर ही दूर से उसे ललचाई नज़रों से देख रहा था। वह इस जुगत में था कि एकान्त में उससे दो बात करे। एक कीमती फाउण्टेन पैन भी वह उसके लिए खरीद लाया था। उसे भी वह एकान्त में ही उपहारस्वरूप देना चाहता था, यद्यपि उसकी यह अभिलाषा बहुत ही भौंडी थी। परन्तु उसे जिस बात का भय था, वही हुई। सामने ही उसकी नज़र परशुराम पर पड़ी। वह एक बड़े से पत्थर का सहारा लिए लान पर लेटा हुआ कोई पुस्तक पढ़ रहा था। जुगनू उसकी नज़र बचाकर खिसक जाना चाहता था, परन्तु परशुराम ने उसे देख लिया। उसने पुकारा, 'इधर ही चले आइए मुंशीजी, यह बहुत अच्छी जगह है।' हाथ की सिगरेट फेंककर जुगनू को उधर जाना पड़ा। यथा-साध्य मित्रता के भाव प्रकट करने के लिए हंसते हुए उसने कहा, 'नमस्कार मास्टर साहब। यह क्या, आप सबसे अलग अपनी दुनिया बसाए यहां पड़े हैं। कहिए मिज़ाज कैसे हैं?'

'मिज़ाज अच्छे हैं। आप अपनी कहिए, आजकल तो फसल के दिन हैं। है न?'

'कैसी फसल?' जुगनू ने पूछा। 'अजी, चांदी की,' परशुराम ने हंसते हुए कहा। 'लेकिन मैं तो आपका मतलब बिलकुल न समझा।' जुगनू ने कहा। 'तो जाने दीजिए। यह कहिए, पसन्द आई आपको यह जगह?' परशुराम ने कहा।

'अच्छी जगह है साहब, बहुत अच्छी। मैं तो हैरान हूं। देखिए किस कदर मोटी-मोटी दीवारें, महराब, पुराने ज़माने के लोगों की यादगार हैं। यहां आते ही पुरानी दुनिया की याद आ जाती है। पुराने बादशाह किस तरह रहते होंगे, इन बातों पर दिमाग दौड़ने लगता है।'

'तो देखिए, और दिमाग दौड़ाइए। कितने भद्दे होंगे ये मनहूस महलात। इतनी मोटी-मोटी दीवारें, बेतुके महराब, भोंड़े गुम्बज और इनके साये में कितने जुल्म, कत्ल और बलात्कार हुए होंगे। कौन जाने !'

'लेकिन साहब, आजकल के लोग ऐसे महलात नहीं बना सकते।'

'कैसे बना सकते हैं ! आजकल जब बिजली के प्रकाश से दुनिया जगमग कर रही है, तो कौन मिट्टी का दिया जलाएगा। पर बहुत लोग पुराणपन्थी होते हैं। वे हर पुरानी चीज़ में एक विशेषता देखते हैं। और समझते हैं, ऐसी चीज़ें आज नहीं बन सकतीं। आप भी शायद वैसे ही विचार रखते हैं।'

'देखता हूं, आप इतिहास के अच्छे जानकार हैं।'

'जी, मैंने इतिहास ही में थीसिस लिखा था। खासकर दिल्ली के पुराने इतिहास में मेरी खास दिलचस्पी है।'

'यह क्यों भला ?'

'दिल्ली के समान रहस्यों से परिपूर्ण, राजनैतिक ताने-बाने का पेचीदा पुराना शहर और कौन होगा ? गुलामों, पठानों, खिलजियों, सैयदों और मुगलों के कितने उतार-चढ़ाव दिल्ली ने देखे। कितने कत्लेआम यहां हुए। कितनी बार दिल्ली बसी और उजड़ी। कितनी कड़वी-मीठी यादगारें यहां सो रही हैं। कितने ऐतिहासिक तथ्य यहां ज़मींदोज हैं। इसीसे।' कुछ रुककर परशुराम ने जुगनू की ओर देखा, फिर कहा, 'आज ज़माना बदल गया, अंग्रेज़ों ने नई दिल्ली बसाई। इसे नई दुनिया ही कहा जा सकता है। पर पुरानी दिल्ली में अब भी मुगल-प्रभाव बना हुआ है। वहां के पुराने रईसों के रहन-सहन, चाल-चलन, बातचीत सभीमें मुगल-प्रभाव है। यहां तक कि सोचने-विचारने में भी।'

'परन्तु आप यह कैसे कह सकते हैं ! आज की पुरानी दिल्ली भी नये रंग में रंग गई है।'

'केवल बाहर ही से। आप अपनी ही बात ले लीजिए। इन बैडोल खंडहरों पर आप मोहित हैं। आपका ख्याल है, पुराने ज़माने के इन महलात का मुकाबिला आज का स्थापत्य नहीं कर सकता। यह क्या इस बात का प्रमाण नहीं है कि आपके खून में मुगल-प्रभाव कायम है ? और आप दिल्ली की हर पुरानी चीज़ को आज भी प्रत्येक उत्तम वस्तु की अपेक्षा प्रशंसा की नज़र से देखते हैं।'

'परन्तु यह क्या मेरा दोष है ?'

'आपका इसमें क्या दोष है ! यहां के वातावरण में विगत युग की बू-बास भरी हुई है। भूले हुए ज़माने की टूटी-फूटी स्मृतियां अज्ञात भाव से ही हमारी चेतना को प्रभावित करती रही हैं। और ऐसे प्रत्येक आदमी के मन में, जिसमें अपनी सूझबूझ की कमी है, विस्मृतियां अपना घर किए बैठी हैं। ऐसे लोगों में न तो इतनी विवेक-बुद्धि है कि वे वस्तु का तुलनात्मक अध्ययन करके उसका सही मूल्यांकन कर सकें, न ही वे नये युग के वैज्ञानिक विकास को कुछ समझते हैं। बस, वे पुराणपंथी बन जाते हैं।'

जुगनू के मुंह पर यह एक करारा तमाचा था, पर उसमें इस तथ्य को भी समझने की योग्यता न थी। उसने कुछ शंकित-से चित्त से कहा, 'आप शायद ठीक कहते हैं। परन्तु नई दिल्ली के विषय में आपके क्या विचार हैं?'

'वह तो गुलामों का पिंजरापोल है, या कहना चाहिए कि एक शानदार चिड़ियाघर है। जो जानवर जिस खसलत का देखा, उसके लिए उसीकी सुख-सुविधाओं और रहन-सहन के उपयुक्त पिंजरा बनवा दिया।'

'लेकिन इतनी बड़ी-बड़ी इमारतें, बड़े-बड़े शानदार महल, बैंक, इन्स्टी-ट्यूशन ?'

'सब लिफाफा है। दुनिया की नज़रों से यह छिपाने के लिए कि हम भूखे, नंगे और कमज़ोर हैं। जनता टैक्सों के असह्य भार से दबी जा रही है। न उसे ठीक अन्न मिलता है, न जल। सब चीज़ों का अभाव, सब बातों की अव्यवस्था। यह आज की दिल्ली शहर नहीं है, आदमियों का जंगल है। छोटे से बड़े तक प्रत्येक को अपनी असुविधाओं की शिकायत है। परन्तु हमारी स्वदेशी सरकार विदेशी मेहमानों की नज़रों में छोटा नहीं बनना चाहती। वह शहर के लोगों की भूख और तकलीफों पर परदा डालकर इन इमारतों—बैंक-बिल्डिगों और चमचमाती सड़कों की शान दिखाकर उनपर अपना रुआब डालना चाहती है।'

'आपके कहने का मतलब शायद यह है कि नई दिल्ली में भारत के दर्शन नहीं होते ?'

'कहां होते हैं ? कहीं दीख पड़ी आपको वहां दरिद्रता की कोई झलक, आधे पेट भोजन करनेवाले, फटे कपड़ों से अपनी शर्म ढकनेवाले, जिनसे यह समूचा भारतवर्ष पटा पड़ा है ? वहां तो आप शानदार दूकानें देखेंगे—विदेशी शृंगार और सजावट के सामानों से भरी हुई। एक से बढ़कर एक फैशनपरस्त तितलियों-सी

माडर्न रमणियां अपने कपड़ों से फट पड़नेवाले यौवन की बहार दिखाती हुई और टाई फरफराते अफसर लोग और उनकी मोटरों की कभी न समाप्त होने-वाली कतारें। आप जानते हैं ये सब क्या हैं ?'

'आप ही बताइए।'

'विदेशियों की आंखों को भूखे और परेशान भारत की झूठी शान और नकली ऐश्वर्य दिखाने का ढोंग। और भारतवासियों की आर्थिक, मानसिक, राजनैतिक पूर्णता का प्रचार करने का हथकण्डा। इसके अतिरिक्त एक बात और।'

'वह क्या ?'

'कमअक्ल, रूप के दीवाने, नौजवान लड़कियों के शिकारी नौजवानों के लिए नई दिल्ली एक ऐसी शिकारगाह है जहां ढेर पालिश्ड लड़कियां आसानी से मिल जाती हैं।'

जुगनू ने हंसने की चेष्टा की। वह अपनी रसिकता प्रकट करना चाहता था, परन्तु परशुराम के तेवर देखकर ठंडा पड़ गया। परशुराम ने अपनी बात आगे बढ़ाते हुए कहा, 'आपने एक बात पर विचार किया ?'

'कौन बात ?'

'नई दिल्ली में दो नई जातियों का निर्माण हो रहा है।'

'ये दो नई जातियां कौन-कौन-सी हैं।'

'एक अफसर की जाति, दूसरी क्लर्क की। दोनों ही पतलून पहनते हैं; अंग्रेज़ी बोलते हैं और अंग्रेजी ढंग से रहना पसन्द करते हैं। सिर्फ दोनों में अंतर इतना ही है कि एक को तनखाह अधिक मिलती है और दूसरे को कम। हैं दोनों ही नौकर। पर अधिक तनखाह पानेवाला कम तनखाह पानेवाले को अछूत समझता है। वह उसके पास उठना-बैठना, खाना-पीना पसन्द नहीं करता है। न बेचारा क्लर्क अफसर के सामने कुर्सी पर बैठ सकता है, न सिगरेट पी सकता है। बिलकुल उसकी वही दशा है जो कभी सुल्तानी ज़माने में हिन्दुओं की थी, कि न घोड़े पर चढ़ सकते थे न अच्छे कपड़े पहन सकते थे। सरकारी मकानों में भी भेद-भाव प्रकट है। अफसरों के शानदार बंगले हैं। पर बेचारे इन क्लर्कों के लिए क्वार्टर, यानी छोटे-छोटे घोंसले, जहां वे लस्टम-पस्टम अपनी बाबूगिरी की ज़िन्दगी घसीटते हुए जीवन के अन्तिम ध्येय पचपन साल तक चलते ही चले

जाते हैं। बशर्ते भूख और अभाव उन्हें इससे पूर्व ही मौत के सुपुर्द न कर दें।'

जुगनू अभिभूत-सा होकर परशुराम की बातें सुन रहा था। ये बातें उन बातों से भिन्न प्रकार की थीं, जिन्हें वह अपने दोस्त नवाब या शोभाराम से सुना करता था। उसने कभी तस्वीर के इस रुख पर ध्यान भी नहीं दिया था। और अब परशुराम की बातें उसके दिल पर हथौड़े की चोटें कर रही थीं।

परशुराम ने फिर कहा, 'जाने दीजिए नई दिल्ली को। आप तो इस वक्त पुरानी दिल्ली के प्रमुख नगरपिता हैं। क्या आपने नहीं देखा कि रात को दो लाख नर-नारी पटरियों और सड़कों पर सोते हैं? जिनका न घरबार है न ठिकाना। गर्मी में तो खैर जो जहां पड़ जाए गनीमत है, पर सर्दी और बरसात में इनपर कैसी बीतती होगी, क्या आपने इसके विषय में सोचा?'

'मेरे सामने तो अभी ऐसी कोई शिकायत नहीं आई।'

'अर्थात् आप इस बात से बिलकुल बेखबर हैं कि नगर में कितने लोग बेघरबार हैं?'

'हो सकता है काफी हों, पर सबको मकान दिए कहां से जा सकते हैं साहब! आपको यह तो मालूम ही है कि पार्टीशन के बाद शरणार्थी लोग बुरी तरह दिल्ली में भर गए हैं।'

'तो आप उन्हें दिल्ली से निकाल बाहर करने की चिन्ता में हैं?'

'नहीं-नहीं, धीरे-धीरे सभी बन्दोबस्त होगा।'

'परन्तु मैं उन शरणार्थियों की बात नहीं कहता जो पटरियों पर अपने-अपने घोंसले बनाकर पुरुषार्थी बन गए हैं। मैं तो उन मज़दूरों और भिखारियों की बात कहता हूं जो दिल्ली में ही मुद्दत से रहते हैं, और जिनके पास खड़े होने का भी ठिकाना नहीं है।'

'परन्तु नई दिल्ली में तो आपको शायद ये सब दृश्य देखने को नहीं मिल सकेंगे।'

'इसीसे मैं नई दिल्ली से घृणा करता हूं। वहां गरीबों को रहने की कोई गुंजाइश ही नहीं है। सब विदेशी प्रभाव—कुछ मुगल हरम की शान-शौकत और कुछ अंग्रेज़ियत की तड़क-भड़क। यद्यपि वहां के सब क्लर्क अफसरों के गुलाम हैं, पर कहलाते हैं साहब लोग ही। साहबों की भांति वे रहते, खाते-पीते हैं। सिर्फ रंग से लाचार हैं। जब ये काले साहब लोग नई दिल्ली के सार्वजनिक

स्थानों पर अंग्रेजी में बातचीत करते नज़र आते हैं, तब यह स्पष्ट हो जाता है कि अभी नई दिल्ली का भारतीयकरण होने में देर है।'

'आपका मतलब यह है कि नई दिल्ली भारत का शहर ही नहीं है ?'

'मेरा मतलब यह है कि बृहत्तर भारत से इसकी तनिक भी सांस्कृतिक समता नहीं है।'

ये बातें हो ही रही थीं कि लंच तैयार हो गया। सूचना पाकर सब लोग लान पर जा बैठे। भारतीय-अभारतीय सभी प्रकार के खाद्य-पदार्थ थे। दिल्ली की दालमोठ और सोहन हलुआ, खस्ता कचौड़ी और पंजाबी छोले, पिस्ता-बादाम की लौज, स्पंज, रसगुल्ले, पेस्ट्री, सैण्डविच, पुडिंग, दहीबड़ा।

खूब हंसी-दिल्लगी, कहकहे-ठहाकों के बीच लंच खत्म हुआ। लंच के बाद पान-सिगरेट की बारी आई। फिर निमन्त्रित लोग अलग-अलग टुकड़ियों में होकर कोई छांह में, कोई लान पर, कोई बराण्डे में, कोई भग्न मण्डप में बैठकर गपशप, ताश और सिगरेट का आनन्द लेने लगे। नौकर लोग उन्हें—जो जहां था वहीं—गर्म काफी पहुंचा रहे थे।

४५

लड़कियों की म्यूज़िक जमात बैठी। शतरंजी बिछाकर इसराज, सितार, तबला, हारमोनियम, वायलिन, बांसुरी ले-लेकर एक-एक लड़की बैठ गई। उमा ने सितार रानों में दबाकर उसपर चोटी देना आरम्भ कर दिया। मालती पैरों में घुंघरू बांधकर बैठे ही बैठे छमाका देने लगी। सितार और इसराज के स्वरों से मिलकर वायलिन सिसकारियां भरने लगी। सब सहेलियों के आग्रह से शारदा ने खम्माच की एक ठुमरी उठाई। एक समा बंध गया। बांकी भौंहें, बड़ी-बड़ी आंखें, अनावृत भुज-मृणाल, नवीन केले-सा रंग, चंपे की कली के समान उंगलियां, सितार के तारों पर घुमेर-सा करती हुई। चमेली के फूलों से लदी हुई लता के समान शारदा की वह छवि बहुतों के मन में घर कर गई। सबने ताली बजाकर उसका अभिनन्दन किया। केवल जुगनू का यह सब देखकर कण्ठ सूख गया। वह भीड़ में पीछे खड़ा होकर उस सुधा

को पीता रहा। उद्दीप्त वासना का एक ज्वार उसे डुबो रहा था—वह तप रहा था काम-ज्वाला की भट्टी में। उद्वेग का झंझावात जैसे उसे झकझोर रहा था। लोग कहते हैं—यही प्रेम है। यही प्रेम का उत्कट रूप है। परन्तु प्रेम नहीं, यह काम था; कोरा काम।

प्रेम क्या है, इसे बहुत कम आदमी जानते हैं। मन में आत्मा को विभोर कर देनेवाली कुछ भावनाएं-सी उठती हैं। वह प्रेम है। प्रेमानुभूति के कारण मनुष्य भौतिक जीवन से बहुत पृथक् हो जाता है। मैं स्वीकार करूंगा कि शरीर-विकास का इतिहास काम-विकास का क्रमशः प्रकटीकरण है। बच्चे काम-विकास से रहित होते हैं, यह उनपर दैवी अनुकम्पा है। क्योंकि उनके नन्हे कोमल हृदय और कोमल अंग काम के प्रचण्ड वेग को सहन ही नहीं कर सकते। बच्चों के अवयव यों अत्यन्त उत्तेजनापूर्ण होते हैं। उनका कोई भी अंग आसानी से उत्तेजित किया जा सकता है। इसीसे बड़े आदमियों की अपेक्षा बच्चों की इन्द्रियां अधिक उत्तेजित हो जाती हैं। बड़ी उम्र में समझदारी के साथ कामवासना को छिपाने की प्रवृत्ति भी बढ़ जाती है। पर बच्चों को इसकी परवाह नहीं होती। निस्संदेह उसमें स्वतः काम-भावना मौजूद रहती है। लैंगिक आकर्षण भी होता है। और चाहे भी जिस उम्र का छोटा बच्चा हो वह भिन्नलिंगी के प्रति आकर्षित होता है। पर बच्चे भोले और सरल होते हैं। वे भिन्नलिंगी होने पर परस्पर प्रगाढ़ मित्र बन जाते हैं। परन्तु यह नहीं कहा जा सकता कि वे सर्वत्र निर्दोष रहते हैं। वास्तव में भिन्नलिंगी बालकों का सम्पर्क आग से खेलना ही है।

प्रेम की कोमल अनुभूति बालक के हृदय में सबसे अधिक होती है। उसीपर बालक का जीवन अग्रसर होता है। ज्यों-ज्यों आयु बढ़ती है उस अनुभूति में मनोभावनाओं का मिश्रण होता जाता है।

सब बच्चों को सभ्य जीवन में पलने का सुअवसर नहीं मिलता। कुछ बच्चे पशुओं के समान जीवन व्यतीत करनेवाले दुराचारी, चरित्रहीन, दुर्व्यसनी और शराबी लोगों के सम्पर्क में जीवन व्यतीत करते हैं। या वे उन कस्बों और गांवों में पलते हैं जो नीच वातावरण से परिपूर्ण हैं। वहां से बच्चे अपनी तीव्र ग्राहक-शक्तियों के कारण, ज्यों-ज्यों वे बड़े होते जाते हैं, बुराइयों को ग्रहण करते जाते हैं, प्रेमानुभूति में मनोवासना उनका माध्यम होती है। एक बात और है,

बचपन ही से बच्चों को भिन्नलैंगिकता का अभ्यास कराया जाता है। लड़के और लड़कियों के रहन-सहन, वस्त्र-विन्यास सब पृथक्-पृथक् होते हैं। लड़के प्राय: साहसी और लड़कियां चंचल होती हैं। दोनों मोहक खेल खेलते हैं। इसका एक कारण यह है कि काम-चेष्टाएं बच्चों से छिपाई जाती हैं, पर वे छिपी नहीं रहतीं, और उनके मन में उनके प्रति कौतूहल जागरित होता रहता है, जो धीरे-धीरे उनकी मनोभावना में मिल जाता है—यही काम-विकास का प्रथम मार्ग है। काम-सम्बन्धी प्रत्येक वस्तु उनसे यत्नपूर्वक छिपाई जाती है, इससे उनकी उत्सुकता और बढ़ जाती है। इस प्रकार कामरहित प्रेमभावनाएं आगे चलकर यौवनोदय के साथ ही कामपूरित हो जाती हैं।

माता बच्चों को न केवल आराम पहुंचाती है, वह उनका भौतिक रूप से पालन-पोषण भी करती है। वह भोजन कराती है, शरीर साफ करती है, इन्द्रियों को भी साफ रखती है। इसीसे माता का प्रेम सबसे निराला होता है। बड़े होने पर बच्चे को माता की सहायता की आवश्यकता नहीं रहती। और जब वह युवा होकर जीवन-युद्ध के लिए तैयार होता है तो माता के स्थान पर स्त्री-वर्ग का प्रेम उसके हृदय में उत्पन्न हो जाता है। प्राय: लड़के-लड़कियां ज्योंही यौवनोदय से आक्रान्त होते हैं, अपने को अकेला अनुभव करने लगते हैं, तथा भिन्नलिंगी का अभाव उन्हें अखरने लगता है। इसी समय काम-वेग उन्हें पीड़ित करने लगता है। और इस प्रकार भिन्नलिंगी आकर्षण उन्हें आहत करने लगता है।

यहां एक और बात है, अत्यन्त कोमल भाव जो दूसरे से किसीपर आता है, अधिक शक्तिशाली होता है। केवल यही बात है जो नवयौवन में क्रान्ति लाती है। और इस प्रकार तरुण-तरुणी प्रेमानन्द की अनुभूति करते हुए कामवासना की प्रचण्ड दुपहरी में जा पहुंचते हैं।

एक बात ध्यान रखने योग्य है, प्रेम का उदय विचार से होता है। परन्तु प्रेम को संयम में रखने की बड़ी आवश्यकता है। शरीर भी एक यन्त्र है, और यन्त्र से उतना ही काम लेना चाहिए जितना काम करने की उसमें क्षमता हो। प्रेम में काम-विकार का मिश्रण होने से उत्तेजना उत्पन्न होती है, परन्तु वह यदि सीमा से बाहर हो जाता है तो भयानक है।

एक बालक जिसके लिए सब कुछ नया है, प्रत्येक भौतिक अनुभूति से

उत्तेजित हो जाता है। पर ज्यों-ज्यों वह बड़ा होता जाता है, वह साहसी और वीर होता जाता है। पर प्रेम की भावना उसमें वैसी ही कोमल बनी रहती है। परन्तु जब प्रेम के साथ काम का मिश्रण हो जाता है तो रक्त और नाड़ियों में एक तीव्र उत्तेजना का अनुभव होने लगता है। जब काम-विकार की अनुभूति से प्रेम मिलकर एक अत्यन्त आनन्दप्रद कार्य बन जाता है, उस समय उच्चकोटि के प्राणियों में, भले ही वे भिन्नजातीय हों, एक इन्द्रिय होती है जिसमें रक्त का दबाव हद दर्जे तक पहुंच जाता है। इस क्रिया पर नियंत्रण ही उन्नति का मूल है।

एक बात यहां और महत्त्वपूर्ण कहूंगा, हमेशा व्यक्तिगत आदतें मानसिक होती हैं; शारीरिक नहीं। आदतों की भिन्नता, आयु और स्वभाव से भी सम्बन्धित है। यदि खराब आदतें शरीर में घर कर जाती हैं, तो मनुष्य निर्लज्ज, अविवेकी और कामुक बन जाता है।

जुगनू ऐसा ही तरुण था। उसकी कामवासना और कामुकता को वास्तव में दोष नहीं दिया जा सकता, वह कुसंस्कारी, अशिक्षित और बचपन में हीन स्थिति में पला था। परन्तु उसका शरीर अत्यन्त स्वस्थ और मस्तिष्क अत्यन्त चेतन था, अतः उसमें प्रचण्ड कामवासना थी। किन्तु संयम का उसमें नामोनिशान न था। यही कारण था कि प्रेमभाव के पनपते ही कामभाव उसपर आक्रमण करता था। और स्त्री मात्र के प्रति उसकी कामुक दृष्टि थी। शारदा के प्रति उसकी उद्दाम कामवासना चरम सीमा को पहुंच चुकी थी।

उसका प्रत्येक रोमकूप जल रहा था। उसका प्रत्येक रक्तबिन्दु आग का अंगारा बन रहा था। उसकी आंखें सुर्ख हो गईं, और शरीर का सारा रक्त मस्तिष्क में आ जमा हुआ। उसे अब न समारोह अच्छा लग रहा था, न किसी आदमी का साथ। वह शारदा पर सिंह की भांति आक्रमण तक करने पर आमादा था। उसकी उत्तेजना अब ठीक उस सीमा तक पहुंच चुकी थी जब मनुष्य भयानक बलात्कार या खून तक करने पर आमादा हो जाते हैं। उसकी समूची प्रेमानुभूति उद्दाम कामवासना में परिवर्तित हो चुकी थी, वह लम्बे-लम्बे सांस लेता हुआ सब लोगों की भीड़-भाड़ से दूर-दूर चक्कर काटने लगा। लड़कियां अभी भी गा-बजाकर अपना मनोरंजन कर रही थीं। सूर्यास्त हो चुका था। एकाध तारा आकाश में टिमटिमाने लगा था, थोड़ी ही देर में चन्द्रोदय हुआ। बड़ा ही सुहावना मौसम था, पर उसे तो यह सब असह्य हो रहा था।

उसे उस समय एक स्त्री-शरीर की आवश्यकता थी। हो सकता था कि उसे इस समय कोई स्त्री मिल जाए तो उसका गला घोंट दे। उसके चिथड़े-चिथड़े करके चीर डाले। उसका सम्पूर्ण पशुत्व जैसे उन्मत्त हो उठा था। खैरियत इतनी ही थी कि अंधेरा हो उठने के कारण उसे किसीने देखा नहीं, किसीका ध्यान उसकी ओर न था। वास्तव में डा० खन्ना, परशुराम और राधेमोहन के अतिरिक्त और किसीसे उसका परिचय न था। पर ये सभी इस समय अपने-अपने मनोरंजन में लगे थे। बहुत बार उसका मन हुआ कि किसी खण्डहर की चोटी पर चढ़कर नीचे कूद पड़े। या अपने शरीर को दांतों से काटकर क्षत-विक्षत कर ले।

वह तेज़ी से घूम रहा था। बड़ी देर तक वह उसी प्रकार चक्कर काटता रहा। गाना-बजाना समाप्त हो गया। सब लोग लौटने की तैयारी करने लगे। जुगनू भी लौटा, इसी समय उसने देखा, शारदा अकेली ही जा रही है। एक बार उसने भली भांति सावधानी से चारों ओर देख लिया, आसपास कोई न था। उसने भर्राए गले से कहा, 'शारदा, एक बात सुनती जाओ।'

शारदा ने लौटकर जुगनू की ओर देखा। वह मुस्करा उठी। उसे आज अभी तक उससे बात करने का अवसर ही नहीं मिला था। उसने हंसते हुए कहा, 'मुंशी, आखिर तुम यहां दिखाई पड़ ही गए। तुम बड़े खराब आदमी हो मुंशी, बहुत दिनों से तुम कभी हमारे घर नहीं आए।'

अभी शारदा के ये शब्द उसके मुंह में ही थे, कि जुगनू ने लपककर उसका हाथ कसकर पकड़ लिया। शारदा ने देखा कि वह हाथ आग के अंगारे की भांति जल रहा है। वह कांप रहा है। शारदा का हास्य गायब हो गया। उसने कहा, 'यह क्या ? क्या तुम्हें बुखार है मुंशी ?' उसकी नज़र जुगनू की आंखों पर गई, जो हिंसक पशु की भांति चमक रही थीं। उसने खींचकर अपना हाथ छुड़ा लिया और भय और आशंका से भरी हुई जुगनू का मुंह तकने लगी। किसी नैसर्गिक ज्ञान से उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह किसी हिंस्र आक्रमण के सन्निकट है। परन्तु वह कुछ भी न समझ पा रही थी। वह अपनी काली-काली निर्दोष आंखें जुगनू के मुंह पर जमाए हुए थी, जो बादलों में दामिनी की भांति चमक रही थीं।

संयत होकर जुगनू ने कहा, 'मैं···मैं तुम्हारे लिए एक उपहार लाया हूं।'

'तो लाओ दो,' शारदा के चेहरे पर फिर वही सरल हास्य खेलने लगा। जुगनू ने फाउण्टेन पैन उसके हाथों पर रख दिया। शारदा खुश होकर कलम को देखने लगी। फिर उसने मुस्कराकर कहा, 'बहुत अच्छा कलम है, कितना खर्च कर दिया ?'

'मैं बहुत व्यस्त था। आ नहीं सका।'

उसकी वाणी अटपटी और वाक्य असम्बद्ध थे। पर शारदा का इन बातों पर ध्यान ही न था। उसने कहा, 'तुम झूठ बोल रहे हो मुंशी। मैं तो तुम्हें बहुत याद करती हूं। आज भी तुम जाने कहां-कहां रहे। तुमने अपनी नज़्म नहीं सुनाई। मेरी सहेलियां तुम्हारी नज़्म सुनना चाहती थीं।'

'शारदा क्या सचमुच तुम मुझे याद करती हो ?'

'ओह, बहुत, बहुत ! तुम कभी-कभी हमारे यहां आया करो।'

'लेकिन जल्द ही तुम्हारी शादी हो जाएगी, और फिर हम-तुम कभी मिल भी न सकेंगे।'

शारदा लजा गई। उसने कहा, 'क्यों भला ?'

'यह बात तुम शायद न समझ सको।'

'क्यों नहीं समझ सकूंगी ?'

'क्या तुम मुझपर भरोसा करती हो ?'

'हां, हां, क्यों नहीं।'

'तो मैंने तुमसे अभी क्या कहा था ?'

'किस विषय में ?'

'तुम्हारी शादी के विषय में।'

शारदा फिर लजाकर हंसने लगी। उसने कहा, 'मुंशी, तुम बड़े खराब आदमी हो।'

'अच्छा तुम एक वादा करो।'

'अच्छा वादा करती हूं, पर किस बात का ?'

'इस बात का कि तुम जब किसीसे ब्याह करो तो मुझसे सलाह लेकर।'

शारदा ने जवाब नहीं दिया। वह शर्मा गई। जुगनू ने फिर आहिस्ता से कहा, 'और यह बात किसीसे न कहना। बाबूजी से भी नहीं। अपनी माताजी से भी नहीं।'

परन्तु ये सब बातें तो वे ही करते हैं।' शारदा ने लजाते हुए कहा।

'नहीं, तुम समझदार हो, पढ़ी-लिखी हो। तुम्हें खुद सोचना चाहिए।' कुछ रुककर उसने कहा, 'एक बात कहूं शारदा, तुम मुझे प्यार करती हो ?'

अकस्मात् शारदा ने जुगनू के मुंह की ओर देखा। जुगनू ने फिर कसकर शारदा का हाथ पकड़ लिया, और कहा, 'शारदा प्यारी, मैं तुम्हें प्यार करता हूं, मैं तुम्हारे बिना नहीं रह सकता।' शारदा का मुंह भय से पीला पड़ गया। एक बार वह कांप उठी, उसने झटका देकर हाथ छुड़ाते हुए कहा, 'छोड़ दो, कोई देख लेगा।'

और हाथ छुड़ाकर वह तेज़ी से चली गई। जुगनू का उपहार वह फाउण्टेन पैन उसके हाथ में से छूटकर धरती पर गिर गया। जुगनू भी वहां से तुरन्त चल दिया। उसे न पार्टी के दूसरे संगी-साथियों का ध्यान रहा न और किसी बात का होश-हवास। वह सबसे पृथक् पैदल ही दिल्ली की ओर पागल आदमी की भांति लड़खड़ाते हुए पैर रखता चला जा रहा था।

४६

जुगनू का यह अप्रत्याशित प्रणय-निवेदन एकबारगी ही शारदा को आहत कर गया। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि जैसे उसका अमल-धवल कौमार्य अकस्मात् ही मैला हो गया। एक प्रकार की भीति, घृणा, क्षोभ और क्रोध से वह अभिभूत हो उठी। अब वह यद्यपि बीस से भी अधिक आयु की तरुणी थी, परन्तु अभी तक शैशव ही उसके तन-मन में खेल रहा था। उसका लालन-पालन स्वस्थ वातावरण में हुआ था। सुसंस्कृत परिवार की वह लड़की थी। अब तक उसकी सम्पूर्ण चेतना ज्ञानार्जन में संलग्न थी। मनोविज्ञान और इतिहास उसके प्रिय विषय थे। साहित्य में उसकी आसक्ति थी। उसे पता ही नहीं था कि यौवन और कामवासना क्या वस्तु है। ये दोनों ही तत्त्व उसके अंग में सोए पड़े थे। और इस दृष्टि से वह अभी एक निपट बालिका थी। परन्तु वह इतनी कम-समझ भी न थी कि जुगनू के प्रणय-निवेदन के मर्म को न समझ सके। उसकी सहेलियां यद्यपि जब-तब उससे विवाह और वैवाहिक जीवन की चर्चा करती

रहती थीं, घर में भी उसके विवाह की बातें होती थीं, परन्तु उसकी चेतना में इन सब बातों का केवल सामाजिक ही रूप था। किसी तरुण पुरुष की काम-भावना से उसका अंग-स्पर्श करने तथा प्रणय-निवेदन करने की यह प्रथम ही घटना थी। अभी कौमार्य के कवच में उसका तन और मन सुरक्षित था। यह कवच शारीरिक भी था और मानसिक भी, परन्तु सर्वथा प्राकृतिक। हम इसे केवल भय और लज्जा ही नहीं कह सकते, हकीकत यह है कि कौमार्य के दुहरे आवरण में—मानसिक आवरण ऊपर है और शारीरिक भीतर—मानसिक आवरण चेतना से, चेतना की संवेदना से अधिक सम्बन्धित है।

नर-नारी का भिन्नलिंगी होना केवल शारीरिक ही नहीं है, मानसिक भी है। नर-नारी के जैसे शरीर भिन्न हैं, वैसे ही उनके मन भी भिन्न हैं। निस्संदेह नर और नारी दोनों ही शारीरिक और मानसिक दशाओं में एक दूसरे से भिन्न हैं, कहना चाहिए विपरीत हैं। शारीरिक भिन्नता हम प्रत्यक्ष देखते हैं। पुरुष का शरीर कठोर, चेहरा दाढ़ी-मूंछों से भरा हुआ, आवाज़ गम्भीर, भारी डीलडौल ; और स्त्री का शरीर कोमल, चेहरा दाढ़ी-मूंछों से रहित, बोलने-चालने और काम करने में नाज़ुक। परन्तु पुरुष जहां स्त्री में कोमलता, मादकता और नज़ाकत को पसन्द करता है, वहां स्त्री कठोर अंगोंवाले, बड़ी और मोटी हड्डियोंवाले, भरपूर तेजस्वी और वीर पुरुष को पसन्द करती है। स्त्री-पुरुषों की यह विपरीत तत्त्वों की पसन्द कोरी पसन्द ही नहीं है, भूख है। वह विपरीतता शारीरिक विषयों में ही नहीं, मन और स्वभाव में भी है। स्त्रियां प्रायः सलज्ज, भीरु और भावुक होती हैं। पुरुष साहसी और निस्संकोच। इस विपरीत आकांक्षा में नैसर्गिक कारण है—एक तत्त्व का दूसरे में अभाव, और उस अभाव की पूर्ति।

हृदय और मस्तिष्क ये दो यन्त्र शरीर की जीवनीय शक्ति के केन्द्र हैं। हृदय में भावुकता, लज्जा, दया और परोपकार की भावना तथा करुणा की तरंगें उठती रहती हैं। और मस्तिष्क में वीरता, साहस, ज्ञान और धैर्य की। स्वभाव ही से पुरुषों में मस्तिष्क की शक्तियों और स्त्रियों में हृदय के आवेग का बाहुल्य होता है। संक्षेप में प्राणी-जगत् में स्त्री हृदय है और पुरुष मस्तिष्क। दोनों दोनों पर ही निर्भर हैं। मस्तिष्क में चेतना और हृदय में जीवन निहित है। ये ही सब बातें हैं, जो स्त्री-पुरुष के मानसिक और शारीरिक आकर्षण का मूल

हैं। परन्तु प्रकृति ने जो मानसिक और शारीरिक आवरण स्त्री और पुरुष को दिया है, उससे वे संयम और नियमित रूप से परस्पर की शक्ति का साथ ही में मिलकर उपयोग कर सकते हैं। जैसे बिजली के दोनों तार धन और ऋण रबर के आवरण में बद्ध सर्वथा पृथक्-पृथक् किन्तु साथ-साथ रहते हैं, केवल लक्ष्य-बिन्दु पर नग्न होकर मिलते हैं, तभी विद्युत्-धारा प्रवाहित होने लगती है।

रास्ते भर शारदा थकी होने का बहाना करके आंखें बन्द किए गाड़ी में पड़ी रही। और घर आकर भी तत्काल सोने को चली गई। पर नींद उसे रात भर नहीं आई। प्रतिक्षण जुगनू के जलता हुए हाथ का स्पर्श, हिंस्र नेत्रों की लाल-लाल ज्वाला, लड़खड़ाती वाणी में उसका उन्मत्त प्रणय-निवेदन रह-रहकर उसे खींच रहा था। कभी वह दर्द से चीख-सी उठती। कभी बिस्तर पर तड़पने लगती। कभी वह क्रुद्ध भाव से उठकर बैठ जाती। परन्तु भीतर ही भीतर उसके कौमार्य और यौवन में संघर्ष चल रहा था। यौवन जग रहा था और कौमार्य को गर्दन पकड़कर शारदा के शरीर और मन से निकाल बाहर करने का यत्न कर रहा था। अब तक का उसका शैशव-साहचर्य उसके नेत्रों में मोह पैदा कर रहा था। परन्तु यौवन गुपचुप हंसकर नये और अज्ञात संकेत कर रहा था।

वह चाहती थी कि उसकी ओर से आंखें फेर ले। वह चाहती थी कि अपने चिरसहचर शैशव को अंक में भर ले। परन्तु अब तो यौवन उसके अंग में ऊधम मचा रहा था और उसे काबू में रखना उसके बूते की बात न रह गई थी।

४७

बुलाकीदास गर्ल्स हायर सैकण्डरी स्कूल का वार्षिकोत्सव खूब धूमधाम से मनाया जा रहा था। मिसेज़ डेविड ने सारा प्रदर्शन अपने आदर्शों पर किया था। अंग्रेज़ भारत से चले गए पर भारत में जो अंग्रेज़ी मनोवृत्ति छोड़ गए हैं, मिसेज़ डेविड उसकी जीती-जागती तस्वीर हैं। वे चाहती हैं, भारतीय और यूरोपियन संस्कृतियों को मिलाकर एक नई संस्कृति को भारत में जन्म दिया

जाए। इसे वे नये-पुराने का मेल कहती हैं। वे भारतीय महिला की भांति साड़ी पहनती हैं, परन्तु अंग्रेज़ी बोलती हैं। हिन्दुस्तानी भाषा कल्चर्ड भाषा नहीं है। यद्यपि वे उर्दू बखूबी बोल लेती हैं। तेलगू भी वे जानती थीं पर उसे वे भूल चुकी हैं। उसे बोलने की उन्हें यहां कभी ज़रूरत ही नहीं पड़ती। वे धनी घरानों की ऊंची श्रेणी की महिलाओं पर भक्ति-भाव रखती और उनसे सम्पर्क बनाए रखती हैं। श्रीमती बुलाकीदास यद्यपि शुद्ध वैष्णवपन्थी भारतीय महिला हैं, वे अधिक शिक्षिता नहीं हैं, उनके आदर्श और रहन-सहन सम्पूर्ण भारतीय हैं, परन्तु उन्होंने मिसेज़ डेविड को अपने इस स्कूल की प्रिंसिपल बना रखा है। मिसेज़ डेविड ने अपने बुद्धिमानी, चतुराई और खुश-अखलाकी से श्रीमती बुलाकीदास को जेब में डाल रखा है। वे मिसेज़ डेविड से बहुत खुश हैं। उनकी किसी बात में वे दखल नहीं देतीं। श्रीमती बुलाकीदास उदार महिला हैं। वे चाहती हैं, नई पौध की लड़कियां खूब अच्छी तरह नये युग के नये जीवन को अपनाएं, इसमें हर्ज क्या है। पुराने ज़माने का दमघोंटू घरेलू वातावरण उन्हें पसन्द नहीं है। उनके विचारों में जो कोर-कसर रह गई थी उसे मिसेज़ डेविड ने पूरा कर दिया है।

स्कूल का पूरा कम्पाउण्ड रंग-बिरंगी झंडियों से भली भांति सजाया गया है। बिजली का 'स्वागतम्' लगा है। शहर के गण्यमान्य जनों को, खासकर भूतपूर्व और वर्तमान छात्राओं के अभिभावकों को, निमंत्रण-पत्र दिए गए हैं। सजावट में अंग्रेज़ी फूल-पौधे भी हैं, और केले के स्तम्भ और मंगल-कलश भी।

कार्यारम्भ साढ़े छः बजे से आरम्भ होना है। मोटर पर मोटर आ रही है। आज श्रीमती बुलाकीदास ने आसमानी साड़ी पहनी है। वे मिसेज़ डेविड के साथ खड़ी हंस-हंसकर अतिथियों का सत्कार-स्वागत कर रही हैं। भद्र महिलाएं आती जा रही हैं। साड़ी और सलवारों की एक चलती-फिरती नुमाइश हो रही है। हवा में सैंट, इत्र और फूलों की गन्ध भरी है। सफेद खद्दर की वर्दी पर गांधी-टोपी लगाए चपरासी लोग अपने-अपने कामों में मुस्तैद हैं। कुछ लड़कियां स्वयं-सेविकाएं भी हैं। उन्होंने अपने परिधान में तिरंगा अपनाया है। इनमें से अनेक सुन्दर छात्राएं गेट पर मेहमानों का स्वागत कर रही हैं। कुछ उन्हें उपयुक्त स्थानों पर बिठा रही हैं। यह व्यवस्था मिसेज़ डेविड ने की है। गेट पर आने-वालों का तांता लगा है।

समारोह के प्रमुख अतिथि मुंशी जगनपरसाद अभी नहीं आए हैं। प्रमुख लोगों को हमेशा ही कुछ लेट आना चाहिए। उनके लिए सब लोगों को प्रतीक्षा करनी आवश्यक है। यही परिपाटी है। यही उपयुक्त भी है। इसमें प्रमुख जनों की प्रमुखता कायम रहती है। मिसेज़ डेविड बारम्बार घड़ी देख रही हैं। और श्रीमती बुलाकीदास बारम्बार गेट पर आनेवाली प्रत्येक मोटर को भांप रही हैं। देर होती जा रही है। सब लोग आ चुके हैं, पर मुंशी अभी नहीं आए हैं। लाला बुलाकीदास हर पांच मिनट पर गेट का चक्कर लगा आते हैं।

अन्ततः मुंशी जगनपरसाद की सवारी आई। लाला बुलाकीदास ने पहले ही अपनी कार उनको लाने भेज दी थी।

अब लाला बुलाकीदास लपककर आगे बढ़े। उनके पीछे मिसेज़ डेविड और श्रीमती बुलाकीदास, हाथों में भारी-भारी फूलमालाएं लिए। मुंशी को फूल-मालाएं पहनाई गईं, बैंड ने 'जन मन गण अधिनायक' गान किया। कायदे के मुताबिक मुंशी को पहले एक सज्जित कक्ष में ले जा बिठाया गया। चायपान की यहां ठाठदार व्यवस्था थी। लाला बुलाकीदास और मिसेज़ डेविड अन्य प्रबन्ध करने तथा अतिथियों का सत्कार करने चले गए। रह गईं श्रीमती बुलाकीदास जुगनू की चाकरी में, जो अपनी सम्पूर्ण माधुरी का रस, मुस्कान की चांदनी और सुषमा का सौरभ चाय में उंडेलकर जुगनू को पिलाने लगीं। मोती बींधने का नवाब का संकेत जुगनू भूला न था। इस समय उसे श्रीमती को अच्छी तरह निहारने का अवसर मिल गया था। श्रीमती बुलाकीदास ने चाय बनाकर मुस्कान की मिश्री घोलकर प्याला बढ़ाया, नयनों में कटाक्ष ढालकर कहा, 'पीजिए।'

जुगनू ने कहा, 'आप यह क्या तकल्लुफ कर रही हैं, बैठिए आप। एक प्याला आप भी पीजिए। मैं बनाता हूं।'

'नहीं, नहीं, मैं चाय नहीं पीती।'

'केवल पिलाती हैं ? यह न होगा।' जुगनू ने केटली की ओर हाथ बढ़ाया।

'रहने दीजिए, मैं चाय पीती ही नहीं।'

'तो यह ज़रा-सी दालमोठ चखिए, सोहन हलुआ खाइए।'

'नहीं, इस समय नहीं।' श्रीमती बुलाकीदास छोकरी की तरह शर्मा रही थीं। और जुगनू का साहस बढ़ रहा था। उसकी नज़र उनके भरे हुए वक्ष पर थी, जहां उज्ज्वल मोतियों की माला निरन्तर आघात कर रही थी। जुगनू ने

कहा, 'आपको मेरी कसम है। बस ज़रा-सा लीजिए।' उसने प्लेट बढ़ाई।

निरुपाय श्रीमती बुलाकीदास ने एक टुकड़ा रसगुल्ला मुंह में डाला।

जुगनू ने कहा, 'कैसे दुःख की बात है, आप ऐसी पुण्यवती देवी की गोद बच्चे से खाली है। हरा-भरा घर बच्चे की किलकारी से सूना है।'

श्रीमती बुलाकीदास का चेहरा उदास हो गया। एक ठण्डी सांस लेकर उन्होंने कहा, 'भगवान की माया है। भाग्य की बात है, इसमें किसीका क्या चारा!'

'परन्तु कुछ उपाय तो होना ही चाहिए। अभी आपकी उम्र ही क्या है!'

'बहुत उपाय—दवा-दारू, मन्त्र-जन्त्र कर लिए।'

'परन्तु श्रीमतीजी, बच्चे दवा-दारू और मन्त्र-जन्त्र से नहीं होते। मर्द से होते हैं।'

श्रीमती बुलाकीदास की छाती में जैसे किसीने गोली मार दी। क्षण भर के लिए उनकी सांस रुक गई। ऐसी बेहूदी बात उनके सामने कहने की किसीने हिम्मत नहीं की थी। उनके मुंह पर पसीना छा गया और आंखें ज़मीन में घुस गईं। जुगनू ने एक छिपी दृष्टि से उनकी ओर देखा। वह कुछ और कहना चाह ही रहा था कि मिसेज़ डेविड व्यस्तभाव से आकर उन्हें मंच पर ले चलीं। तालियों की प्रचण्ड गड़गड़ाहट में उन्होंने सभापति का स्थान ग्रहण किया। समारोह का प्रोग्राम आरम्भ हुआ।

४८

आज के कार्यक्रम में सबसे आकर्षक वस्तु थी—शारदा का नृत्य। मिसेज़ डेविड और श्रीमती बुलाकीदास ने उससे नृत्य के लिए प्रथम ही स्वीकृति ले ली थी। परन्तु इसके बाद हौज़खास में जो घटना कल रात उसके साथ घटी थी उसने उसे एकदम अस्तव्यस्त कर दिया था। जुगनू की उस अप्रत्याशित चेष्टा ने उसकी सम्पूर्ण चेतना को झकझोर डाला था। वह रात भर सो न सकी थी। और इसीने उसके चेहरे को काफी हानि पहुंचाई थी। उसके मुख पर खेलता हुआ वह सरल हास्य, नेत्रों में बिखरा-बिखरा-सा कटाक्ष, होंठों पर कौमार्य की

मीठी मुस्कान और आनन्दमयी अमल-धवल दृष्टि अब कहां थी। वह अब भी भीता-चकिता हरिणी के समान शंकिता और व्यथिता-सी जैसे अर्धस्वप्निल अवस्था में थी। उसे इस समय इस अवस्था में देख मिसेज़ डेविड और श्रीमती बुलाकीदास परेशान थीं। मिसेज़ डेविड ने बहुत ही परेशान होकर हाथ मलते हुए कहा, 'आखिर बात क्या है मिस शारदा, तुम्हें हुआ क्या है? तुम्हारा तो चेहरा ही एकदम बदल गया। क्या तुम बीमार हो?'

'मेरी तबियत ठीक नहीं है मैडम, मैं नृत्य नहीं कर सकूंगी।'

'तब तो आज का सारा प्रोग्राम ही चौपट हो जाएगा डियर शारदा, इस बात को तो सोचो।'

'मुझे अफसोस है मैडम,' शारदा ने स्वप्निल-सी हालत में कहा, 'मुझे जान पड़ता है कि नृत्य करते-करते ही गिर पड़ूंगी।'

'लेकिन क्यों मेरी प्यारी, आफ्टर आल, यह भी तो सोचो कि इस जलसे की सफलता का सारा ही दारोमदार तुम्हारे ही नृत्य पर है। प्राचीन भारतीय भावधारा का ऐसा सुन्दर और अद्भुत प्रदर्शन करने की सामर्थ्य तुम्हारे अभिनय में ही तो है। ओह मिस शारदा! भारतीय इतिहास से नाट्यकला का मिला-जुला प्रदर्शन कितना प्रभावशाली होगा! कितने लोग इसके लिए उत्सुक हैं! सारी दिल्ली की नाक यहां तुम्हारी इन्तज़ारी कर रही है।'

'लेकिन मुझे तो नहीं मालूम पड़ता कि मैं सफल हो जाऊंगी। मेरा खयाल है, आप यह काम किसी दूसरी लड़की को दे दीजिए।'

'ओ, नो, नो, माई डार्लिंग, मैं तो ज़हर खाकर जान दे दूंगी। किसीको मुंह दिखाने लायक न रहूंगी।'

'आपका इतना आग्रह है तो लाचारी है। परन्तु मैं यदि असफल रहूं तो मुझे दोष न दीजिएगा।'

'सब तुमसे जैलसी का अनुभव करेंगी, शारदा तुम वण्डरफुल हो। फार हैवेन्स सेक, हौसला रखो।'

'मैडम, अब आप मुझे थोड़ा विश्राम का अवसर दें।'

'दैट्स राइट, दैट्स राइट। अभी तुम्हारे पास पूरा डेढ़ घंटा है। तब तक हम छोटे-बड़े सब प्रोग्राम खत्म कर लेंगे। तुम इत्मीनान से आराम करो।'

इतना कहकर मिसेज डेविड संतुष्ट होकर चली गईं।

४९

संतुलित और परिपक्व भावनाओंवाली स्त्री, भले ही वह चाहे जिस आयु की हो, उसमें एक आत्मविश्वास होता ही है। खासकर जिन लड़कियों का विकास बचपन ही में सुविधा और परितुष्टि के वातावरण में होता है और जिन्हें बचपन में माता-पिता मानव-प्रकृति तथा उससे होनेवाली परिस्थितियों तथा समस्याओं के समझने में मदद देते रहते हैं, उनमें आयु की परिपक्वता के साथ, समझदारी के साथ-साथ ही सहिष्णुता, दया और साहस का ज्ञान हो जाता है। आगे चलकर उनमें अपने को तथा औरों को, जो उनके संपर्क में आए, समझने की नैसर्गिक शक्ति उत्पन्न हो जाती है। ऐसी लड़कियां वयस्क होने पर अपने विचारों पर दृढ़ चरित्र से संतुलित और शांत रहती हैं। अपने चारों ओर के संसार से वे एक प्रकार का अनुकूल समझौता कर लेती हैं। और इस कारण वे अपने जीवन में संतुष्ट और प्रफुल्ल रहती हैं। ऐसी लड़कियों में यदि धैर्य और आत्म-विश्वास भी हुआ तो उनका अच्छा चरित्र-गठन हो जाता है।

परन्तु जिन लड़कियों को आत्मविश्वास प्रयत्न करके प्राप्त करना पड़ता है, वह बचपन के स्वाभाविक विकास की देन के रूप में नहीं मिलता है—उनमें यदि आत्मविश्वास की कमी रह जाती है तो उसका प्रभाव उनकी शारीरिक और मानसिक गठन पर पड़ता है। वे प्रायः भीरु स्वभाव की बन जाती हैं, और जब भी कोई अप्रत्याशित उत्तेजनामूलक प्रसंग उनके सम्मुख आता है तो वे घबरा जाती हैं, उनका दिल धड़कने लगता है, शरीर में पसीना आ जाता है, वाणी हकला जाती है, श्वास की गति तेज़ हो जाती है। ऐसी लड़कियां बात-बात में भय करने लगती हैं। वे जानती हैं कि उनका भय अकारण है, पर उनकी कमज़ोर इच्छाशक्ति और असंतुलित मनःस्थिति काबू से बाहर हो जाती है। और यदि ऐसे प्रसंग बारम्बार आएं तो उनका जीवन ही भयावह बन जाता है। और वे बहुधा हिस्टीरिया जैसे स्नायविक रोगों का शिकार हो जाती हैं। बहुधा ऐसा होता है कि जो लड़की अधिक विचारशील और बुद्धिमती होती है, वही इस विपत्ति में पड़ती है। ऐसी लड़कियां यदि घटनावश अथवा यत्नपूर्वक अपनी स्नायु-दुर्बलता के मूल कारणों को अपने से दूर उठा फेंकती हैं और जिन

घटनाओं का उनपर प्रभाव हुआ हो उनसे मुक्ति पा जाती हैं, तो उनका आत्मविश्वास लौट आता है। परन्तु इसके लिए उन्हें काफी धैर्य और सहिष्णुता की आवश्यकता होती है और अपने मानसिक कार्यकलापों को नियन्त्रित करना पड़ता है ; तब कहीं वे भय और मानसिक दुर्बलता पर काबू पा सकती हैं।

शारदा का लालन-पालन सम्पन्न और सुरुचिपूर्ण परिवार में हुआ था। डाक्टर खन्ना और उनकी पत्नी, दोनों ही सुशिक्षित थे, परन्तु शारदा का मानसिक उठाव संयत न था। उसे लाड़-चाव मिला था, पर यत्किंचित् असावधानता से उसकी शिक्षा-दीक्षा उन शिक्षिकाओं द्वारा हुई थी, जो मनोवैज्ञानिक विकृतियों को नहीं जानती थीं। सम्पन्न परिवारों में प्रायः ही ऐसा होता है। माता-पिता बच्चों के लालन-पालन और शिक्षा-कार्यों में बहुधा उन सूक्ष्म मानसिक दोषों का ध्यान ही नहीं रख पाते जो उनमें चरित्र-गठन और आत्मविश्वास की गहरी स्थिति-स्थापकता में बाधक होते हैं। शारदा सच्चरित्र और शुद्धाचरण की लड़की तो थी, पर आत्मविश्वास की उसमें कमी थी।

वह माता-पिता की दुलारी और ज़िद्दी लड़की थी। अपने अब तक के जीवन में वह न किसीकी अनुगता थी, न परमुखापेक्षिणी। पर मानापमान की सूक्ष्म अनुभूति उसमें थी। इसीसे वह पिछली रात भर सो न सकी। अपने कमरे को भीतर से बन्द कर इधर से उधर टहलती रही—रोती रही। और टूटती रात में जब उसने थकित भाव से अपने शरीर को बिस्तर पर डाला तो नींद की अपेक्षा अवसाद ने ही उसे अचेतन कर रखा।

५०

समारोह का कार्यक्रम चल रहा था। पण्डाल में भारी भीड़ जमा थी। थोड़ी-थोड़ी देर में सभा-भवन तालियों की गड़गड़ाहट से गूंज उठता था। ग्रीन रूम में बैठी शारदा बेमन से अपना मेकअप कर रही थी। उसका मन न जाने कहां था। वह स्वप्निल-सी हालत में थी। मेकअप में उसकी उंगलियां व्यस्त थीं,

पर वह नहीं जानती थी कि वह क्या करने जा रही है।

इसी समय मालती ने आकर कहा, 'अरे वाह, तू तो बेफिक्र यहां हाथ-पैर फैलाकर बैठी है।'

'तो क्या अपना गला काट लूं ?'

'चल भई, सब तैयार हैं। मैडम ने मुझे भेजा है।'

'चल, मैं रैडी हूं।'

मालती ने एक बार सिर से पैर तक शारदा को देखा, आग की तरह लाल नाइलोन की साड़ी, जिसपर खूब चौड़ा सुनहरा काम, आंचल में झलझल झलकते हुए इन्द्रधनुष के रंग का काम, अंग पर कंकरण, भुजबन्द आदि पुराने ढंग के गहने, उंगलियों में जड़ाऊ अंगूठियां, आंखों में काजल की लम्बी रेखा—देखकर मालती ने ठोड़ी पर उंगली रखकर कहा, 'तू तो आज राधा बनी है शारदा ! पर तेरा मुंह ?'

'क्यों, मुंह से तुझे क्या लेना-देना है ?'

'मुझे नहीं, पर बाहर जो हज़ारों इस मुख को देखने की लालसा मन में संजोए बैठे हैं ?'

'तो मुंह को क्या हुआ है ?'

'एकदम रूखा-सूखा, जैसे वहां एक बूंद रक्त है ही नहीं, तू क्या वियोग-शृंगार का नृत्य करने जा रही है ?'

'तो अब इस वक्त किसका मुंह लाऊं, उन सबको दिखाने के लिए। नहीं तो नृत्य मुल्तवी रखा जाए।'

'मैडम ज़हर खाकर मर जाएगी, तो यह ब्रह्महत्या किसे लगेगी ?'

'क्यों ? क्या मैडम ब्राह्मरण है ?'

'कर्म से तो ब्राह्मरण ही है। देखती नहीं हमारी गुरु है। विद्या-दान करती है।'

'दान कहां करती है री, बेचती है।' और बात नहीं हुई। इसी समय घंटी बज उठी। शारदा उठकर धीरे-धीरे स्टेज पर पहुंची। परदा नीचे से फटकर इधर-उधर हट गया—सामने का दृश्य भावविमोहित कर रहा था। जमुना का कूल—कदम्ब की फूलों से लदी हुई डाल—धीरे-धीरे नूपरों की झंकार से सभा-भवन में सन्नाटा छा गया। दूर कहीं बंसी बज उठी। राधा का विप्रलम्भ नृत्य

आरम्भ हुआ। विरह-विह्वल दृष्टि, आवेश और अभिलाषा से पूरित पदक्षेप, विरह-विथा-पीड़िता राधा—दूर से वंशी की ध्वनि सुनते ही भीता-चकिता हरिणी की भांति चौकड़ी भरती हुई—नानाविध भाव-मुद्राओं में नृत्य करती। दर्शक मुग्ध, भाव-विमोहित। जैसे सचमुच कालिंदी-कूल पर कदम्ब के सुनहरे फूलों से लदे हुए वृक्ष के नीचे विरहिणी राधा युग-युग से प्रतीक्षा कर रही थी—कृष्ण की; मान-अभिमान, भूत-भविष्य, कुल-मान सबको छोड़कर, केवल दूर से आती हुई बांसुरी के सुर में अपनी सम्पूर्ण चेतना को डुबोकर। सारी देह आकुल-व्याकुल पीड़ा से जैसे आपूर्यमाण हो रही है। चितवन में, भौंहों में, चरणगति में, देह-यष्टि में पीड़ा है। केवल पीड़ा—विरह-पीड़ा, विरह-विथा। व्याकुलता जैसे मूर्तिमती वहां आ खड़ी हुई।

नृत्य की समाप्ति पर पर्दा गिर गया। बाहर तालियों की गड़गड़ाहट निरंतर चल रही थी और एक बार नृत्य की पुकार चल रही थी। लोग चिल्ला रहे थे 'और एक बार, और एक बार।' मैडम ने लपकते हुए आकर शारदा को अंक में भर लिया, 'वण्डरफुल, वण्डरफुल माई डीयर! लेकिन एक बार तुम्हें और जाना होगा।'

'नहीं मैडम, मैं स्टेज पर गिर पड़ूंगी। अब नहीं।'

इतना कहकर शारदा दोनों हाथों में अपना मुंह दबाकर कुर्सी पर धम्म से बैठ गई।

५१

लोकसभा और राज्यसभा के चुनावों की देश भर में धूम मच गई। भारत की राजधानी भी इस सरगर्मी में उथल-पुथल होने लगी। दिल्ली की प्रांतीय कांग्रेस कमेटी ने दिल्ली शहर से जुगनू को खड़ा किया। और उसके मुकाबिले जनसंघ ने लाला फकीरचन्द को पकड़ा। इस सम्बन्ध में उनके सबसे बड़े सलाह-कार बने उनके साले जोगीराम। लाला के रिश्ते के, मुहल्ले के, बिरादरी के अधिकांश तरुण जनसंघी थे। उन्हीं तरुणों के नेता थे जोगीराम। स्वयं तरुण न थे, पर सींग-पूंछ कटाकर बछड़ों में शरीक हो गए थे। जोगीराम बड़े जोड़-

तोड़ के आदमी थे। कोयले का कारोबार करते थे। एक बैण्ड बाजा भी उनका ब्याह-शादी के मौके पर किराये पर चलता था। हर सार्वजनिक काम में वे सबसे आगे रहते थे। अनेकों विधवाश्रमों, अनाथालयों के आनरेरी सैक्रेटरी रह चुके थे। हरफनमौला और आठोंगांठ कुम्मैत खुर्राट आदमी थे। बिरादरी की पंचायत में सबसे आगे बोलते थे। और सार्वजनिक चन्दा बटोरने में दक्ष थे। रामलीला का आयोजन करने, मेले-ठेलों में स्वयंसेवकदल ले जाकर प्रबन्ध करने में खूब दिलचस्पी लेते थे। उन सब कामों के कारण वे लोकप्रिय भी बन गए थे और मुट्ठी भी गर्म रखते थे।

जोगीराम ने लाला फकीरचन्द को पटाया। उन्होंने वड़े तड़के ही उनके घर आकर कहा—

'पार्लियामैंट के चुनाव हो रहे हैं जीजाजी, आपको जनसंघ की ओर से खड़ा होना पड़ेगा।'

लाला फकीरचन्द भीतर से तो खुश हो गए, पर प्रकट में बोले, 'ना भई, म्युनिसिपैलिटी के चुनाव में करारी चपत पड़ चुकी है। अब मैं इस झंझट में नहीं पड़ने का।'

'...वाह, यह म्युनिसिपैलिटी नहीं है। पार्लियामैंट है लालाजी, पार्लियामैंट। इसका मैम्बर मिनिस्टर बन सकता है।'

लाला फकीरचन्द अविश्वास की हंसी हंसकर बोले, 'मेरे अन्दर मिनिस्टर होने की योग्यता है?'

'अपनी योग्यता आप नहीं जानते जीजाजी। फिर, मिनिस्टर होने के लिए किसी योग्यता की जरूरत ही नहीं है। सिर्फ पैसा और सहारा चाहिए। सो भगवान की दया से किसी बात की कमी नहीं है। कमाया किस दिन के लिए जाता है? जनसंघ आपकी पीठ पर है ही।'

'भैया, तुम लीडर लोग हो; तुम्हीं यह सब खटपट करो। तुम खुद खड़े क्यों नहीं होते?'

'खटपट तो सब हमीं करेंगे। पर खड़ा होना आपको पड़ेगा। और आपका मुकाबिला होगा मुंशी जगनपरसाद से, जिन्होंने म्युनिसिपैलिटी के मामलों में आपको नीचा दिखाया था। अब उसका बदला लेने का यही समय है।'

'नामर्द मुंशी से मेरी नस दबी हुई है, उससे हजार काम सरते हैं। मैं

उसके मुकाबिले में खड़ा नहीं हो सकता।'

'खाक काम सरते हैं। आप भी क्या बीती बातें करते हैं जीजाजी ! आप जब मिनिस्टर बन जाएंगे तो ऐसे-ऐसे पचास मुंशी आपको सलाम झुकाएंगे और हाज़िरी बजाएंगे।'

'मिनिस्टर बनना खालाजी का घर नहीं है जोगीराम। भला मेरी क्या औकात !'

'उस मुंशी के बच्चे ही की क्या औकात है भला !'

'उसकी पीठ पर तो कांग्रेस है, राज ही कांग्रेस का है।'

'तो आपकी पीठ पर जनसंघ है। राज अब कांग्रेस का टिकेगा नहीं। जनसंघ ही का अब बोलबाला रहेगा।'

लाला फकीरचन्द सोच में पड़ गए। कुछ सोच-समझकर बोले, 'भला खर्च कितना हो जाएगा इस काम में जोगीराम ?'

'आप भी क्या सवाल करते हैं जीजाजी ! यह भी क्या हिसाब-किताब लगाने की बात है ! अजी पार्लियामैंट में घुसना नेहरू चाचा की नाक पर बैठना है। तुम एक बार वहां घुसो तो सही, फिर बिना मिनिस्टर बनाए हम दम थोड़े ही लेंगे।'

'खैर, देखा जाएगा। मैं सोच-विचारकर कल जवाब दूंगा।'

'मैं जवाब लेने नहीं आया हूं लालाजी, यह कहने आया हूं—आज शाम को हम जलसा कर रहे हैं मुहल्ले में जनसंघ का ! उसमें हम आपको उम्मीदवार खड़ा करेंगे। आपको आकर भाषण देना होगा।'

'ना भई, भाषण-ऊषण देना मेरे बस का नहीं है।'

'जीजाजी, जब ओखली में सिर दिया तो मूसलों का क्या डर।'

'अरे तो लियाकत भी तो चाहिए !'

'अजी, पत्थर पर सिन्दूर मलकर उसे देवता बनाया जाता है। सब लोग उसे ही पूजते हैं। चलती का नाम गाड़ी है।'

'पर भाषण तो लीडर लोग दिया करते हैं जोगीराम।'

'लीडर की दुम में क्या सुरखाब का पर होता है। आप जब पार्लियामैंट के एम० पी० और मिनिस्टर बनेंगे तो लीडर आप बने-बनाए हैं।'

'तू तो मेरी भद्द उड़ाने पर तुला बैठा है जोगीराम !'

'जब फूलमालाओं से लाद दिए जाओगे, तब पता लगेगा।'

'अच्छा तो देखा जाएगा। पर भाषण का काम ज़रा मुश्किल है जोगीराम।'

'मुश्किल कुछ नहीं है, जैसे पंचायत में कहा-सुनी होती है, बस वैसे ही भाषण होता है। बस, वहां कोई गैर तो होगा नहीं, सब अपने ही लौंडे-लारे होंगे। उनके सामने काहे की शरम। बस दो-चार बात ध्यान में रखनी हैं, हिंदू धर्म की जय हो, गोवध बन्द हो, पाकिस्तान मुर्दाबाद, काश्मीर हमारा है। बस जै गंगाजी की।'

लाला फकीरचन्द हंस दिए। उन्होंने कहा, 'भाई जोगीराम, तू तो फर्वट हो रहा है। पर मेरे बस का यह धन्धा नहीं है।'

'जीजाजी, जब तुम शेर की तरह लाखों में दहाड़ोगे तो देखना क्या समां बंधता है। चिन्ता न करो! मैं सब ठीक कर लूंगा।'

'तो तू जा न भई, खर्च की बात तो यह कि—समझेंगे एक साल ब्लैक में कमाया ही नहीं।'

'बस, बस, तो समझ लो बानक बना-बनाया है। शाम को मैं आपको ले चलूंगा।'

जोगीराम कृतकृत्य हो वहां से चल दिए। और लाला फकीरचन्द मिनिस्टरी के सपने देखने लगे।

५२

जुगनू का घर दुनिया भर के आवारागर्द शोहदों का अड्डा बना हुआ था। जिन्हें न कोई काम था, न रोज़गार, वे कांग्रेस के वर्कर बने हुए थे। स्कूल-कालेज की पढ़ाई से जी चुरानेवाले, घर से भागे हुए युवक अब देश की धुन में देश के नाम पर गुण्डागर्दी के लिए उधार खाए बैठे थे। लोकसभा के चुनावों की सरगर्मी बढ़ गई थी। जुगनू को कांग्रेस ने उम्मीदवार चुना था। और अब चुनाव जीतने के लिए सब भांति के हथकण्डों की ज़रूरत थी। जुगनू इस बात को जानता था। और उसने इन आवारागर्दों की कीमत समझ ली थी, और घर में लंगर खोल दिया था, चाहे जो आए, खाए, और जुगनू के चुनाव जीतने

में गुण्डागर्दी करके देश की खिदमत करे।

इस चाण्डाल चौकड़ी का चौधरी था, विद्यासागर नियोगी। भगवान ही जानते हैं कि इस सत्पुरुष ने किस कुल को अपने जन्म से धन्य किया था। और इसका वास्तविक नाम क्या था। कोई नहीं जानता था कि इस आदमी की शिक्षा-योग्यता क्या है। परन्तु कांग्रेस के हल्के में इस आदमी की तूती बोलती थी। इसके लिए कोई काम असाध्य न था। दर्जनों बार यह जेल जा चुका था। जाल करने, कर्ज़ा अदा न करने, अवज्ञा आन्दोलन, गरज़ हर सीगे से उसने जेल के सीखचों को सरफराज किया था। परन्तु वह अपनी प्रत्येक जेलयात्रा को मुल्की खिदमत में ही गिनता था। यह आदमी खूब लम्बे डील-डौल का, चेचकरू, आंखें तेज़ और उभरी हुई नाक, अच्छा-खासा पठान लगता था। सदैव मैली-कुचैली खादी का धोती-कुरता पहने रहता। बहुत धीमे से, एकदम गम्भीर बनकर बात करता, बहुत कम हंसता, और प्रत्येक बात में एक शानदार बड़प्पन प्रकट करता था। ईश्वर ही जानता था कि वह कहां से खाता-पीता था। पर अड्डा उसने ज़िला कांग्रेस कमेटी में जमाया हुआ था। वह बहुधा उन सब आवारागर्द छोकरों को, जो अब दरअसल उसके सिपाही थे, नसीहतें देता, पर उनकी कोई शिकायत नहीं सुनता था। बात उनकी सदा धौंस से भरी रहती थी।

और अब तो उसे सुनहरा अवसर मिला था चुनाव लड़ने का। जुगनू से उसकी पुरानी मुलाकात है, तभी की जब जुगनू शोभाराम के अधीन प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी के दफ्तर में काम करता था, और बाद में वहां का ज्वाइण्ट सैक्रेटरी बन गया था। उसने पिछले म्युनिसिपल चुनावों में भी जुगनू की बड़ी मदद की थी। और अब जुगनू का हाथ खुला था। संपदा की उसे कमी न थी, बस उसने विद्यासागर को पूरे अखतियारात सौंप दिए थे। और अब उसने जुगनू के घर पर ही डेरा डाला हुआ था। जनता में उत्तेजना पैदा करने, झगड़े-टंटे पैदा करने, विरोधी गुटों को नीचा दिखाने; खासकर चुनाव के मौकों पर नये-नये हथकण्डे काम में लाने में विद्यासागर यथा नाम तथा गुण था।

एकान्त पाकर उसने जुगनू से कहा, 'मुंशीजी, यह साला फकीरचन्द तो आपका गुर्गा है। लाखों रुपयों का उसे आपने फायदा कराया है। वह आपके मुकाबिले खड़ा हुआ है, बड़ा ही बेहया है। देश के इस दुश्मन को वह पटखनी

दी जानी चाहिए, कि छठी का दूध याद आ जाए उसे।'

'तुम क्या कर सकते हो उसका। पैसेवाला आदमी है, तुम्हारी धौंस में नहीं आएगा।'

'कहिए तो कल ही बीच बाज़ार जूते लगवा दूं।'

'इससे क्या लाभ होगा ?'

'तो जिससे लाभ हो, वही बात बताइए। भगवान की कसम यह मोटे पेट-वाला कांग्रेस के मुकाबिले खड़ा रहा तो मैं तो किसीको मुंह नहीं दिखा सकूंगा।'

'लेकिन तुम करोगे क्या ? यह तो बताओ।'

'देखिए साहब, आप हैं शरीफ आदमी, लेकिन मैं तो जैसे को तैसा हूं। शरीफों के लिए शरीफ ! और लुच्चों के लिए लुच्चा ! फिर यह आपका जाती सवाल नहीं है, कांग्रेस की प्रतिष्ठा का सवाल है। बस, वह सीधी राह नहीं काबू पर चढ़ा तो उसे मैं हलाल ही करके छोड़ूंगा।'

'लेकिन भाई, तुम करना क्या चाहते हो, पहले यह तो कहो।'

'सबसे पहले तो मैं उससे मिलकर मुंह-दर-मुंह बात करना चाहता हूं, बाद में सीधी उंगली से घी नहीं निकला तो फिर मैं हूं और वह।'

'खैर, तुम उससे मिलकर तो बात करो।'

'क्या आप उससे कुछ नहीं कहना चाहते ?'

'नहीं, मैं नहीं चाहता कि मेरा नाम भी उसके आगे आए।'

'तो आप खातिर जमा रखिए, मैं तो कांग्रेस के नाम पर उससे बात करूंगा।'

'अच्छी बात है, करो। और अपना नतीजा मुझे बताओ।'

'ठीक है। मैं आज ही मिल लूंगा।'

५३

मुहल्ले की सभा में लाला लोगों ने लाला फकीरचन्द के धूमधाम से जन-संघ की ओर से खड़े होने का समर्थन किया। मालाएं भी पहनाईं। जोगीराम ने खूब ऊंच-नीच लालाओं को समझाया। उसके कथन का सारांश था कि जनसंघ की छत्रछाया में हिन्दू, हिन्दुस्तान और हिन्दूधर्म फल-फूल सकता है। कांग्रेस में मुसलमान घुसे हैं। कांग्रेसी सरकार एकदम फेल हो गई। कांग्रेस ने पाकिस्तान बनाकर हिन्दुओं को मरवाया। हिन्दूधर्म की लुटिया डुबो दी। हिन्दूधर्म और गो-रक्षा करने के लिए हमें जनसंघ में ही जाना चाहिए। कांग्रेस की सरकार ने टैक्स पर टैक्स लगाकर सब व्यापारियों के नाक में दम कर रखा है। टके के आदमी अफसर बने बैठे हैं और हमें उनकी जी-हुजूरी करनी पड़ती है। रुपया हमारा है, देश हमारा है, पर सरकार हमारी नहीं है। इस सरकार को हटाना होगा। अपने आदमी को पार्लियामैंट में भेजना होगा। आदि-आदि।

लाला लोग बहुत खुश हुए। तालियां पीटीं। एक-दो ने परमिट दिलाने की सुविधाओं की गारंटी चाही, किसी-किसीने अपने नाते-रिश्ते के बी० ए० फेल लड़कों के लिए नौकरी चाही। सबका जवाब जोगीराम ने दिया, 'जब लाला फकीरचन्द पार्लियामैंट की कुर्सी पर बैठेंगे तो फिर देखना जैसे तुम्हीं वहां बैठे हुए हो।'

धकेल-पकेलकर लाला फकीरचन्द को भी जोगीराम ने कुछ कहने को खड़ा किया। दोनों मोटे-मोटे हाथ जोड़कर दीनभाव से लाला फकीरचन्द ने अपनी नालायकी का इज़हार किया, 'सब व्यापारियों में एका होना चाहिए। यह नहीं कि असली घी के और वनस्पति घी के व्यापारी आपस में लड़ें। भई, अपना-अपना माल बेचो। अपना-अपना धन्धा करो। जनसंघ किसीकी आड़ नहीं है। बस एका करो।'

बार-बार हाथ जोड़े लाला फकीरचन्द ने तालियों की गड़गड़ाहट में आसन ग्रहण किया। अपनी पहली स्पीच की सफलता पर मन ही मन खुश होते लाला घर लौटे। अब पार्लियामैंट में स्पीच देने का चाव उनके मन को गुदगुदा रहा था।

५४

विद्यासागर ने छूटते ही लाला फकीरचन्द के मुंह पर तमाचा जड़ा। उसने कहा, 'क्यों लाला, जिस थाली में खाते हो उसीमें छेद करते हो। शर्म आनी चाहिए।' लाला फकीरचन्द हक्का-बक्का हो गए। मुनीम-गुमाश्ते इस लट्ठ के समान उजड्ड और सांड के समान मज़बूत आदमी को देखने लगे। मैले कपड़े, मैला रंग, बढ़ी हुई हजामत। कोरे गुण्डे जैसी सूरत। पर चेहरे पर एक विचित्र गम्भीरता और दृढ़ता। लाला फकीरचन्द ने कहा, 'तुम कौन हो भई और किस नीयत से मेरे घर आकर गालियां दे रहे हो ? तुम्हें यहां आने किसने दिया ?'

'मैं तो जहां जाता हूं, अपनी मर्जी से ही जाता हूं, किसी दूसरे से पूछकर नहीं।'

'दरबान ने नहीं रोका ?'

'उसकी क्या शामत आई थी ? छः महीने हल्दी-गुड़ पीना पड़ता लाला।'

'देखता हूं, तुम हवा से उलझते हो। सिर्फ लड़ने ही के लिए आए हो।'

'लाला लोगों की बुद्धि नहीं होती, पर मेरे आने का कारण तुमने ठीक समझ लिया।'

'लेकिन मेरा तुमसे क्या लेना-देना है।'

'मैं अपने लिए लड़ने नहीं आया, कांग्रेस के लिए आया हूं।'

'मैं क्या कांग्रेस की धौंस में रहता हूं ?'

'नहीं तो कहां रहते हो, कांग्रेस के राज में चोरबाज़ारी करके लाखों रुपये नहीं कमा रहे !'

'कमा रहे हैं, तो तुम्हारा उसमें कुछ साझा है ?'

'मेरा नहीं, मुल्क का साझा है। खाने-पीने से बचा सब रुपया देश का है। लाला, तुम उसे अपनी तोंद में छिपाकर नहीं रख सकते।'

'भई, अजब बेतमीज़ हो, कहता हूं तमीज़ से बात करो।'

'चोरबाज़ार की कमाई पर गुलछर्रे उड़ानेवालों और जी० बी० रोड के कोठों पर रातें बितानेवालों के सामने किसी देशभक्त को तमीज़ से बात करने की क्या परवाह है !'

'अच्छा, तो तुम देशभक्त हो ? मुझे तो पूरे गुण्डे मालूम देते हो ।'

'चोर को पुलिस का सिपाही जमदूत ही लगता है ।'

'भई, मतलब की बात करो, फालतू बात करने का मेरे पास टाइम नहीं है ।'

'काम ही की बात तो कर रहा था । कहता हूं, कांग्रेस के मुकाबिले पार्लियामैण्ट के लिए खड़े होते तुम्हें शर्म नहीं आती ?'

'देखो मिस्टर, तमीज़ से बात करो, यह तुम-तुम क्या करते हो ?'

'तुम-तुम तो तुम कर रहे हो । पहले तुम्हीं तमीज़ से बात करो ।'

'तो क्या तुम मुझे मेरे ही घर में तमीज़ सिखाने आए हो ?'

'नहीं, जानता हूं चोरबाज़ारी करनेवाले लाला लोग तमीज़ नहीं सीख सकते । मैं तमीज़ सिखाने नहीं, तुमसे यह कहने आया हूं कि कांग्रेसी के मुकाबिले खड़े होने में तुम्हें शर्म आनी चाहिए ।'

'क्यों आनी चाहिए ? मैं अपने दिल का मालिक हूं, किसीका इजारा है ? मुनीमजी, समझाओ इन्हें ।'

'मुनीमजी को जाली और झूठे बहीखाते लिखने दो लाला । मैं तुमसे पूछता हूं, तुम मेरी बात का जवाब दो ।'

'तो भाई साहब, आप चाहते क्या हैं, यह बताइए । मैं आपकी क्या सेवा कर सकता हूं ?'

'अरे वाह लाला, आप तो तमीज़ से बात करने लगे । तो सुनिए, मैं आप-से यह कहने आया हूं कि कांग्रेस की मुखालिफत करना देशद्रोह है । आप कांग्रेस के मुकाबिले मत खड़े हूजिए । आपको मालूम है, कांग्रेस ने शहरी हल्के से मुंशी जगनपरसाद को खड़ा किया है । उनके आपपर अहसानात भी कम नहीं हैं—लाखों रुपया आपने उन्हींकी मार्फत कमाया है, आप और नहीं तो उन्हींका लिहाज़ कीजिए ।'

'पर मैं क्या कर सकता हूं, मुझे तो मजबूर किया जा रहा है । मैं तो इस इल्लत में पड़ना नहीं चाहता । मुंशी साहब का भी मुझे बहुत लिहाज़ है ।'

'सो वह लिहाज़ आप इस तरह पूरा कर रहे हैं !'

'भई, सब व्यापारी और भाईबन्द मेरे पीछे पड़ गए, उनका लिहाज़ करना जरूरी हो गया, आप जानो रात-दिन का काम ठहरा उनसे । उनकी बात तो

रखनी ही पड़ेगी। नाते-रिश्तेदारी भी तो भुगतनी पड़ती है।'

'तो ऐसा करो लाला, सांप भी मरे न लाठी टूटे। देखिए, आप शहर के नामी-गिरामी व्यापारी हैं। आपको पार्लियामैंट में ज़रूर जाना चाहिए, पर आप कांग्रेस के खिलाफ मत खड़े होइए। कांग्रेस के टिकट पर खड़े होइए।'

'ना बाबा, कांग्रेस के तो मैं पास भी नहीं फटकने का। कांग्रेस की करनी तो ऐसी है कि बीच खेत उसे मारे। ऐसे-ऐसे शिकारी कुत्ते व्यापारियों पर छोड़ रखे हैं कि जान तंग है। अंग्रेज़ी राज बहुत अच्छा था बाबू। अब अंग्रेज़ी राज से तिगुनी तो रकम भरनी पड़ती है। और काम के नाम अंगूठा। इन्कम टैक्स के मारे नाक में दम है। और ज़रा-ज़रा से कोटे के लिए नाक रगड़नी पड़ती है।'

'लालाजी कांग्रेस में लाख बुराई हो, पर जनसंघ से हज़ार दर्जे अच्छी है। जनसंघ ने लड़ाई-भिड़ाई और आग लगाने को छोड़कर और किया ही क्या है! कांग्रेस ने देश को आज़ादी दी है। फिर अब तो कांग्रेसी ही राज है, यह भी तो सोचो। जनसंघ का उम्मीदवार तो बस एम० पी० ही बनेगा, पर कांग्रेस का उम्मीदवार मिनिस्टर भी बन सकता है। मुख्यमन्त्री भी बन सकता है।'

'अजी ये तो कोरी बातें ही बातें हैं। हम ठहरे व्यापारी। हमें तो घाटा ही घाटा है। सप्लाई का एक मामूली-सा ठेका है, जिसके लिए दौड़ते-दौड़ते नाक में दम हो गया। पर कल-परसों हो रही है। एम० पी० बनना भी एक व्यापार ही है भाई साहब।'

'खैर, कितने मुनाफे का काम है?'

'आप समझिए पांच-सात लाख तो कहीं नहीं गए।'

'आप ही कर दो पूरा काम बाबू, दस हज़ार नज़र कर दूंगा आपकी।'

'देखिए लालाजी, मैं देश का सेवक और कांग्रेस का खादिम हूं, मेरे साथ सौदा करने की कोशिश मत कीजिए। लेकिन कहां हैं कण्ट्राक्ट के कागज़ देखूं?'

'लीजिए,' लाला फकीरचन्द ने कागज़ विद्यासागर के हाथ में दे दिए। उनपर एक नज़र डालकर विद्यासागर ने कहा, 'रेलवे का ठेका है न?'

'एक रेलवे का है दूसरा खाद कारखाने के बनाने का है।'

'उसके कागज़ात कहां हैं?'

लाला फकीरचन्द ने वे कागज़ भी विद्यासागर को दे दिए, उन्हें जेब में

डालकर विद्यासागर ने आहिस्ता से कहा, 'कल रात को मुंशी से मिलना होगा लाला।'

'मिल लेंगे, मुंशी तो हमारे जिगरी दोस्त हैं, प्यारे हैं। पर मुलाकात कहां होगी ?'

'चैम्सफोर्ड क्लब में, नौ बजे। भूलना नहीं।'

'वाह भूलने की भी एक ही कही।'

'तो मैं चला।'

'यह क्या बाबू साहब, तुमने नहीं, नहीं, आपने तो कुछ खाया-पिया भी नहीं। चाय-वाय तो पिओ।'

'चाय रहने दीजिए। सिर्फ मेरा नाम याद रख लीजिए। मेरा नाम विद्यासागर नियोगी है।'

'बहुत अच्छा नियोगी साहब, जय रामजी की।' फकीरचन्द ने उठते हुए कहा। पर विद्यासागर इसकी बिना ही परवाह किए चलता बना।

५५

इस बातचीत के दूसरे ही दिन जनसंघियों का एक विराट जलसा रामलीला ग्राउण्ड में हो रहा था। जनसंघ ने अपने पांच उम्मीदवार खड़े किए थे। तीन लोकसभा के लिए, और दो राज्यसभा के लिए। जिनमें तीन लाला लोग थे। सबसे मोटे आसामी लाला फकीरचन्द थे। जलसे में बड़ी भारी सरगर्मी थी। हज़ारों बत्तियों के प्रकाश से विराट सभा-भवन जगमग कर रहा था। इस जलसे की शोभा बढ़ाने को स्वयं गुरुजी आए थे। और भी बड़े-बड़े हिन्दू नेता थे, जिनके गर्जन-तर्जन से सभामंच थरथरा रहा था। परंतु सबसे ज़बर्दस्त प्रभावशाली भाषण हुआ पण्डित गोपाल मालवीय का। मालवीयजी का पुराना पुण्यपूत नाम, ब्राह्मण की शुद्ध नैष्ठिक धज, धोती, चपकन, दुपट्टा और माथे पर बड़ा-सा तिलक, जैसे साक्षात् महामना का अवतार हों। भाषण धीरे-धीरे शुरू हुआ। और क्षण-क्षण में गर्जन-तर्जन में परिवर्तित होता गया। पहले भारतवर्ष की प्रशस्ति गाई गई। गीता और महाभारत के श्लोक पढ़े गए। फिर मुस्लिम

आक्रान्ताओं, मुस्लिम राज्यों, मुस्लिम अत्याचारों की बढ़-चढ़कर सूची पेश की गई। हिन्दू धर्म, हिन्दू जाति के प्रति गहरी आस्था प्रकट की गई और उत्तेजना के बढ़ते हुए वातावरण में चर्चा शुरू हुई विभाजन की, पाकिस्तान की, शरणार्थियों की, कत्लेआम की। रोमांचकारी दृश्य, खून को खौला देनेवाले प्रकरण, सिहरन पैदा करने वाले विवरण, सब एक मंजे हुए वक्ता के मुंह से मशीनगन की गोलियों की भांति निकलते आ रहे थे। लोग सन्नाटा खींचे सुन रहे थे। क्षण-क्षण में तालियां गड़गड़ा रही थीं और जनसंघ के उत्तेजक नारे लगाए जा रहे थे। वक्ता भाषण करते-करते मंच पर ही रो पड़े—लाखों निष्कासितों के करुण पलायन, बलात्कार, कत्लेआम का वर्णन करते हुए। और उनके साथ हज़ारों आंखें भी गीली हो रही थीं। भाषण नहीं था पिघला हुआ शीशा था, जो एक लाख से भी अधिक नर-नारियों के कानों में उंडेला जा रहा था।

धीरे-धीरे भाषण का उपशमन हुआ। वक्ता फिर शान्त भाव से मंच पर बैठ गए। अपनी सफलता पर उन्हें गर्व था। जय-जयकार का तुमुल हर्षनाद, तालियों की गड़गड़ाहट। वज्र-गर्जन के समान सम्मिलित कण्ठों के नारे, सब मिलकर एक अजब समां बांध रहे थे। और उसी समय खड़े हुए गुरुजी। भव्य मूर्ति, अटपटी-सी दाढ़ी, दुर्बल तन, गेरुआ परिधान, त्याग-तप की मूर्ति, संयत स्वर में जैसे पूर्ववक्ता के भाषण का उपसंहार कर रहे थे। उनके भाषण के बाद उम्मीदवारों का प्रदर्शन किया गया। नाटक के अभिनेताओं की भांति पांचों उम्मीदवार विचित्र भाव-भंगी से मंच पर खड़े बारम्बार जनता को झुक-झुककर अभिवादन कर रहे थे। और जनता तालियां बजाकर संतोष और हर्ष प्रकट कर रही थी। पर यह हर्ष भाषण का प्रभाव था, या इन जन-प्रतिनिधियों के चुनाव की पसन्द का, यह जनता नहीं जानती थी। जानते थे केवल जनसंघी नेतागण, जिन्हें भाषणों का वज़न मालूम था।

५६

लाला फकीरचन्द सभा-भवन से सीधे चैम्सफोर्ड क्लब पहुंचे। विद्यासागर वहां उनकी प्रतीक्षा कर रहा था। वही उसका मैला लिबास, लापरवाही से मिला हुआ व्यक्तित्व। ज़रा-सा मुस्कराकर उसने लाला का स्वागत किया। उसने कहा, 'मुंशीजी आ गए हैं। परन्तु एक बहुत ही अहम् मसले पर पंजाब के मुख्यमन्त्री साहब से परामर्श कर रहे हैं। हमें ज़रा प्रतीक्षा करनी होगी।'

लाला फकीरचन्द का इस क्लब में आने का प्रथम ही अवसर था। हकीकत यह थी कि वे यहां आने का कभी साहस ही नहीं कर सकते थे। अंग्रेज़ी राज्य में तो इधर कोई हिन्दुस्तानी बड़े से बड़ा अफसर आंख उठाकर देख भी नहीं सकता था। और अब भी यहां बड़े लोग ही, मिनिस्टर, एम० पी० और उनसे सम्बन्धित जन, आ सकते थे। यहां आने की अपनी योग्यता प्रकट करने के लिए लाला फकीरचन्द अंग्रेज़ी सूट पहनकर आए थे, जो उनके बेडौल शरीर और भद्दे चेहरे पर अजीब-सा लग रहा था। खासकर इसलिए भी कि वे इस लिबास को पहनने के अभ्यस्त न थे। विद्यासागर ने उन्हें एक ओर ले जाकर एक सोफे पर बिठाया और कुछ पीने का आर्डर वेटर को देकर बातचीत का सिलसिला शुरू किया। लालाजी की नज़र में विद्यासागर की इज़्ज़त बहुत बढ़ गई थी। उन्होंने दोनों हाथ जोड़कर उनसे पिछली मुलाक़ात में की गई बेअदबी की माफी मांगी। वे बारम्बार खुशामद और चापलूसी प्रकट कर रहे थे। लिबास भले ही विलायेती सभ्य पुरुष का धारण किया था उन्होंने, पर थे तो कोरे लाला।

आधा घण्टा प्रतीक्षा करने के बाद उन्हें मुंशी जगनपरसाद साहब के हुज़ूर में पेश किया गया। वही मुंशी जगनपरसाद हैं, जो एक दिन उनके साथ वेश्या के कोठे पर रात काट चुके थे। पर आज उनके दौरदौरे ही कुछ और थे। उनकी मुलाकात के लिए उन्हें आध घण्टा प्रतीक्षा करनी पड़ी थी।

लाला को कमरे में धकेलकर विद्यासागर बाहर ही रह गया था, कमरे में जाकर लाला ने देखा, एक परम सुन्दरी रूपसी बाला मुंशी की बगल में बैठी है। लीहलैस जाकेट और पारदर्शी नाइलोन की साड़ी में उसका नया यौवन आर-

पार दीख रहा था। दोनों के सामने शराब के गिलास भरे रखे थे। लाला देखकर हक्के-बक्के हो रहे थे। वे बौखलाकर हास्यास्पद चेष्टाएं करने लगे।

जुगनू ने लाला की खुशामद से भरी हुई हास्यास्पद चेष्टाओं की कुछ भी परवाह न कर ज़रा मुस्कराकर कहा, 'आइए लाला फकीरचन्द साहब, कहिए मिज़ाज तो अच्छे हैं। पर मैं आपको दस मिनट से ज़्यादा न दे सकूंगा। लेकिन मैं समझता हूं, सब बातें तय हो चुकी हैं। आप जनसंघ की उम्मीदवारी छोड़ने को तैयार हैं न?'

लाला पर जुगनू का रुआब छाया हुआ था। उन्होंने ज़रा इधर-उधर करके कहा, 'कैसे कहूं, मेरी गति सांप-छछूंदर जैसी हो रही है।'

'तो आप जनसंघ का चुनाव लड़िए। आपके मुकाबिले में मैं आपका पुराना दोस्त हूं, कांग्रेसी। मेरा खयाल है आपके दो लाख रुपये ठण्डे हो जाएंगे, और अन्त में आपको कामयाबी नहीं मिलेगी। पिटेंगे आप ज़रूर।'

'लेकिन...'

'देखिए लालाजी, बहस के लिए मेरे पास समय नहीं है। मैं सिर्फ काम की बात करना पसन्द करता हूं। आप चाहें तो कांग्रेस से सुलह कर सकते हैं।'

इसी समय बाला ने एक पैग भरकर लाला की ओर बढ़ाया, और बंकिम कटाक्षपात करते हुए हंसकर कहा, 'यह लीजिए, सुलह का पैगाम।'

जुगनू ने मुस्कराकर लाला की ओर देखा। लाला फकीरचन्द ने कहा, 'सुलह कैसी साहब?'

'बताता हूं, पहले गिलास उठाइए, तकल्लुफ न कीजिए।' लाला ने चुस्की भरी। जुगनू ने कहा, 'कांग्रेस आपका मुकाबिला छोड़ देगी, अपने हल्के से आप बिना प्रतिद्वन्द्वी चुन लिए जाएंगे। लेकिन दो शर्तें हैं।'

'कौन-कौन-सी?'

'एक यह कि आप दो लाख रुपया कांग्रेस को दें। दूसरी आप कांग्रेस के टिकट पर चुनाव लड़ें।'

'मुझे आप सोचने का कुछ मौका दीजिए।'

'एक मिनट का भी नहीं। आप मेरे दोस्त हैं। दोस्ती का हक जितना निबाह सकता था निबाह चुका, आप सोचते रहिए, मुलाकात खत्म।'

बाला ने हंसते हुए उनके निकट खिसककर एक कागज़ उनकी ओर बढ़ाते

हुए कहा, 'यह लीजिए कांग्रेस का टिकट। समझदारी से काम लीजिए, इस फार्म पर दस्तखत कर दीजिए।' उसने अपना कीमती फाउण्टेन पैन उनकी ओर बढ़ाया। लाला इस समय बाला के शरीर से आती हुई सैंटों की सुगन्ध से शराबोर हो रहे थे। उन्होंने फिर एक चुस्की भरकर ज़रा बेतकल्लुफी प्रकट करके कहा, 'तो आप हुक्म दे रही हैं?'

'खैर, यही समझ लीजिए।'

'तो लाइए, आपका हुक्म मैं नहीं टाल सकता।' उन्होंने दस्तखत कर दिए। और फिर समूचा गिलास चढ़ा लिया।

जुगनू ने कहा, 'चैक आप विद्यासागर को दे दीजिए।'

'किसके नाम का चैक दूं?'

'ज़िला कांग्रेस कमेटी के सैक्रेटरी के नाम। आप अपनी कार में आए हैं?'

'जी नहीं, मैं टैक्सी में आया हूं।'

'तो माधुरी, तुम लालाजी को छोड़ती जाना, मैं अभी ज़रा बाकी काम खत्म कर लूं। अच्छा लालाजी, आप मेरी मुबारकबादी स्वीकार कीजिए। कामना करता हूं, आप एक दिन मिनिस्टर बनें।' जुगनू ने खड़े होते हुए कहा।

लाला ने भी 'आपकी कृपा है' कहकर हाथ जोड़कर नमस्कार किया। माधुरी के साथ वे बाहर आए। विद्यासागर वहीं प्रतीक्षा कर रहा था। उसने पूछा, 'आपकी बातचीत सफल हुई लालाजी?'

'जी हां, आपकी कृपा से।'

'तो यह लीजिए...' उसने जेब से कुछ कागज़ निकालकर लाला के हाथों में थमा दिए। उनपर एक नज़र डालकर लाला ने देखा तो उनकी बाछें खिल गईं। वही कोटे के परमिट थे। लाखों के मुनाफे का सूत्र उनकी मुट्ठी में था, जो इस प्रकार मानो जादू के ज़ोर से इस खब्ती-से आदमी ने कर डाला था।

उन्होंने कृतज्ञता की दृष्टि विद्यासागर पर डाली। कहा, 'आपने बड़ी कृपा की। हां, कल तो आप मेरे पास आ ही रहे हैं।'

'आ जाऊंगा, अच्छा, नमस्कार।' विद्यासागर ने लापरवाही से रूखा नमस्कार किया।

फिर माधुरी ने मधुर स्वर से कहा, 'चलिए।'

और वे उसकी बगल में कार में आ बैठे।

५७

दिल्ली के प्रसिद्ध व्यवसायी लाला फकीरचन्द ने जनसंघ को त्यागकर कांग्रेस के टिकट पर चुनाव लड़ने का निश्चय किया है, साथ ही कांग्रेस को दो लाख रुपयों का दान दिया है, यह खबर आनन-फानन नगर में फैल गई ; पत्रों ने बड़े-बड़े चित्रों के साथ उनका प्रशस्ति-गान किया। जनसंघ में इससे भारी क्षोभ छा गया। जनसंघियों ने उनकी सात पीढ़ियों के सच्चे-झूठे गुण-दोषों के विवरण बड़े-बड़े पोस्टरों में छापकर नगर में लगाए। अनुकूल और प्रतिकूल वातावरण में एक सप्ताह तक लाला फकीरचन्द नगर के प्रमुख लक्ष्यबिन्दु बने रहे। मुंशी जगनपरसाद ने उनके लिए अपनी उम्मीदवारी वापस ले ली है, इसकी चर्चा ने जुगनू के सुयश में भी चार चांद लगा दिए। कांग्रेस ने उनके लिए तुरन्त राज्यसभा के लिए एक सीट की व्यवस्था कर दी। उधर जनसंघ ने लाला फकीरचन्द के मुकाबिले जोगीराम को खड़ा कर दिया। लाला लोग जोगीराम को लेकर खूब हुल्लड़ मचाने लगे। अब तो दोनों ओर से चुनाव के सारे ही हथकण्डे आज़माए जा रहे थे। कांग्रेस की प्रभातफेरियां निकल रही थीं, और जनसंघ के बड़े-बड़े जुलूस निकल रहे थे। दोनों के प्रोपेगेण्डा में दिल्ली झूले में झूल रही थी।

जनसंघ का चुनाव-क्षेत्र नगर के मध्य भाग के लाला लोगों के मुहल्ले ही में था। वहां दिन-रात भट्टी सुलगती रहती थी। और कढ़ाई में पूरी-हलुआ प्रचारकों और स्वयंसेवकों के लिए तैयार होता रहता था। गोस्वामी गीतानन्द अपनी शिष्यमण्डलीसहित यहां जमे थे। नित्य उनके कभी इस मुहल्ले में, कभी उस मुहल्ले में प्रवचन होते थे। वे प्रत्येक घर में जाते, कमण्डलु से गंगाजल गृहस्थ के हाथ पर टपकाते और गोवध नहीं होगा, वे वचन लेते थे। भला कौन हिन्दू इस वचन की अवहेलना कर सकता था ! हज़ारों आदमी उनके भक्त बन गए थे। भक्तजन उनके तप-त्याग के बड़े-बड़े तराने गाते रहते थे। तीसरे पहर से ही स्वयंसेवकों का जुलूस जनसंघ के नारे लगाता, नगर के गली-कूचों में चक्कर लगाने लगता था। नागरिकों के तरुण पुत्र अधिकांश में स्वयंसेवकदल में सम्मि-लित थे। और स्वाभाविक था कि उनके माता-पिता की सहानुभूति भी उन्हींके

साथ थी। जब वे 'देश में गोवध नहीं होगा', 'हमारा देश अखण्ड है', 'काश्मीर हमारा है', के नारे लगाते, तो धर्मभीरु स्त्री-पुरुष भाव-विमोहित हो इन नारों का मन ही मन अनुमोदन करते थे। परन्तु इन नारों से चुनाव का क्या सीधा सम्बन्ध है, इसपर वे विचार नहीं करते थे। कर भी नहीं सकते थे। न उन्हें इसी बात की परवाह थी कि किस ओर से कौन उम्मीदवार है, और उसकी व्यक्तिगत योग्यता क्या है। बस वे तो यही जानते थे कि जनसंघ और कांग्रेस की टक्कर है। जनसंघ गोहत्या का विरोध करता है, देश को अखण्ड कहता है, काश्मीर पर दावा करता है। अवश्य ही कांग्रेस इन बातों की विरोधिनी होगी, अतः कांग्रेस की अपेक्षा जनसंघ ही ठीक है। बस जनसंघ का बोलबाला बुलन्द हो रहा था।

५८

कांग्रेस पार्टी के सारे आन्दोलन का नेतृत्व विद्यासागर कर रहा था। लाला फकीरचन्द के दिए दो लाख रुपयों को इस चुनाव में खर्च करने का उसे पूरा अधिकार मिला हुआ था। अब जुगनू राज्यसभा के लिए नामज़द हो चुका था, जिसके मुकाबिले जनसंघ ने संघ के प्रसिद्ध बंगाली सदस्य फणीन्द्र बनर्जी को खड़ा किया था। यह जोड़-तोड़ पहले से भी कड़ा था और अब दोनों दलों में चालें चली जा रही थीं। श्यामाप्रसाद मुकर्जी का देहान्त संदिग्ध अवस्था में काश्मीर में हो चुका था। इसी स्टंट को लेकर फणीन्द्र बाबू ऐसी आग बरसा रहे थे कि कांग्रेसी भी उनके सामने नहीं ठहर सकते थे। फणीन्द्र बाबू बड़े भारी वाग्मी और बंगाल के प्रसिद्ध वकील थे। यह एक मार्के की बात है कि हिन्दूसभा, राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और अब जनसंघ—सभीके चोटी के नेता या तो बंगाली थे या महाराष्ट्रीय। उत्तर भारत के करोड़ों जन उनके अधीन थे, उन्हें अपना नेता मानते थे। जनसंघ का कोई तेजस्वी नेता न दिल्ली में था न उत्तर प्रदेश में। सारी जमापूंजी बंगाल की और महाराष्ट्र की थी। फिर भी उसका सबसे अधिक प्रभाव लाला लोगों पर था, जो स्वभाव से ही धर्मभीरु होते हैं, और आसानी से काबू में लाए जा सकते हैं।

परन्तु विद्यासागर भी एक ही टेढ़ी खोपड़ी का आदमी था। वह बहुत कम बोलता था। पर मार उसकी बड़े गज़ब की होती थी। सबसे बड़ी बात यह थी कि वह पूरा फक्कड़ आदमी था, और लोभ, लालच, भय, धमकी उसपर कुछ भी असर नहीं करती थी। सभी कांग्रेसी यह बात जानते थे और उसपर विश्वास करते थे। जेल में जाकर उसने जेल अधिकारियों के नाक में दम कर दिया था। यहां कांग्रेस के बड़े से बड़े अधिकारी को वह डांट देता था। जुगनू भी उससे दबता था। जुगनू के कुछ दोष उसपर प्रकट थे, परन्तु उसे कांग्रेस ने खड़ा किया था, यह कांग्रेस की नीति थी, अतः वह अन्धभक्ति से उसका समर्थन कर रहा था। जुगनू उसकी बहुत खातिर भी करता था। इसके अतिरिक्त विद्यासागर को जुगनू की पोल का भी पता न था। वह उसे विद्वान और कर्मठ कांग्रेसमैन समझता था। शोभाराम पर उसकी श्रद्धा थी, और जुगनू शोभाराम का आदमी था, एक बात यह भी थी। एक दिन भोर ही विद्यासागर लाला फकीरचन्द की कोठी पर जा पहुंचा। लाला फकीरचन्द अभी सोकर ही उठे थे पर उन्होंने बड़ी आवभगत की विद्यासागर की। विद्यासागर की कीमत वे जान गए थे; जिसने बात की बात में लाखों के मुनाफे के परमिट ला दिए थे। पर विद्यासागर ने ज़रा नरमाई से कहा, 'लालाजी, मैं तो आपसे ज़रा मतलब की बात करने आया हूं। आप अपनी जात-बिरादरी और मुहल्ले के लोगों को अपने काबू में रखिए। जोगीराम उन्हें आपके विरुद्ध भड़का रहे हैं।'

'खूब याद दिलाई आपने। बिरादरी के चौधरी हैं लाला दीवानचन्द, अपने ही आदमी हैं। कारोबार भी हमारा है उनके साथ। मैं उन्हें पकड़ता हूं—वे काम बना देंगे।'

'तो और बाहर से तो मैं निबट लूंगा। आप अभी चले जाएं लाला दीवानचन्द के पास।'

'बहुत अच्छा, लेकिन आप तो चल ही दिए। कुछ जलपान नहीं कीजिएगा?'

'नहीं और मुझे बहुत काम है।'

विद्यासागर के चले जाने पर लाला फकीरचंद ने मन ही मन कहा, 'आदमी हीरा है। पर है ज़रा बेढब।' इसके बाद वे जल्दी-जल्दी आवश्यक कृत्यों से निबटकर लाला दीवानचंद के पास पहुंचे।

लाला दीवानचंद पुराने ज़माने के खुशदिल आदमी थे। तबियत के चौधरी।

लम्बा डीलडौल, भरा हुआ शरीर, ऊंची करारी आवाज़, भारी चेहरे पर भारी-भारी सफेद मूंछों का गुच्छा। बगलगीर होकर लाला फकीरचंद से मिले। बातचीत आरम्भ हुई।

'कहो लाला, आज कैसे इधर भूल पड़े, क्या हाल-चाल है काम-धन्धे का ?'

'लाला, काम-धन्धा तो इस वक्त दूसरा ही चल रहा है।'

'कोई नया धन्धा उठा लिया है क्या ?'

'क्या कहूं, लोगों ने ज़बर्दस्ती उम्मीदवार खड़ा कर दिया है। अब चुनाव जीतना होगा। मेरे बूते का काम तो है नहीं। बस दौड़ा-दौड़ा तुम्हारे ही पास आया हूं। तुम जानो मुल्ला की दौड़ मस्जिद तक।'

'वही कमेटीवाला मामला है क्या ? एक बार तो पिट चुके हो। अब फिर खड़े हो गए ?'

'पर इस बार सब कसर निकाल लेनी है। अबकी बार पार्लियामैंट की कुर्सी पर बैठूंगा।'

'चलो अच्छा ही है। भई, हम तो तुम्हारी बढ़ोतरी चाहते हैं। कहो, मुझे क्या करना होगा ?'

'इलाके में जितने बिरादरी के आदमी हैं, वे सब अपनी मुट्ठी में होने चाहिए। बस इतना ही काम है।'

'तो यह कौन मुश्किल काम है ! कौन सुसरा मेरे सामने सिर उठा सकता है ! पर मुकाबिले में कौन खड़ा हुआ है ?'

'जोगीराम है।'

'जोगीराम ! छिः, कल ही से उसकी दलाली बन्द कर देंगे। तुम्हारे मुकाबिले जोगीराम क्या खाकर आएगा लाला फकीरचंद !'

'यह बनिए की जात ही ऐसी है लाला, कि अपनी ही काट करती है।'

'तो फिक्र न करो लाला, बिरादरी-भाई एक भी तुम्हारे खिलाफ नहीं जा सकता।'

लाला फकीरचंद ने हाथ जोड़कर कहा, 'बस, अब तुम्हारा ही आसरा है चौधरी, यह तुम्हारे ही बल-बूते का काम है। खर्च की परवाह नहीं। पर काम ऐसा होना चाहिए कि पौ-बारह।'

'फिक्र न करो प्यारे, फिक्र न करो। बस दो ही चार दिन में अपनी

धर्मशाला में सबको इकट्ठा करेंगे। सबसे कौल ले लेंगे।'

'बस इज़्ज़त तुम्हारे ही हाथ है।'

इतना कहकर लाला फकीरचन्द वहां से चल दिए।

५९

समाज की रचना जिन पुरुषों ने की है, तथा नीति-निर्धारण जिन्होंने किया है, उन्हें हम निर्दय, निर्मम कहें तो अनुचित नहीं है। समाज-रचना का सारा ही ढांचा आर्थिक है। सम्पत्ति के चारों ओर मानव-जीवन को कसकर बांध दिया गया है। निर्दयता की चरम सीमा वहां पहुंचती है जहां समाज ने स्त्री-पुरुष को मिलाकर बांधा है। उनके स्त्रीत्व-पुरुषत्व की अवहेलना करके और पति-पत्नीत्व की एक कृत्रिम परिधि बनाकर न जाने युग-युग से कितनी अनीतियां, दुराचार और अपराध उस परिधि की सीमाओं को तोड़ने के लिए होते रहे हैं और आगे होते रहेंगे।

असभ्य युग में नर-नारी का सीधा सम्बन्ध था। उसपर पत्नीत्व का खोल नहीं चढ़ाया गया था। आज जिस प्रकार पशु-पक्षी नर-मादा के अपने वैशिष्ट्य को मुक्त रूप में काम में लाते हैं वैसा ही उस युग में नर-नारी का भी संयोग था। परन्तु मनुष्य आर्थिक उपादानों में आगे फंसता गया और उसीके आधार पर नर नारी को भी अपने साथ बांधता चला गया। और वह समय भी आया जब नारी नारी न रह गई, एक कीमती रत्न बन गई। पुरुष पत्थर ही बने रहे पर नारी रत्न बन गई और वह तब से अब तक सभ्य जीवन में सभ्यता के नाम पर उस पत्थर के साथ बंधी रहकर अपना सारा ही व्यक्तित्व खो चुकी है। सभ्य समाज नारी-स्वातन्त्र्य की हास्यास्पद चेष्टा करता चला आ रहा है, पर अवश नारी जिस दासता के बंधन में बंधी है वह उस युग से कम हीन नहीं है जब दास-दासी भेड़-बकरियों की भांति बाज़ारों में मोल बेचे जाते थे। मज़ेदार बात यह है, रत्नों के मूल्य की अधिकता का कारण उनकी दुर्लभता है। पर नारी आज नर के लिए दुर्लभ नहीं है, फिर भी वह रत्न है, नर पत्थर है। स्त्री में कुछ नैसर्गिक गुण हैं। उसमें रूप है, माधुर्य है, कोमलतम भावनाएं हैं,

प्रेम है, और है आत्मसमर्पण की भावना। कष्ट सहन करने में उसकी समता पुरुष नहीं कर सकते। पुरुष की लालसा की तृप्ति करने में दुनिया की कोई वस्तु नारी की समता नहीं कर सकती। राम-रावण का युद्ध, कौरव-पांडवों का युद्ध, ट्राय का राज्य-विध्वंस नारी की बहुमूल्यता के साक्षी हैं। मनु का यह वाक्य कि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः' नारी के महत्त्व पर यत्किंचित् प्रकाश डालता है, परन्तु नारी की यह बहुमूल्यता, यह पूजा उसके उन नैसर्गिक गुणों के कारण नहीं है जो उसमें हैं और अभी ऊपर जिनकी हमने चर्चा की है। नारी का सबसे बड़ा मूल्य केवल एक बात में ही निहित है कि वह पति के लिए उसकी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी उत्पन्न करती है। और यदि किसी नारी में यह योग्यता न प्रमाणित हो—वह पति की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी न उत्पन्न कर सके, तो वह चाहे भी कैसी रूप, गुण, त्याग, शीलसम्पन्न हो, कैसी भी पद्मिनी जाति की नारी हो, पत्नी वह दो कौड़ी की भी नहीं है। यह है अन्तर पत्नी में और नारी में, जो नारीत्व के समूचे व्यक्तित्व को पत्नीत्व से पृथक् करता है।

पत्नीत्व के साथ ही एक और दूसरा गुण है जो नारी का नहीं, पत्नी का ही सद्गुण है, वह है सतीत्व अथवा पातिव्रत। यह गुण कोरा गुण ही नहीं है, धर्म है। इसे धर्म की संज्ञा दी गई है। रामायण, पुराण, महाभारत सभीने इस धर्म के महत्त्व को पत्नी का चरम धर्म बताया है। इस धर्म की महिमा का बखान ऐसा है कि उसे हास्यास्पद कहा जा सकता है। एक पतिव्रता पत्नी अपने कोढ़ी पति को कंधे पर चढ़ाकर उसकी कामवासना की पूर्ति के लिए एक वेश्या के पास ले जा रही थी कि किसी सूली पर लटकते हुए महात्मा ने उसे शाप दिया कि वह सूर्योदय के साथ ही विधवा हो जाएगी। बस सती-पतिव्रता के प्रताप से उस दिन सूर्योदय ही नहीं हुआ। संसार अंधेरे में डूब गया। तब सारे देवताओं ने सती की चिरौरी की। अब शापमुक्त होकर सती ने सूर्य को उदय होने की आज्ञा दी। पतिसेवा में रत एक दूसरी पतिव्रता ने ऐसे महात्मा को भिक्षा के लिए देर तक खड़े रखा जिसने दृष्टि-मात्र से चिड़िया को मार दिया था। उसे ऐसी दिव्यदृष्टि प्राप्त थी कि वह महात्मा की इस सामर्थ्य को भी जान गई थी। और महात्मा के क्रुद्ध होने पर व्यंग्य करना नहीं भूली।

अब आप इस सतीत्व या पातिव्रत धर्म का मिलान कीजिए हमारे पूर्वोक्त

उस कथन से जहां नारीत्व को पत्नीत्व से पृथक् किया गया है और पत्नी के सब शील-गुणों के ऊपर सब योग्यताओं के ऊपर है पति के सम्पत्ति की उत्तराधिकारी को उत्पन्न करने की योग्यता।

हकीकत यह है कि यह पति की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी होना चाहिए शत-प्रतिशत पति का ही पुत्र। पति की सम्पत्ति यदि किसी ऐसे पुत्र को चली जाए जिसमें एक प्रतिशत भी सन्देह हो कि यह दूसरे पुरुष के वीर्य से उत्पन्न हुआ हो सकता है तो उत्तराधिकार और दायभाग का समूचा ही हिंदू कानून, जिसकी बहुत सावधानी से व्याख्या धर्मशास्त्रों में की गई है, गड़बड़ में पड़ जाए। स्वोपार्जित सम्पत्ति पुरुष की सर्वोपरि वस्तु है। पुरुष जीते-जी उसे स्वेच्छा से भोग करने का अधिकार रखता है। उसे वेश्या को दे सकता है। शराबखोरी में, जुए में बर्बाद कर सकता है परन्तु मरने के बाद वह केवल उसीके वीर्य से उत्पन्न पुत्र को ही मिलनी चाहिए। यही हिन्दू उत्तराधिकार-कानून है, यही हिन्दू धर्मशास्त्रों की मीमांसा है।

पत्नी को यदि बाहर के संसार की हवा लग जाए तो किसी परपुरुष से उसका सम्पर्क हो जाने का भय है। इसलिए पत्नी पर बहुत-बहुत सामाजिक बंधन हैं। वह कोरी पति की पतिव्रता पत्नी ही नहीं है; परिवार में किसीकी भाभी, देवरानी, जिठानी, चाची, ताई आदि भी है। ये सारे बंधन उसे कसकर पति के प्रति सतीत्व से बांधे हुए हैं। इन बंधनों के द्वारा उसे यत्किंचित् सांस लेने की छूट दी गई है कि पुरुष के नाते इन नातेदारों से एक मर्यादा में हिलमिल सकती है। परन्तु ये सामाजिक बंधन जैसे यथेष्ट नहीं हैं, इसलिए उसपर आध्यात्मिक, धार्मिक और पातिव्रतधर्म का बंधन है जो जन्म-जन्मान्तर तक उसे स्वर्ग में ले जाने की क्षमता रखता है। उसका यह पातिव्रत धर्म केवल पति के जीवित रहने तक ही सीमित नहीं है, पति के मर जाने पर भी कायम है जब तक कि वह स्वयं न मर जाए। पति के मर जाने पर भी उसे मृत पति की पतिव्रता विधवा रहना चाहिए। यह उसका सबसे श्लाघनीय पत्नीधर्म है। एक बात और, यह पुत्र नाम का पदार्थ, जिसका माता नैसर्गिक रूप से अपना आत्मज, अपने अंग से उत्पन्न समझकर, अपनी संतान समझकर, अत्यंत त्यागपूर्वक स्नेह और ममता से लालन-पालन करती है, वह माता का पुत्र नहीं है, पिता का पुत्र है। उसका स्वामी पिता है, माता नहीं। माता केवल उसको उत्पन्न करनेवाली माध्यम है। इसके

अतिरिक्त पति की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी पुत्र ही है, पुत्री नहीं। अतः जो पत्नी पुत्र उत्पन्न न करके पुत्री ही उत्पन्न करती है वह भी कानी कौड़ी की पत्नी है। पुत्र चाहिए, पुत्र ! भले ही वह मूर्ख रह जाए, लम्पट हो जाए, कुमार्गी हो जाए। पर वही पति की सम्पत्ति का उत्तराधिकारी है। इतना ही क्यों ! वह घोर नरक से पिता का उद्धारकर्ता है। बोलो सड़ातन धर्म की जय !

परन्तु हाय-हाय ! चौपट कर दिया नेहरू की सरकार ने ! मृत पति की चिता पर जीती जला देने का पवित्र सतीत्वधर्म तो अंग्रेज़ ही नष्ट कर गए थे, बाद में कलियुग के प्रभाव से स्त्रियां विधवा न रहकर पुनर्विवाह करने लगीं। घर की चहारदीवारी से बाहर आकर सबसे हंसने-बोलने लगीं। बस पातिव्रत धर्म का बेड़ा तो इस तरह डूबता ही चला गया। अब रही-सही कसर नेहरू सरकार ने नये-नये कानून बनाकर पूरी कर दी, जिनमें पुत्री को भी सम्पत्ति का उत्तराधिकारी करार दे दिया। पत्नी को तलाक का अधिकार दे दिया ! शिव ! शिव !! अब तक हिन्दू पतिव्रता के सहारे चन्द्र-सूर्य समय पर अपना काम करते थे। उन्हींके प्रताप से अग्नि में उष्णता और जल में शीतलता थी। उन्हींके प्रताप से संसार चल रहा था। अब पतिव्रता संसार में नहीं रहेगी तो निश्चय ही उद्जनबम और अणुबम शीघ्र ही संसार को खत्म कर देंगे। अणु-बम और उद्जनबमों का प्रादुर्भाव, विश्वास कीजिए साहब, केवल पातिव्रत धर्म के लोप होने के कारण हुआ है। ठीक भी तो है, जब पातिव्रत धर्म ही न रहा तो दुनिया कहां रह सकती है !

आप कहेंगे कि यार, यह लेखक तो बेपर की उड़ाता है। दुनिया कहां गारत हो रही है ! रूसवालों ने और अमेरिकनों ने ढेर से अणुबम और उद्जन-बम बनाकर ज़रूर रख छोड़े हैं, पर वे उन्हें छोड़ते कहां हैं ? लखनवी गुस्सा कर खम ठोककर रह जाते हैं। इसपर मेरा कहना है—बन्दानवाज़, यह भी सब पातिव्रत धर्म का प्रभाव है। अंग्रेज़ों ने सती का पवित्र धर्म रोक दिया और नेहरू सरकार ने पातिव्रत धर्म का बेड़ा गर्क कर दिया तथा आजकल की नारी कोरी नारी ही रहना चाहती है, पतिव्रता पत्नी के धर्म की परवाह नहीं करती, पर फिर भी दुनिया से पतिव्रताओं का बीजनाश नहीं हुआ है। अभी भी पतिव्रताधर्म इस परम पवित्र भारत भूमि पर कायम है।

मिसाल के लिए आप श्रीमती बुलाकीदास ही को ले लीजिए। गौर से

देखिए। वे असल पतिव्रता हैं या नहीं। स्वीकार करता हूं, सोशल हैं, पढ़ी-लिखी हैं, पर्दानशीन हैं, पर बाहरी लोगों से हंस-बोल लेती हैं। फिर भी वे पतिव्रता हैं। लाला बुलाकीदास का कद्दू के समान शरीर है। उम्र उनकी पिलपिली है। उनके लिए उनकी पत्नी केवल धरमपत्नी ही है, अर्थात् पूरे इत्मीनान से वह घर में धरी हुई है—जैसे तालाबन्द सेफ में उनके जवाहरात हिफाज़त से रखे हैं। वे परपुरुष का ध्यान भी नहीं करतीं। हां, उन्होंने पुत्र उत्पन्न नहीं किया। हो सकता है, यह लाला बुलाकीदास की ही अयोग्यता हो, पर श्रीमतीजी ने उसे अपनी ही अयोग्यता मान लिया है। कहिए ! यह क्या पातिव्रत धर्म नहीं है ? इस नेहरू-युग में आप इससे अधिक और क्या चाहते हैं ? पर इस जुगनू के बच्चे की हिमाकत देखिए, क्या तीर मार गया। साफ कह गया, 'बच्चा मर्द से होता है।'

श्रीमती बुलाकीदास तभी से बेचैन हैं। पातिव्रत धर्म उनका एक बार ज़ोर से डगमगा गया। जैसे उसपर अणुवम का प्रहार हुआ हो। गंडे-तावीज, दवा-दारू उन्होंने बहुत किया, पति उनके लाला बुलाकीदास कायम हैं—धनी-मानी, सज्जन, सद्गुणी। परन्तु वे मर्द भी हैं अथवा कितने अंश तक मर्द हैं, इसपर श्रीमतीजी ने विचार ही नहीं किया था। पति को वे यथेष्ट समझती थीं। अब पति के अतिरिक्त उन्हें मर्द भी चाहिए, यह उन्होंने कभी नहीं सोचा था। वे लज्जित थीं, दुखी थीं, निराश थीं कि वे अभी तक पति का उत्तराधिकारी नहीं उत्पन्न कर सकीं। वे अपने पत्नीत्व को व्यर्थ समझती थीं, परन्तु जुगनू तो ऐसी बात कह गया कि उन्हें प्रथम बार ही इस बात का पता लगा कि इस धर्म की पूर्ति के लिए जिस महौषधि की आवश्यकता है, वह उनके लिए सर्वथा दुष्प्राप्य है। परन्तु वह महौषधि होती कैसी है ? यह जिज्ञासा उनके रक्त की प्रत्येक बूंद में घर कर गई।

६०

मानसिक शक्तियों के विकास के साथ ही कामवासना भी शरीर में विकसित होती है। निस्संदेह, चरम सीमा तक भड़की हुई कामवासना संसार की सबसे बहुमूल्य मणि है। परन्तु यह क्षण जीवन का सबसे नाजुक क्षण है। यौवन के विकास के साथ काम-शक्ति का वेग स्वाभाविक ही बढ़ता है। स्वाभाविक रूप में इसका निवारण नहीं किया जा सकता। हमें यह तथ्य नहीं भूलना चाहिए कि शारीरिक आवश्यकताएं अनिवार्य हैं। गांधीजी काम-विकास को रोकने की दो विधि बताते हैं। एक संयम, दूसरी प्राणशक्ति का संचय। उन्होंने रहन-सहन और भोजन की सादगी तथा विचारों की शुद्धता पर ज़ोर दिया है, परन्तु उन्होंने उस वैज्ञानिक, नैसर्गिक आवश्यकता को नहीं विचारा जिसकी धारा शरीर में काम कर रही है। कामोत्तेजना स्वस्थ शरीर में एक आग जलाती है और इस आग से कीड़े-मकोड़े भी मस्त हो जाते हैं। कामोत्तेजना से रक्त की उत्तमता का गहरा सम्बन्ध है। जितना ही रक्त उत्तेजित होगा, उतना ही स्वास्थ्य उत्तम होगा। रक्त की उत्तेजना ही काम की उत्तेजना है।

'मर्द'-जिज्ञासा ने जैसे श्रीमती बुलाकीदास के नारीत्व को झकझोर डाला। उसी भांति 'मोती बींधने' के रहस्य ने जुगनू के पुरुषत्व को दमित कर दिया। श्रीमती बुलाकीदास एक संयत, शीलवती, कुलीन, सम्भ्रान्त, प्रौढ़ नारी थीं और जुगनू एक असंस्कृत, हीनकुल, चरित्रहीन तरुण युवा था। श्रीमती बुलाकीदास का नारीत्व पत्नीत्व के आवरण में जकड़ा हुआ और प्रक्षिप्त था, परन्तु जुगनू का पुरुषत्व सर्वथा उन्मुक्त, उन्मन और उच्छृंखल था। दोनों के बीच समाज था—समाज की मर्यादा की दुरूह दीवार थी। परन्तु दोनों की अन्तर्दृष्टि एक दूसरे पर केन्द्रित हो रही थी। लाख-लक्ष बार भूलने की चेष्टा करने पर भी श्रीमती बुलाकीदास के स्मृतिपटल पर जुगनू का वह अश्रुतपूर्व वज्रवाक्य जैसे तप्त लौहशलाका से प्रतिक्षण शत-सहस्र बार लिखा जा रहा था, और उसीके साथ प्रतिक्षण शत-सहस्र बार जुगनू का ताज़ा यौवन से भरपूर बलिष्ठ और आकर्षक शरीर ज़बर्दस्ती उनके मानस-नेत्रों में घुसा पड़ रहा था। उनका यौवन अब चढ़ाव पर न था, परन्तु लबा-

लब था, ऐश्वर्य में वह शराबोर था; परन्तु था समुद्र की भांति मर्यादित, संयत। कामतत्त्व उनके नारीत्व में न था, पत्नीत्व में था। परन्तु अब उनके समूचे संस्कारों, संयमों, मर्यादाओं की सीमा का उल्लंघन करता हुआ वह कामतत्त्व पत्नीत्व के कवच को तोड़ता-फोड़ता नारीत्व की ओर उमड़ा चला आ रहा था। और उनका सारा ही संयम जैसे खर्च होता जा रहा था। परन्तु जैसे अज्ञात ही में इस अंतर्द्वन्द्व में उनकी चेतना में उनकी एक अयोग्यता की पूर्ति भी छिपी हुई थी जो इस सम्पूर्ण प्रवृत्ति की मूलधारा थी—वह थी, पुत्र-प्राप्ति की सम्भावना, जो उनको सफल नारी और सुर्खरू पत्नी बना सकती थी। और जिसके लिए श्रीमती बुलाकीदास की श्रेणी की स्त्री बड़े से बड़ा मूल्य चुकाने पर आमादा हो सकती थी।

जुगनू इस समय उस अवस्था को पहुंच चुका था जबकि पुरुष को स्त्री की अत्यन्त आवश्यकता होती है। उसका स्वास्थ्य उत्तम था, यौवन उठता हुआ था, वासना अमर्यादित थी। वह हकीकत में समाज की मर्यादा से बद्ध न था। उसका न कोई इतिहास था, न वह खानदानी व्यक्ति था। न वह चरित्र से, न आदर्श से, न संयम से अनुबंधित था। परिस्थितियों ने उसे सभ्य-शिष्ट समाज के साथ जकड़ दिया था पर वह सभ्य-शिष्ट तो कतई न था। परन्तु उसे दुराचारी या लम्पट कहने की अपेक्षा यह कहना अधिक उपयुक्त होगा कि वह काम की भूख से पीड़ित था। और अपनी इस भूख की निवृत्ति के लिए वह खून तक कर सकता था। विवेक और शील का तो उसकी चेतना में कोई स्थान ही न था। फिर भी वह प्रकृत अपराधी पुरुष न था—बस, यही खैरियत थी।

गांधीजी का कहना है कि यह आवश्यक नहीं कि स्त्री-पुरुष को इसीलिए विवाहित होकर रहना चाहिए कि वे सन्तानोत्पादन करें या कामवासना की पूर्ति करें। वे इस बात को मान लेने का कोई कारण नहीं देखते कि स्त्री-पुरुष जैसे भिन्नलिंगी जोड़ों की संगति के मूल में संतानोत्पादन की भावना है। वे दम्पति के प्रेम के मूल में प्राणीमात्र की एकता की साधना की कल्पना करते हैं। परन्तु उनकी ये बातें सारहीन हैं और उस अनाड़ी आदमी के कथन के समान हास्यास्पद और अव्यवहार्य हैं जो चिकित्साशास्त्र को तो नहीं जानता, सिर्फ इतना जानता है कि रोगी को दवा देने की एक परिपाटी है, अतः कुछ न कुछ दवा देने से फायदा ही हो जाएगा। 'येन केन तरोर्मूलं येन केनापि पेषितम्।

येन केनापि दातव्यं यद्वा तद्वा भविष्यति।' संतानोत्पत्ति की चर्चा करते हुए वे फ्रांस का उदाहरण देते हैं, जहां की जनता बेलगाम सहवास-आनन्द उपभोग करने के लिए सन्तानोत्पत्ति पर अंकुश रखती थी। और अब जब वहां जन्म के मुकाबिले मृत्यु बढ़ती गई, तो वे संतानोत्पत्ति का धर्म सिखाने लगे। गत महायुद्ध में जब फ्रांस में बीस लाख विधवाएं हो गईं तो वहां यह समस्या उठ खड़ी हुई कि उनका क्या उपयोग किया जाए। पहले सोचा गया कि उन्हें विदेशियों को ब्याह दिया जाए। पर बाद में दूसरा ही निर्णय किया गया और उन्हें मुक्त सहवास का अवसर दे दिया गया। स्त्री-पुरुष के लिए संयुक्त स्नानगृह, विहार आदि खोल दिए गए, जहां स्त्री-पुरुष सुविधा से परस्पर मिल सकते थे। और उनकी इस अवैध संतति को राज्य ने रक्षित और शिक्षित करने का कार्य यत्न से अपने हाथ में लिया था।

टाल्सटाय कहता है कि आध्यात्मिक दृष्टि से स्त्री पुरुष से कम है। उसका कहना है कि भले ही तुम उनके अधिकारों पर नियन्त्रण न करो, उनका आदर-प्रेम पुरुषों के समान ही करो, और अधिकारों के मामलों में उन्हें पुरुषों ही के समान समझो, परन्तु एक स्त्री पुरुष के समान बुद्धि, मानसिक विकास और अन्य विशेषताएं नहीं रख सकती। स्त्री आध्यात्मिक दृष्टि से कमज़ोर है। उसे आध्यात्मिक समता की कीच से दबाना निर्दयता है। अलबत्ता स्त्रियों में मन को वश में रखने की क्षमता पुरुष की अपेक्षा अधिक है। किन्तु बुद्धि के आवेशों पर उनकी श्रद्धा नहीं होती।

वेद का एक वाक्य है कि सद्गुणी युवतियां उपयुक्त युवकों के पास जाएं। निस्संदेह यह वाक्य स्त्री को पत्नीत्व से नहीं बांधता। यूनानी तत्त्ववेत्ता प्लेटो कहता है—सभी स्त्री-पुरुष राष्ट्रीय सम्पत्ति हैं। बलवान और स्वस्थ स्त्री-पुरुष चाहे जिस स्त्री-पुरुष से कुछ समय तक सम्बन्ध रखकर सन्तान उत्पन्न करें। प्लेटो स्पष्ट ही विवाह का विरोधी है। परन्तु प्लेटो के इस सिद्धान्त में मनुष्य-स्वभाव की तथा स्त्री-पुरुषों के प्रकृत आकर्षण की स्पष्ट अवहेलना की गई है। उसके सिद्धान्त में मातृत्व का, पितृत्व का, पति-पत्नीत्व का कोई स्थान नहीं है। रोमन पद्धति में स्त्रियों की स्वाधीनता सुरक्षित थी। ईसा स्त्रियों के सम्बन्ध में उदार था, पर बाद के ईसाइयों ने स्त्री के प्रति अत्यन्त हीन भाव, विरक्ति के, प्रकट किए हैं। टाल्सटाय विवाह-संस्था को ईसाइयत के विपरीत मानता

है। वह उसे पाप और आत्मसेवा कहता है। वह कहता है कि आदमी को विवाह उसी प्रकार करना चाहिए, जैसे वह मृत्यु को प्राप्त होता है। पुत्र के प्रति उसका वह आकर्षण नहीं है जो हिन्दू पति का है। सन्तानोत्पत्ति के प्रति उसके हीन भाव हैं। यूरोप और अमेरिका में विवाह के पूर्व ही प्रायः युवतियां कामतृप्ति करने लगती हैं, जिससे उनका दाम्पत्य जीवन अविश्वसनीय हो जाता है। वहां संतति-निरोध को खास महत्त्व दिया जा रहा है। और मजे की बात यह है कि जैसे प्राचीन आर्यों का 'पुत्रोत्पादन' आर्थिक रूप में महत्त्वपूर्ण था, उसी प्रकार आज सभ्य देशों में संतति-निरोध आर्थिक महत्त्व का सर्वोपरि प्रश्न बनता जा रहा है।

यूनानी प्राचीन सभ्यता में स्त्रियां पुरुषों की जंगम सम्पत्ति समझी जाती थीं, और उनकी सामाजिक अवस्था गुलामों जैसी थी। प्राय: युवक युवतियों को उनके पिताओं से खरीद लेते थे। और ऐसी लड़कियों पर उनका पूर्ण अधिकार होता था। प्लेटो ने जब नवीन राष्ट्रीयता के सिद्धान्त बनाए तो उनका असर समाज पर भी पड़ा। स्पार्टा में कमजोरों और बूढ़ों से उनकी युवती पत्नियां कानूनन छीन ली जाती थीं, और बलवान युवकों को दे दी जाती थीं।

परन्तु समय बदलता गया। रोमन विजयों ने प्राचीन यूनान के सब रीति-रस्मों में क्रान्ति ला दी। यूरोप में भी मिल और रस्किन जैसे समर्थ मनस्वी पुरुष हुए, जिन्होंने स्त्रियों की दशा को बहुत उन्नत किया। मिल ने स्त्री-पुरुष को समान बताया, जिससे स्त्रियों में पति पर विजय पाने की शक्ति बढ़ती गई। रस्किन ने नारी जाति को शक्ति के शिखर पर पहुंचा दिया। उसने समाज-रचना में स्त्री का महत्त्व वर्णित किया। उसका कहना है, पुरुष कर्ता, स्रष्टा, अन्वेषक और रक्षक है। उसकी बुद्धि चिंतन और आविष्कार के लिए है। पर नारी की शक्ति शासन के लिए है, युद्ध के लिए नहीं। उसमें आविष्कार और रचना की सामर्थ्य नहीं है, शासन-प्रबन्ध और निर्माण की शक्ति है। वह वस्तुओं के उचित तत्त्व, गुण और अधिकार और स्थान की परख कर सकती है, अपने कर्तव्य और स्थान के लिहाज़ से वह सारी आपत्तियों तथा प्रलोभनों से बची रहती है।

इन बातों ने यूरोप में पत्नीत्व की प्रतिष्ठा पुरुष की समान भूमि में

स्थापित कर दी। यहां तक कि अनिवार्य रूप से एक पुरुष की एक समय में एक ही स्त्री पत्नी रूप में रह सकती है। यह एकपत्नीव्रत अंग्रेज़ भारत में लाए और स्त्री-समानता का भाव भी, जिसे भारत के नव्य जीवन का पूरा पोषण मिला। परन्तु एकपत्नीव्रत में बन्धन के साथ यूरोप का तलाक नहीं सम्मिलित हुआ, अतः हिन्दू पत्नी ज़रा-सा सामाजिक विकास पाकर भी शुद्ध-रूपेण पति की आर्थिक और सामाजिक दासता में बंधी हुई थी। और अब भी, जब उसके बन्धन एक-एक करके खोले जा रहे हैं, वह बंधी रहने की चिरन्तन अभ्यस्त बनी हुई है। श्रीमती बुलाकीदास ऐसी ही भारतीय महिला थीं।

६१

लेकिन भूचाल आते-आते रह गया। ज्वालामुखी का भीषण विस्फोट होते-होते रुक गया। जुगनू अकस्मात् ही बीमार पड़ गया। घोर परिश्रम, अनियमित जीवन और गहरे मानसिक उद्वेग ने उसके रोग को संक्रामक रूप दे दिया। चिकित्सकों ने उसे टाइफाइड करार दिया। अब एक तरफ चुनावों की धूम मची हुई थी, दूसरी ओर जुगनू अपनी शय्या पर छटपटा रहा था। उसके चारों ओर आदमियों की, सेवकों की, परिचारकों की कमी न थी, पर आज वह जीवन में पहली ही बार एक नारी-स्पर्श के लिए छटपटा रहा था। यह स्पर्श की भूख उसकी कामवासना की भूख से पृथक् थी। वह अर्धजागरित स्वप्न देखा करता कि शारदा से उसका ब्याह हो गया है, और वह उसका सिर गोद में लिए बैठी सहला रही है। आंखें बन्द करके वह देर तक इस कल्पना को साकार करता रहता था, आज नारी को आत्मसात् करने के लिए उसका सम्पूर्ण पौरुष हाहाकार कर रहा था। अब उसे नवाब अच्छा नहीं लग रहा था, विद्यासागर की बातें भी उसे नहीं सुहाती थीं, चुनाव की तिकड़म और सफलताओं के प्रति वह उदासीन था। उसे इस समय चाह थी एक नारी के कोमलतम अस्तित्व की, जिसे वह पूर्णतया अपना सके। पद्मा, शारदा, गोमती, श्रीमंती बुलाकीदास, और भी जिनसे उसका परिचय हुआ था, दिन-रात में हज़ारों बार आ-आकर उसकी मानस-मूर्ति के आगे नाचती रहती थीं और वह

उनमें भाव-विमोहित-सा अर्धमूर्छित अवस्था में पड़ा छटपटाता रहता था वह सोते-सोते चौंककर चीख उठता। बहुधा उसे रात-रात-भर नींद नहीं आती थी। वह छटपटाता था, वह बड़बड़ाता था। डाक्टर खन्ना उसे एक-दो बार देखने आए। चिकित्सा कई डाक्टरों की चल रही थी। वह चिड़चिड़ा हो गया था और बहुत जल्द उत्तेजित हो जाता था। कभी-कभी तो उसे काबू में करना भी दूभर हो जाता था।

राधेमोहन ने इधर अर्से से जुगनू से मुलाकात नहीं की थी। अपनी दावत के सहारे एक-दो बार वह उससे मिलने भी आया, पर जुगनू काम में इतना व्यस्त था कि वह उससे ठीक-ठीक बातें भी न कर सका। अब जो उसने अचानक जुगनू के बीमार होने की खबर सुनी तो वह ताबड़तोड़ उससे मिलने उसके मकान पर आ पहुंचा। जुगनू गुमसुम पड़ा हुआ था। उसकी यह हालत देखकर राधेमोहन द्रवित हो गया। उसने कहा, 'यह क्या भाई साहब, आपने मुझे खबर भी नहीं दी! यहां आप अकेले पड़े हैं। यह हालत कर ली है, आप मेरे घर चलिए, मैं आपको यहां अकेले कैसे छोड़ सकता हूं। मेरी पत्नी ने जब सुना तुरन्त मुझे भेजा कि तुम्हें ले ही आऊं।'

जुगनू के मन में एक बिजली-सी कौंध गई। एक सुखद अनुभूति ने जैसे उसे आह्लादित कर दिया। भूली हुई गोमती की अल्हड़ता, अपने से अज्ञात-सी मूर्ति उसे याद हो आई। उसके घर जाने से तो उसका रात-दिन का सामना रहेगा। जुगनू बीमार था, अशक्त था, लेकिन वासना का सम्बन्ध तो उसके जीवन से ही था। वह कुछ उत्तर न देकर चुपचाप पड़ा छत को ताकता रहा।

राधेमोहन ने फिर कहा, 'क्यों? आप सोच क्या रहे हैं? आपको अवश्य मेरे यहां चलना पड़ेगा।'

'परन्तु भाई, तुम्हारा घर छोटा-सा है, तुम्हें असुविधा होगी। मैं भाभी को कष्ट नहीं देना चाहता। अच्छा हो जाऊंगा। कभी-कभी देख जाया करो।'

'यह नहीं होगा। मैं भूखहड़ताल कर बैठूंगा। घर छोटा है तो क्या हुआ, हमें कोई तकलीफ नहीं होगी।'

जुगनू का मन था, तकलीफ हो भी तो भी चलना चाहिए। वह आधे घूंघट से झांकता हुआ लाज-भरा मुख, वह सहज सलज्ज मुस्कराहट और शोभा—आंखों के सामने रखने योग्य है।

बहुत हुज्जत हुई। और जुगनू राज़ी हो गया। राधेमोहन प्रसन्न होकर चला आया। 'सुबह मैं आपको ले चलूंगा।' वह यह कहता गया।

निस्सन्देह उसका यह आग्रह मूर्खतापूर्ण था। प्रथम तो उसका घर बहुत ही छोटा था, दूसरे जुगनू से उसका इतना घनिष्ठ सम्बन्ध ही नया था, तीसरे उसकी आय सीमित थी। परन्तु उसकी सबसे बड़ी मूर्खता थी झूठमूठ ही पत्नी का नाम ले बैठना।

घर पहुंचकर उसने पत्नी से चर्चा की, 'सुना तुमने, भाई साहब बहुत बीमार हैं।'

'कौन भाई साहब ?'

'अजी वही मुंशी, उस दिन तुमने जिनकी दावत की थी। तुम्हारा बना हुआ मूंग की दाल का हलुआ अब तक उनकी जीभ पर है।'

गोमती ने कहा, 'क्या हुआ है उनको ?'

'डाक्टर कहते हैं, मियादी बुखार है। बहुत कमज़ोर हो गए हैं बेचारे ! सुबह उन्हें यहां लाना है।'

'यहां क्यों लाना है ?'

'तो क्या उन्हें वहीं पड़ा रहने दूं ? वहां कौन देखनेवाला है उनका ?'

'तो हमने उनकी देखभाल का ठेका लिया है ? उनके सगे-सम्बन्धी होंगे। वे उनकी देखभाल करेंगे।'

'यही तो मुश्किल है, बेचारे का सगा-सम्बन्धी कोई नहीं। सब खानेवाले हैं।'

'तो हमें इससे क्या, बहुत लोग शहर में बीमार पड़ते हैं। हमारे यहां कोई अस्पताल है ?'

'घर के आदमी के लिए अस्पताल की क्या बात है ?'

'वह घर के कौन हैं, भाई या भतीजे ?'

'कैसी बातें करती हो भई तुम, कभी-कभी तो पूरी निष्ठुर बन जाती हो, इतनी दया-माया भी तुममें नहीं है !'

'नहीं है। बिलकुल पत्थर हूं, लेकिन तुम उसे मेरे घर में नहीं ला सकते।'

'औरत की अक्ल भैंस की तरह होती है। दो लट्ठ लगे कि ठीक हुई।'

'तो लट्ठ भी मार लो।'

'कहता हूं कि मेरे सामने ज़िद न किया कर।'

'पर मैं उस मुर्दे को घर में न आने दूंगी। अच्छा तमाशा है ! दुनिया-भर के मुर्दे मेरे ही घर में चिता जलाएंगे।'

'बड़ी ज़बान चलाती है कैंची-सी, कहीं नाक काटकर न फेंक दूं !'

'हां, हां, क्यों नहीं, ऐसे ही शूरवीर हो ! औरत की नाक ज़रूर काटो। सेवा करती हूं, घर-गिरस्ती उठाती हूं, खाना बनाती हूं, झाड़ू-बर्तन करती हूं, इतनी गुलामी करती हूं, यह मेरा कसूर तो है ही। नाक काटने से क्या होगा, गला काटकर झगड़ा खत्म करो।'

'मैं उसे ज़बान दे आया हूं। लाऊंगा ज़रूर। सुख-दुःख में आदमी ही आदमी के काम आता है। फिर बड़ा आदमी है, एक अहसान के दस बदले चुकाएगा। यह भी तो सोचो।'

'सोच लिया। उसे तुम यहां नहीं ला सकते।'

'लाऊं तो तू क्या करेगी ?'

'मायके चली जाऊंगी।'

'सो दस बार चली जा।'

'तो पहले मुझे मायके भेज दो। तब लाना दुनिया-भर के उठाईगीरों को।'

'ज़बान संभालकर बोल।'

बहुत विवाद हुआ, कड़वा, मीठा, खट्टा, चरपरा, नर्म, गर्म। अन्त में रोते-रोते गोमती ने कहा, 'तुम्हारे हाथ जोड़ती हूं, उसे मेरे घर मत लाओ।'

परन्तु औरत का विरोध निष्फल रहा। दूसरे ही दिन जुगनू का बिस्तर घर के बड़े कमरे में लग गया। पति-पत्नी को रसोईघर में सोने को छोड़ दूसरा चारा न रहा।

गोमती ने जुगनू के लाने का विरोध तो इतना तीव्र किया था, परन्तु जुगनू के घर में आने पर उसकी सेवा तन-मन से की। वह उसके माथे और पैर के तलुओं पर घी की मालिश करती, बालों में तेल डालती, मल-मूत्र के बर्तन साफ करती, तुरन्त चाय बनाकर देती, यत्न से दवा पिलाती। राधेमोहन दस बजे स्कूल चला जाता, तब से अपराह्न तक दोनों ही आदमी अकेले घर में रहते। दो-चार दिन जुगनू गुमसुम पड़ा रहा। औषध, पथ्य-पानी जब उसे गोमती देती, चुपचाप ले लेता। बहुधा वह चुपचाप पड़ा छत को ताकता रहता। कभी-कदाच

सुबह-शाम मिलनेवाले आते। पर डाक्टरों ने मिलना-मिलाना बन्द कर दिया था, सिर्फ विद्यासागर प्रतिदिन सुबह आता, बहुत आवश्यक बात कह जाता। नवाब कभी-कभी शाम को आता। डाक्टर खन्ना और लाला बुलाकीदास भी कभी-कदाच आते। परन्तु इनकी दुपहरी बहुधा एकान्त ही में व्यतीत होती। तीन-चार दिन बीतने पर भी जुगनू ने गोमती से कोई बात नहीं कही। रोग अब काबू में आता जा रहा था, और जुगनू अपनी आवश्यकता की एकाध बात कह देता था। एक दिन दोपहर बाद जब जुगनू गहरी नींद सोकर उठा, उसका मन हलका था, उसे जगा हुआ देख गोमती दूध का प्याला लेकर आई। उसे चम्मच से दूध पिलाना पड़ता था। धीरे-धीरे उसने उसे दूध पिलाया। गीले तौलिये से मुंह साफ किया। इस समय उसके मुख की सांस जुगनू अपने मुंह पर अनुभव कर रहा था। उसकी एकाध लट भी लटककर जुगनू के माथे पर घूर रही थी। दूध पीने पर वह कुछ देर गोमती को एकटक देखता रहा। फिर उसने आहिस्ता से कहा, 'भाभी।'

गोमती उसकी चारपाई पर झुकी। जुगनू ने कहा, 'बड़ा कष्ट दे रहा हूं भाभी, तुम न संभालतीं तो मैं ज़िन्दा न बचता।'

'ऐसी बात क्यों करते हो!' गोमती ने बड़े संकोच से कहा। वह हटने लगी तो जुगनू ने उसका हाथ पकड़ लिया, तकिये के नीचे से पर्स निकालकर कहा, 'इसे रख लो भाभी।'

'यह क्या है?'

'जो भी कुछ है। तुम रख लो।' गोमती ने पर्स खोलकर देखा, नोटों से भरा था। उसने कहा, 'ना, मैं नहीं ले सकती।'

'तुम्हें मेरी कसम भाभी, मुझे मरा ही देखो जो ना करो।'

'वाह, कसम क्यों देते हो? अच्छा उनसे पूछूंगी।'

'ना, भाई से मत कहना। वे समझेंगे कि उनके प्रेम का मूल्य चुका रहा हूं। पर यह बात नहीं है।'

'यह बात नहीं है तो फिर क्या बात है?'

'भाभी, मैं जानता हूं, तुम लोगों की थोड़ी आय है। खर्च की तंगी है। इतने खर्च का भार कैसे सह सकती हो?'

'तो घर के आदमी के लिए सब कुछ करना पड़ता है।'

'जब घर का समझती हो तो इसे रख लो। दूसरी बात क्यों सोचती हो?'

गोमती के हाथों में पर्स था और पर्स से भरा हुआ हाथ जुगनू की मुट्ठी में था। मुट्ठी कांप रही थी, और गोमती का हाथ भी पसीने से भीग गया था। उसने कहा, 'ना, ना, रहने दो।'

'अब तो कसम लग चुकी। न लोगी तो मैं मर जाऊंगा।'

'राम, राम, ऐसी बात कही जाती है?'

'तो मुझ दुखी को दुखी मत करो, चुपचाप रख लो और भाई साहब से मत कहना।'

गोमती ने और हठ नहीं किया। पर्स लेकर चली गई। इस समय उसका सारा शरीर पीपल के पत्ते की भांति कांप रहा था। क्यों भला?

अब इस क्यों का उत्तर अपने मन से पूछिए।

६२

चुनाव का आन्दोलन पूरा ज़ोर पकड़ने लगा। लाला दीवानचन्द ने बिरादरी की धर्मशाला में सारी बिरादरी को एकत्र किया। सारी धर्मशाला फर्श, कालीन और मसनदों से सज गई। बिरादरी के बड़े-बड़े पेटवाले महाजन मसनदों पर आ बैठे। सब अपनी-अपनी हांक रहे थे। सारा वातावरण एक बेतरतीब शोरगुल से भरा हुआ था।

लाला दीवानचन्द बिरादरी में एका करने पर बल दे रहे थे। कांग्रेस मुल्क पर राज करती है, हमारी बिरादरी इस राज्य में सारे मुल्क में व्यापार करके लाखों रुपया कमा रही है। बोलो महात्मा गांधी की जय! गांधीजी के हत्यारों का बेड़ा गर्क हो। जनसंघ मुर्दाबाद! जो जिसके जी में आता था चिल्ला रहा था। एक भारी-भरकम चौधरी ने खड़े होकर कहा, 'लाला फकीरचन्द, बिरादरी की कृपा से कांग्रेस की कुर्सी पर बैठोगे। कुछ बिरादरी के लिए भी तो करो।' लाला फकीरचन्द ने हाथ जोड़कर कहा, 'मैं तो सबका दास हूं। मेरा सर्वस्व आपका है। आप जो आज्ञा करें, वही पूरा करूंगा।' चौधरी ने कहा, 'धर्मशाला का फर्श बनवाओ और हज़ार रुपये के बर्तन पंचायत को दो।

गरीबों की ब्याह-शादी में काम आएं। लाला फकीरचन्द ने कहा, 'पांच हज़ार रुपया इस काम के लिए पंचायत की नज़र करता हूं, और लाला फकीरचन्द ने तुरन्त ही चैक चौधरी के हवाले कर दिया।

तालियों की गड़गड़ाहट से लाला फकीरचन्द का अभिनन्दन हुआ और इसीके बाद नारे बुलन्द होने लगे। चौधरी ने कहा, 'पार्लियामेंट की कुर्सी पर कौन बैठेगा?

'लाला फकीरचन्द!'

'महात्मा गांधी की!'

'जय!'

'जवाहरलाल नेहरू की!'

'जय!'

'गांधीजी के हत्यारों का!'

'नाश हो!'

'कौमी नारा?'

'वन्दे मातरम्!'

बस, लाला लोगों की सभा खत्म हो गई। इसके बाद फूलमालाओं से लादकर लाला फकीरचन्द का धूमधाम से जुलूस निकला। आगे-आगे बैंड, और पीछे-पीछे विद्यासागर और उसकी चाण्डाल-चौकड़ी। उनमें रलेमिले लाला लोग। मुहल्ले-भर में लाला फकीरचन्द के राग अलापे जाने लगे। किसीको इस बात का ध्यान न रहा कि अभी उस दिन यही लाला फकीरचन्द कांग्रेसियों को गाली दे रहे थे, और जनसंघ के उम्मीदवार थे।

जोगीराम की बड़ी भद्द हुई। जनसंघियों की भी सभा धर्मशाला में अगले दिन हुई। परन्तु प्रथम तो लाला दीवानचन्द के प्रताप से सभा में बहुत कम लोग आए। लड़के-बच्चों का शोर-शराबा होता रहा। और जब सभा चुप हुई तो विद्यासागर के गुर्गों ने वह होहुल्लड़ मचाया कि सभा में मार-पीट की नौबत आ गई, और पुलिस को सभा भंग करनी पड़ी। दूसरे दिन लाला लोगों के दस्तखती पोस्टर चिपका दिए गए।—

गांधीजी के हत्यारों का मुंह काला! सभा में गाली-गुफ्ता और मार-पीट। पुलिस को आना पड़ा।

६३

देवी अनेकरूपा है। गौरी, दुर्गा, चण्डिका, काली, कराली। दिव्यरूपा गौरी भूत-भावन भोलानाथ के लिए उग्र तपस्या करती है। वामांक में विराजमान होकर पुत्र गणेश, कार्तिकेय, नन्दी, भृंगीगण आदि परिजनों पर प्रसन्नता प्रकट करती है। दुर्गा असुर-संहार करती है। चण्डिका—काली साक्षात् शिव को भूपतित कर उनके वक्ष पर चरण रख, खप्पर भर-भरकर रक्तपान करती है। कलियुग में अनेकरूपा देवी ने अनेक रूपों में शत-सहस्र-कोटि नारी-शरीर धारण किए हैं। उनमें कितनी ही सौम्यरूपा गौरी, कितनी ही असुर-संहारिणी दुर्गा, कितनी ही विकराल काली-कराली हैं। वे पति-मर्दन कर उनका रक्त-पान करती हैं। पति उनके चरण-नख पर दृष्टि रखकर जीवन-यापन करते हैं। इस अनेकरूपा देवी को नमस्कार है। अभी तक ये घरों में बद्ध चहारदीवारी से घिरी हुई घर के द्वार बन्द करके सोम-पान, रक्त-पान, गर्जन-तर्जन करती थीं।' अब कांग्रेस ने इनके घरों के द्वार मुक्त कर दिए। घरों की चहारदीवारी ढहा दी और उन्हें बीच राह सड़क पर ला खड़ा किया। बूढ़े ब्रह्मा ने गांधी का अवतार धारण कर उन्हें वरदान दिया कि वे अब स्वच्छन्द विचरण करें, प्रभातफेरी करें, देश की धुन में हज़ारों नर-नारियों के बीच गला फाड़-फाड़कर चीखें-चिल्लाएं। जेल जाएं, फांसी चढ़ें, मरें, किन्तु अमर रहें। पति पर से उनका असाध्य एकाधिकार हटा दिया गया। साक्षात् स्वामी कार्तिकेय ने नेहरू चाचा के रूप में जन्म लेकर उन्हें तलाक का वरदान दे दिया। अब वे अंधेरे ही भोर के तड़के प्रभातफेरी के नाम पर जहां जी चाहे जाएं, जो जी चाहे करें। पति महोदय बम्भोलानाथ की महामाया के प्रसाद से मीठी नींद निर्विघ्न सोते रहेंगे। चाय-पानी से स्वयं निबट लेंगे। बच्चों को शीशी का दूध पिला होटल में भव्य भोज्य का प्रसाद ले दफ्तर में जा अफसर की लाल-पीली आंखों की रंगत देख-देखकर कागज़ काले करते रहेंगे। पत्नीरूपा देवी से शक-संदेह-प्रश्न, वाद-विवाद न कर सकेंगे। करेंगे तो तड़ाक-फड़ाक तलाक। अदल-बदल! अर्थात् उसकी इसकी बगल में, इसकी उसकी बगल में! जय हो, जय हो सभ्यता भवानी की, नई दुनिया की, नई रोशनी की !!! नई रोशनी की अधिष्ठात्री—प्रभातफेरी,

भाषरण, चन्दा-ग्रहण-निपुणा, कांग्रेस-पूता, खद्दरधारिणी दिव्य देवियों की जय !

विद्यासागर के अनेक गण थे। गणों में कुछ गणी भी थीं। इस समय व्याकरण-विस्मरण हो गया है। गण का स्त्रीलिंग याद नहीं आता। अतः गणी हीं कहता हूं। हां, तो एक गणी का नाम था विभा। कॉलेज की बी० ए० की मंज़िल पर पहुंच लौट आई थी देशसेवा करने। अभी कुमारी थी, योग्य पति नहीं मिला था। आयु तीस थी या पैंतीस ठीक-ठीक नहीं कहा जा सकता। पर थी उम्र-चोर, अभी छोकरी ही मालूम देती थी। थी खुशमिज़ाज, हाज़िर-जवाब। स्वच्छन्द वायु के झोंके के समान जहां पहुंचती, झाड़-झंखाड़ को हटा अपना स्थान बना लेती। जब भाषण देने खड़ी होती तो हाथ भर हलक खुल जाता और उसमें त्रिलोक के दर्शन हो जाते थे। खद्दर की बगुला के पंख के समान अमल-धवल साड़ी, वैसा ही जम्पर और कंधे पर एक झोला। पैरों में एक चप्पल, जो आवश्यकता पड़ने पर शूल, शक्ति, गदा, कृपाण सभीका काम देती थी। मुंह की फाड़ ज़रा चौड़ी, बस हज़ारों की भीड़ में भीषण भाषण के सर्वथा उपयुक्त।

दूसरी थीं शक्तिभारती। इनका असली नाम कोई नहीं जानता था, पर मुद्दत से यही नाम प्रसिद्ध था। पूर्वजन्म के समान इसका पूर्ववृत्त भी अज्ञात था। आयु चालीस के पेटे में थी। डीलडौल मर्दाना था। इनका कहीं कोई मर्द था भी या नहीं, इसपर लोगों के अनेक मत थे। कोई कहता था, अब भी है। कोई कहता था, अब नहीं है। कोई कहता था, कभी न था। कोई कहता था, एक है। कोई कहता था, अनेक हैं। जो हो, बजाहिर वे सब मामलों से बेबाक थीं। पेशा था कांग्रेस-आंदोलन और जेल जाना-आना। सभा-सोसाइटियों में स्त्री-स्वयंसेविकाओं को बटोरना, उन्हें अनुशासन में रखना, नेताओं से परामर्श करना, सर्वसाधारण को देशभक्त न होने के कारण डांटना, फटकारना, लानत-मलामत देना, कांग्रेस के लिए भले-बुरे का कुछ भी विचार न कर सब कुछ उचित समझकर सभा-सोसाइटियों में सबसे आगे बैठना।

ये दोनों थीं महागणी, इनके साथ गणियों की गड्डी की गड्डी सदा नत्थी रहती थी।

६४

विद्यासागर और उसके गुर्गे योजना बना रहे थे। विद्यासागर ने कहा, 'देखो भई, मुंशीजी के बीमार होने से हमारी ज़िम्मेदारियां बढ़ गई हैं। कल की सभा में वह जोड़-तोड़ बैठाया जाए कि जनसंघ को मुंह की खानी पड़े। दिल्ली शहर सब शहरों की नाक, बादशाहों का नगर, भारत की राजधानी, वहां एक मच्छी खानेवाला बंगाली हमपर बाज़ी ले जाए, यह नहीं हो सकता।'

उपस्थित मंडली सब कुछ करने को आमादा थी। प्रत्येक के चेहरे पर रणोन्मुख सिपाही-सी दृढ़ निश्चयता थी।

विद्यासागर ने कहा, 'हमारे जुलूस में एक हज़ार औरतें कम से कम होनी चाहिएं।'

'तो लाला फकीरचन्द से कहा जाए कि वे अपने लाला भाइयों की सब जवान सेठानियों को बटोर लाएं। बेकार घरों में पड़ी-पड़ी भैंस की तरह जुगाली करती हैं। दो-तीन सौ का जमाव तो हो ही जाएगा।'

'लेकिन बाकी के लिए क्या होगा ?'

'विभाजी, बाकी का प्रबन्ध तुम्हें करना होगा।'

'सब तो नहीं, पर तीन सौ लड़कियां मैं कालेजों से जुटा लूंगी। पर आपको खर्च करना पड़ेगा।'

'कितना ?'

'दस रुपये फी लड़की।'

'इतना ?'

'मोटर लारी का खर्च है। फिर सबको खद्दर की जोगिया साड़ी चाहिए। सबके पास तो होंगी नहीं। उन्हें खरीदकर देनी होंगी। फिर उनका खाना-पीना, चाय-पानी।'

'खैर, रुपये की तुम चिन्ता न करो और ज़्यादा से ज़्यादा लड़कियां जुटा

दो। अब बाकी का प्रबन्ध भारतीजी पर रहा।'

'हो जाएगा। मैं नई दिल्ली से पांच सौ औरतें जुटा लूंगी। पर रुपया उसमें भी इतना ही खर्च होगा।'

'दस रुपये फी औरत ?'

'वे कोई चलती-फिरती कॉलेज की छोकरियां नहीं होंगी। बड़े-बड़े घरों की औरतें होंगी। उनके जुलूस में शरीक होने से शहर में तहलका मच जाएगा। एक-एक औरत कांग्रेस की जर्नल-कर्नल बन जाएगी।'

'खैर, तो रुपये के लिए काम नहीं रुकना चाहिए।'

'अब एक बात और रह गई।' भारती ने ज़रा तेवर संभालकर कहा।

'क्या ?'

'आठ-दस लड़कियां हमें चुनाव तक नौकर रखनी होंगी। बिना उनके मर्द आसानी से वोट नहीं देंगे।'

'ठीक है, मगर होवें ज़रा नई उम्र की और खूबसूरत, साथ ही शोख भी कि आदमी का दिल देखते ही लोटपोट हो जाए। यह काम विभाजी ही के बूते का है।'

'हो जाएगा। पर प्रत्येक को भोजन, नाश्ता और दो सौ रुपये माहवार देना होगा।'

'पर कहलाएंगी तो स्वयंसेविका ही न ?'

'हां, हां, वे क्या अपनी इज़्ज़त का ख्याल न रखेंगी ? दुनिया में नौकरी का ढोल पीटेंगी ? सब बड़े घरों की लड़कियां होंगी।'

'बड़े घरों की लड़कियां मिल भी जाएंगी तनख्वाह पर ?'

'कमाल करते हैं आप। आजकल बड़ों की बड़ी ही पोल होती है। उनसे लड़कियों का कॉलेज का खर्चा भी नहीं चलता। फिर उनके ऊपरी खर्चे हैं। सहेलियों को रेस्तरां में पार्टी देनी होती है, सिनेमा देखना-दिखाना पड़ता है, फिर तेल-कंघा, लिपस्टिक और शौक के हज़ार खर्चे हैं। ये सब कहां से चलते हैं ?'

'अब इन बातों की छानबीन से आपको क्या मतलब, आप काम की बात कीजिए।'

'तो खैर, मुझे मंजूर है। पर लड़कियों को पसन्द मैं करूंगा। इस सम्बन्ध में स्त्रियों की पसंद दो कौड़ी की होती है। आप बुरा न मानिए विभाजी, तुलसीदासजी कह गए हैं :

'नारि न मोह नारि के रूपा।'

इतना कहकर विद्यासागर अपनी अस्वाभाविक हंसी हंस दिया। फिर उसने कहा, 'खैर, यह काम तो निबटा, अब मीटिंग में कुछ गाने-बजाने का, मनोरंजन का, शेर और कविता-गायन का भी प्रबन्ध होना चाहिए। अफसोस, मुंशी बीमार हैं, वरना वे अकेले ही वह समा बांध देते कि लोग पत्थर बन जाते। यह काम स्पीच से भी ज़बर्दस्त है। इससे ज्योंही श्रोताओं के दिल की कली खिले, झट उनसे मनचाही चीज़ कबूल करवा ली जाए।'

'अच्छी बात है। संगीत के लिए मैं दो लड़कियां ले आऊंगी। एकदम क्लासिकल संगीत होगा। वन्देमातरम् और जनगन गाने के लिए पांच लड़कियों का एक बैच आ जाएगा। आप तानपूरा और तबले का प्रबन्ध कर लीजिए।' विभा ने कहा।

'अब यह प्रबन्ध भी आप ही कर लीजिए विभाजी! खर्चा जो कुछ हो ले लीजिए।'

'अच्छी बात है।'

'तो बस, बाकी सब काम मैं संभाल लूंगा। अभी मुझे एक बार लाला फकीरचन्द और मुंशी साहब के यहां जाना है। फिर पांच-सात लीडरों के यहां झख मारनी होगी। कम से कम तीन मिनिस्टर तो भाषण दें।'

'लेकिन विद्यासागरजी, वह बंगाली मोशाय बड़ा तगड़ा बोलनेवाला है। ढोंगी, बोलते-बोलते रो पड़ता है। उसके मुकाबिले में कम से कम एक ऐसा बोलनेवाला लाओ जो दो घंटे बोल सके। और ऐसा बोले कि सुननेवालों के कलेजे उछलने लगें।'

'ऐसी वक्ता तो आप ही हैं भारतीजी, हमारे बीच में।'

'तो मैं तो अपनी बिसात से करूंगी ही जो बन पड़ेगा। परन्तु आप भी किसी तगड़े मिनिस्टर को टटोलें, नहीं पंडितजी को ले आएं।'

'खैर देखो, मैं कुछ न कुछ करूंगा। अफसोस पण्डितजी कल यहां नहीं हैं।'

इस बातचीत के वाद सभा विसर्जित हुई।

६५

कांग्रेस के जुलूस और सभी केन्द्रों की सभाओं की सफलता से जनसंघी घबरा उठे। उन्हें अपनी सफलता में सन्देह उठ खड़ा हुआ। जोगीराम के मुंह पर हवाइयां उड़ने लगीं। उन्होंने जाकर फणीन्द्र बाबू को पकड़ा। स्वामी गीतानन्द भी उनके साथ-साथ हो लिए। तीनों में गुप्त वार्तालाप हुआ। जोगीराम ने कहा, 'औरतों के बिना काम नहीं चलेगा बाबू साहब। कांग्रेस की सारी सफलता औरतों ही से बनी। देखा नहीं भारती कैसे सिंहनी की भांति दहाड़ रही थी।'

'तो उसकी दहाड़ हम देख लेंगे।'

'आप नहीं बाबू साहब, औरतें चाहिए औरतें। आप जानिए औरतों का जादू मर्दों पर चलता है।'

'तो बाबा हम यहां औरत कहां से लाएगा। हमारा बंगाल में तो हम सब कुछ कोरने सकता है।'

'लेकिन अब तो जो करना है यहां करना होगा। आप लोग अपने घर की औरत लोग को क्यों नहीं जुलूस में लाते?'

'हमने घर-घर जाकर कोशिश की। परन्तु कांग्रेसियों ने जो हमारी बहू-बेटियों को बेपर्दा बाज़ार में निकाला तो भाई-बिरादरीवाले सब बिगड़ गए। अब कोई भी अपनी औरतों को नहीं आने देता। आप जानते हैं, हम लाला लोगों में पर्दे का बुरा सिस्टम है। फिर औरतें बच्चों को संभालें और घर का धन्धा देखें कि जुलूस निकालें। कांग्रेसियों ने उन्हें दिन भर धूप में घसीटा पर खाने-पीने को भी नहीं पूछा। इस बात से भी उनका पारा चढ़ गया। किसीने कह दिया कि उन्होंने दूसरी औरतों को रुपया दिया है तो और बिगड़ीं कि मुफ्त की हमीं हैं। घर की मुर्गी दाल बराबर।'

'खैर, तो विधवाश्रमों, अनाथालयों से कोशिश कीजिए।'

'नहीं बनेगा। विधवाश्रमों में अब कुत्ते रोते हैं। यही हाल अनाथालयों का।'

'तो स्कूल-कॉलेजों से कोशिश कीजिए।'

'वहां तो कांग्रेस की भूतनियां चिपटी बैठी हैं। जनसंघ को वे देशद्रोही समझती हैं।'

'फिर स्वामीजी ही कोई राय बताएं।'

'गीता-प्रवचन में सब बूढ़ी-ठूढ़ी स्त्रियां आती हैं। बहुत कोशिश करने पर सौ-डेढ़ सौ इकट्ठी हो सकती हैं। पर एक बात है, वह ज़रा मुश्किल-सी है—पर हो सकती है।'

'वह क्या ?'

'शहर में बहुत मज़दूरिनें, भिखारिनें, और टकियाही स्त्रियां रहती हैं। उनकी संख्या कम नहीं है। उनमें जवान भी बहुत हैं, कोशिश करके उन्हें बटोरा जा सकता है।'

'प्रथम तो यह काम ही मुश्किल है। दूसरे उनके गन्दे कपड़े, जाहिल औरतों का जुलूस, न पढ़ी न लिखी, भला दिल्ली के लोग क्या कहेंगे !'

'कुछ नहीं कहेंगे। और काम मुश्किल भी नहीं है। आप उनसे गीता-भागवत तो बंचवाएंगे नहीं। जुलूस ही निकालेंगे न ? हां, खर्च ज़रूर होगा।'

'खर्च कितना होगा ?'

'देखो भई। जितनी अपनी भक्त स्त्रियां हैं उन्हें तो पांच-पांच रुपयों में मैं राज़ी कर दूंगा। बाकी मज़दूर औरतों और भिखारिनों के लिए उनके ही गुर्गे छोड़ने होंगे। उन सबके लिए एक-एक धोती जोगिया रंगवाकर देनी होगी। एक वक्त खाना खिलाना होगा और दो-दो रुपया नकद देना होगा। जो गुर्गे उन्हें बटोरकर लाएंगे उन्हें दस-दस रुपये रोज़ देना होगा। अभी तीन दिन हैं। बहुत समय है। हज़ार-आठ सौ औरतें बटोरी जा सकती हैं।'

'तो जोगीराम ऐसा ही करो बाबा, यह इज़्ज़त का सवाल है।'

'अच्छी बात है। तो स्वामीजी ही यह व्यवस्था करेंगे। खर्च का प्रबन्ध हो जाएगा।' जोगीराम ने मरी आवाज़ में हताश स्वर में कहा।

सब बातें तय हो गईं। सभा होने के दिन, दिन निकलते ही कंगलों की भीड़ जनसंघ के चुनाव-कैम्प में एकत्र होने लगी। लम्बी, ठिगनी, मोटी, पतली, बूढ़ी,

बचकानी, काली, गोरी सब जात की औरतें थीं। कुत्सा और गन्दगी का बाज़ार था। स्वयंसेविकाएं उन्हें एक-एक धोती जोगिया रंग की रंगी हुई देती जाती थीं और गुसलखानों में धकेलती जाती थीं। गुसलखानों से कायापलट होकर वे बाहर निकलती थीं। सब खुश थीं। आज उनके आराम का दिन था, मौज-मज़ा का दिन था। नई धोती, पूड़ी, तरकारी, खाना और दो रुपया नकद, और क्या चाहिए!

दुपहर होते-होते जनसंघ-शिविर का कायापलट हो गया। सात सौ औरतें जोगिया साड़ी पहने पूड़ियां उड़ाकर संतुष्टमन पण्डाल में जमी बैठी थीं। कोई पैर फैलाकर और कोई अधलेटी। बीच में चखचख भी चल रही थी। स्वामी-जी की चेलियां उन्हें डांट-डपटकर ढंग से बैठने और चुप रहने को मजबूर कर रही थीं। बारह बजते-बजते स्वामीजी चौकी पर उनके सामने आ बैठे। भक्त-जन भी आ गए। बैण्ड बजने लगा। तमाशाई लोग एकत्र होने लगे। और स्वामीजी ने सत्संग-कीर्तन करना आरम्भ किया। शुरू में गीता के दो-चार श्लोक पढ़े और फिर 'राधेश्याम, राधेश्याम, राधेश्याम हरे हरे। सीताराम, सीताराम, सीताराम हरे हरे।' की मुहारनी करानी आरम्भ की। भक्त स्त्रियों ने नेतृत्व किया। सब स्त्रियां सम्मिलित स्वर में कीर्तन करने लगीं। मर्दों ने, तमाशाइयों ने भी साथ दिया। जनसंघ का यह चुनाव-केन्द्र धार्मिक सत्संग का सभाभवन बन गया। कौन कह सकता था कि ये सब भिखारिनें, झल्लीवाली और आवारागर्द मज़दूरिन औरतें हैं। और जब शाम को जुलूस निकला तो उसकी शान ही निराली थी। आगे-आगे हाथी पर भगवा झण्डा। पीछे बैण्ड बाजा। उसके पीछे दिल्ली के भिन्न-भिन्न जाति के अखाड़े। कोई डंडे खेल रहा था, कोई पट्टे, कोई तलवार-नेज़े के हाथ दिखा रहा था—बीच-बीच में 'बजरंगबली हनु-मान, हर हर महादेव। हिन्दुस्तान अखण्ड है। काश्मीर हमारा है।' के नारे लगते थे। सात सौ जोगियाधारिणी देवीस्वरूप नारियां 'राधेश्याम, राधेश्याम, राधेश्याम, हरे हरे,' की धुन तालियों की ताल पर आलापती चल रही थीं। जोगीराम, स्वामी गीतानन्द, फणीन्द्र बाबू अलग-अलग लारियों की छतों पर पुष्पों से लदे-फदे हाथ जोड़कर अगल-बगल खड़े नर-नारियों को प्रणाम करते जा रहे थे। जुलूस के बाद में काली निकर, सफेद कमीज़ पहने एक हज़ार स्वयं-सेवक गगनभेदी नारों से आकाश फाड़े डाल रहे थे।

६६

जुगनू का ज्वर से पिण्ड छूट गया। परन्तु अभी कमज़ोरी है। चुनाव-आन्दोलन ज़ोर पकड़ता जा रहा है। विद्यासागर का सुझाव है कि अब वह अपने घर चले, तभी सब बातों का सुभीता हो सकता है। बहुत सलाह-मशविरा करना है, चुनाव की तिथि निकट आती जा रही है। लेकिन जुगनू कोई जवाब नहीं देता है। उस छोटे-से कमरे में वह बहुधा अपनी चारपाई पर या तो सोता रहता है, या पड़ा-पड़ा छत को ताका करता है। वह राधेमोहन से बहुत कम बातें करता है। राधेमोहन अब चाहता है कि वह चला जाए। परन्तु स्पष्ट है कि जुगनू के मन में जाने की बात ही नहीं है। राधेमोहन घुटा-घुटा रहता है। कभी वह मन ही मन अपनी मूर्खता पर पछताता है। कहां की इल्लत बांध लाया मैं; वह बहुत बार अपने मन से कह चुका है। जुगनू से भी अब वह अधिक बात नहीं करता। उसका मन होता है कि वह कह दे, 'अब अच्छे हो गए, यहां क्यों पड़े हुए हो, जाओ यहां से।' पर यह कहने का उसे साहस नहीं होता है। इसके अतिरिक्त एक बात और है, उसकी पत्नी को अब जुगनू के वहां रहने में कोई शिकायत नहीं है। सबसे बड़ी तकलीफ मकान की है। गर्मी का मौसम आ गया है। घर में सोने का एक ही कमरा है, वह जुगनू हथियाए बैठा है। पति-पत्नी को रसोई में सोना पड़ता है। बड़ा कष्ट है, बड़ी असुविधा है। गर्मी बढ़ती जा रही है, असुविधा भी बढ़ती जाती है। परन्तु गोमती को कोई शिकायत नहीं है। वह जुगनू की सभी ज़रूरतें यत्न से पूरी करती है। उकताहट या ऊब उसकी किसी चेष्टा में प्रकट नहीं है। राधेमोहन चाहता है कि उसकी स्त्री अब उससे इस बात पर लड़े, कलह करे कि क्यों नहीं जुगनू को घर से निकालते, यह बात जुगनू सुने, और स्वयं चलता बने; पर उसकी स्त्री को तो जैसे कोई शिकायत ही नहीं है। क्यों साहब, क्या बात है, वह अब उससे कहीं अधिक जुगनू की आवश्यकताओं का ख्याल रखती है। परन्तु क्यों? यह प्रश्न राधेमोहन जैसे मूर्ख के मन में भी दिन में दस-बीस बार उठते-उठते, अब तो प्रतिक्षण उठता रहता है। वह बहुत बारीकी से दोनों की नज़रों को भांपता है, पर नतीजा कुछ नहीं हाथ आता। जुगनू न कभी गोमती से बात करता है,

न गोमती उसके सामने कभी जुगनू के पास फटकती है, न उससे बात करती है। उसका आधा घूंघट बेशक उड़ गया है। परन्तु हर वक्त तो वह घर में रहता नहीं है, स्कूल जाता है, ट्यूशन पर जाता है। और भी काम-काज करता है। कभी-कभी जुगनू भी उसे एक लम्बे ट्रिप पर भेज देता है। बड़ी विचित्र बात है कि वह चाहे जितनी देर में घर आए, गोमती कभी उससे जवाब-तलब नहीं करती। उसे ऐसा प्रतीत होता है कि वह अब उसकी कभी प्रतीक्षा भी नहीं करती। उसे अब कुछ ऐसा भी प्रतीत होता है कि वह पहले की अपेक्षा कुछ बुद्धिमान हो गया है। वह समझता है कि जो बातें दूसरे लोग नहीं समझ सकते वह उन बातों को भी समझता है। मगर उसके समझने का नतीजा कुछ नहीं है।

विद्यासागर आता है, डाक्टर खन्ना आते हैं, और भी कांग्रेसकर्मी आते हैं, पर ये सब उसी समय आते हैं जब राधेमोहन घर पर होता है। जब वह घर पर नहीं होता, तो गोमती और जुगनू दोनों अकेले ही घर में रहते हैं। एक बीमार है, दूसरी पर्दानशीन औरत है। दोनों घर से बाहर नहीं जा सकते हैं। म्युनिसिपैलिटी का चपरासी प्रतिदिन ग्यारह बजे नियमित रूप से आता है, और कागजात पर जुगनू के दस्तखत और ज़बानी हिदायतें ले जाता है। कभी-कभार सैक्रेटरी आते हैं। कई बार वे कह चुके हैं कि वे कब यहां से अपने डेरे पर जा रहे हैं। पर जुगनू कोई सीधा जवाब नहीं देता है। हकीकत यह है कि उसका वहां से जाने का मन नहीं है।

६७

जुगनू ने जिस दिन गोमती के हाथ में पर्स थमा दिया और उसकी हथेलियों पर अपने हाथों का दबाव दिया, तब से गोमती का सोया हुआ नारी-तत्त्व जाग उठा है। रुपये एकान्त में जाकर उसने कई बार गिने, पांच सौ थे। अपने जीवन में इकट्ठे इतने रुपये उसने देखे न थे। जुगनू ने कसम खिलाई थी कि वह उन रुपयों की बात राधेमोहन से न कहे। एक मूढ़ता के अस्तित्व के कारण गोमती ने जुगनू की यह कसम रख ली, पति से नहीं कही। तब से

अब तक तो बहुत-सी बातें अब गोमती के हृदय में छिपती ही चली आ रही हैं। वह इन बातों को पति से नहीं कहती है। इंगित से भी प्रकट नहीं होने देती है। बड़े यत्न से छिपाती है। इस काम में वह इतनी होशियार है, यह बात विचारकर वह स्वयं आश्चर्य में पड़ जाती है। पर अब उसकी यह आदत बढ़ती जाती है। जुगनू इस बीच उसे और भी बहुत-से रुपये दे चुका है। हर बार वह उसे कसम देता है कि राधेमोहन से न कहे। परन्तु इस कसम की अब ज़रूरत नहीं है, गोमती कभी न कहेगी—यह बात भी और दूसरी बातें भी, जो इन दिनों होती रहती हैं।

चपरासी प्रतिदिन ही ढेर फल, बिस्कुट, मिठाइयां और खाने-पीने की चीज़ें ले आता है। राधेमोहन को यह मालूम है। अतः इन चीज़ों को देखकर वह अब प्रश्न नहीं करता है। विरोध भी नहीं करता है। खुशी से उन चीज़ों को इस्तेमाल करता है, करने का अपना हक समझता है। परन्तु कुछ और भी चीज़ें आई हैं। विद्यासागर से मंगाई गई हैं। कुछ साड़ियां हैं, कुछ ज़ेवर हैं, कुछ शृंगार-पदार्थ हैं। गोमती का मन इन सब चीज़ों के लालच-लालसा से भरा है, परन्तु वह प्रकट में ना-ना कहती है, पर जुगनू कसम देता है। समझाता है, अभी रख लो, राधे से ज़िक्र मत करो, जब कभी पीहर जाकर लौटो तो कहना, पिता ने दिए हैं। बहुत अच्छा बहाना है। गोमती को रुच गया है। मुंशी को वह अब आंखों से नहीं एक इशारे से देखती है। संसार में ऐसा कोई आदमी हो सकता है, उसे विश्वास नहीं होता। जुगनू का ध्यान आते ही उसकी चेतना में एक आनन्द की लहर आती है। खाते-पीते, सोते-जागते वह जुगनू के सपने देखती है। और एक दिन बांध टूट गया। पति-पत्नी में झड़प हो गई। राधेमोहन ने कहा—

'यह मुंशी तो भई, मक्खी की औलाद मालूम देता है। जाने का नाम ही नहीं लेता।'

'चले जाएंगे, अभी तो कमज़ोर बहुत हैं।'

'तो हमने क्या ज़िन्दगी भर का ठेका लिया है?'

'लाए तो तुम्हीं थे।'

'वह बीमार था। अब अच्छा हो गया, जाए यहां से।'

'तो मुझसे क्या कहते हो, उनसे कहो। मैंने तो उन्हें बुलाया नहीं।'

'तुम क्यों हर वक्त उसकी गुलामी में लगी रहती हो, ज़रा रुखाई करो तो भागे यहां से।'

'मैं क्या गुलामी करती हूं ! घर में बीमार हैं तो खाने-पीने का ध्यान रखना पड़ता है। न रखूं तो तुम्हीं आंखें दिखाओगे।'

'मैं कहता हूं, यह उसके बाप का घर नहीं है, चला जाए यहां से।'

'चीखो मत, सुन लेंगे।'

'सुन ले, क्या मैं उसका दबैल हूं ?'

गोमती जैसे-जैसे ठण्डे जवाब देती जा रही थी, राधेमोहन वैसे ही वैसे तेज़ होता जा रहा था। ऐसा प्रतीत होता था जैसे उसे दिव्यदृष्टि मिल गई है, और उसे कुछ अदृश्य वस्तु दीख रही है। उसका क्रोध अब बढ़ता जा रहा था। उसका मन होता था कि वह अपनी औरत को पीट डाले। यद्यपि उसका कोई कारण वह नहीं जानता था।

वह मुट्ठियां भींचता और पैर पटकता बक-झक कर रहा था।

गोमती ने कहा, 'बस करो, वे सुन लेंगे। लाए तो तुम्हीं थे। शर्म करो।'

'मैं कहता हूं—कहीं उसे उठाकर सड़क पर न फेंक दूं।'

'तो फेंक दो, मुझसे क्या कहते हो।'

गोमती मुंह फुलाकर चौके में घुस गई। और ज़ोर-ज़ोर से बर्तन इधर से उधर पटकने लगी।

राधेमोहन भी भारी-भारी कदम रखता हुआ तेज़ी से घर से बाहर निकल गया।

६८

उसका मन क्रोध से उबल रहा था। और उसमें कुछ सोचने या समझने की शक्ति नहीं रह गई थी। वह नहीं जानता था कि वह क्या करे। बहुत देर तक वह सड़कों पर चक्कर लगाता रहा। फिर वह तेज़ी से एक ओर चल दिया। बीच-बीच में वह मुट्ठियां बांधता था। संदेह और क्रोध ने उसे अंधा कर दिया था। वह अपने ही को कोस रहा था। वह चाहता था कि उस जुगनू के बच्चे

को कत्ल कर दे। पहले तो उसकी स्त्री ने कितना विरोध किया था पर अब हिमायत लेती है। क्या बात है भला ? क्या कारण है उसका ? इस प्रश्न का कोई उत्तर उसे नहीं मिल रहा था—परन्तु एक अज्ञात भय, आशंका उसके मन में एक सिहरन पैदा कर रही थी। ज़मीन उसे तपते तवे-सी लग रही थी। संसार उसकी आंखों में घूम रहा था—और वह एक प्रकार से उन्मत्त-सा हो रहा था, जैसे बहुत-सी भंग उसने खा ली हो। यद्यपि उसके मन में केवल संदेह ही था। वह इतना बुद्धिमान और दूरदर्शी न था कि संदेह और विवेक के मूल कारणों पर विचार कर सके। न उसमें इतना धैर्य ही था कि तथ्य की तह तक पहुंचे। यद्यपि एक मूढ़ता ही इस समय उसे उत्तेजित कर रही थी, परन्तु कोई नैसर्गिक भीति या अनुभूति थी जो उसके अन्तस्तल को छू रही थी। पशु-पक्षी भी जिस बात का अनुभव कर सकते हैं वह क्यों न करता। परन्तु उसमें साहस का सर्वथा अभाव था। विचारशील पुरुष ही साहस कर सकते हैं। संसार का सबसे बड़ा और सबसे सरल अपराध है—कत्ल। कत्ल कमअक्ल या भोंदू लोग नहीं कर सकते। किसीका कत्ल करने के लिए जिस साहस की आवश्यकता होती है—वह विचारशील पुरुष में ही होता है। राधेमोहन एकदम दब्बू, पोच आदमी था, अतः उसे यह सूझ ही नहीं रहा था कि कैसे अपने घर से जुगनू को निकाले और अपनी पत्नी पर काबू पाए।

वह स्कूल नहीं जा सका। बहुत देर तक इधर-उधर घूमता रहा। अन्त में वह किसी अन्तःप्रेरणा से प्रेरित होकर फिर घर जा पहुंचा। घर का द्वार भीतर से बन्द था। सीढ़ियों पर वह चुपचाप जाकर खड़ा होकर सुनने लगा कि भीतर क्या हो रहा है। परन्तु कुछ भी उसे सुनाई नहीं दिया। इसी समय किसीने द्वार खोल दिया। वह जुगनू था, जो हक्का-बक्का राधेमोहन को देख रहा था। सम्भवतः उसने सीढ़ियों पर उसकी पदचाप सुन ली थी। इसी समय राधेमोहन ने देखा—उसकी पत्नी तेज़ी से जुगनू के कमरे से निकलकर रसोई में घुस गई है। उसके वस्त्र भी अस्तव्यस्त हैं। राधेमोहन जुगनू को एक प्रकार से धकेलता हुआ रसोई में घुस गया, और लातों और घूंसों से गोमती को मारना आरम्भ कर दिया। आश्चर्य की बात थी कि गोमती चुपचाप पिट रही थी। न रो रही थी, न चिल्ला रही थी—जैसे गद्दे की धूल झाड़ी जा रही थी। वह भूमि में पड़ी थी। अपने बचाव की भी कोई चेष्टा नहीं

कर रही थी। यह नहीं कहा जा सकता कि अभी इसका क्या परिणाम होता, परन्तु इसी समय जुगनू ने आकर राधेमोहन को अपने हाथों में सिर से ऊंचा उठाकर सहन में फेंक दिया। उसके रोगी शरीर में भी इतना बल था। धरती पर गिरकर राधेमोहन का सिर फट गया। वह 'मार डाला, खून हो गया,' आदि चिल्लाता हुआ ज़ीने से नीचे उतर गया और बीच सड़क पर खड़ा होकर चीखने-चिल्लाने और हाय-तोबा करने लगा।

देखते ही देखते तमाशाइयों की भीड़ लग गई। उसके सारे कपड़े खून से तर हो रहे थे। लोग पूछ रहे थे क्या बात हुई। और वह जुगनू को बेतुकी गालियां दे रहा था। उसे जान से मार डालने की बड़ी कसमें खा रहा था। जुगनू चुपचाप अपनी चारपाई पर आ बैठा। वह शांत और मौन था। गोमती रसोई में ज़मीन पर चुपचाप बैठी थी। घर में सन्नाटा था।

दो-चार आदमी आए। जुगनू से परिचय प्राप्त किया। परिचय प्राप्त करके आदरभाव प्रकट किया। बाद में झगड़े का कारण पूछा। जुगनू ने निरुद्वेग स्वर में कहा, 'यह आदमी पशु की तरह अपनी औरत को पीट रहा था। मुझसे यह न देखा गया—मैंने इसे उठाकर सहन में फेंक दिया। बस, इतनी-सी बात है।'

'स्त्री को क्यों पीट रहा था?'

'यह तो इसीसे पूछिए। परन्तु कारण कुछ भी हो, मैं तो किसी औरत को इस तरह पीटी जाते नहीं देख सकता न?'

'आप ठीक कहते हैं महाशय।' कई लोगों ने जुगनू का समर्थन किया। लेकिन राधेमोहन ने खुले मुंह अपनी स्त्री को व्यभिचारी कहा। और भी बहुत-सी बातें कहीं। बहुत आदमी बहुत बातें कहने लगे। बहुत शोरशराबा हुआ। अन्त में सर्वसम्मति से निर्णय हुआ, जुगनू अपने घर चला जाए। फिर वह जाने, उसकी औरत।

जुगनू ने कहा, 'मैं अभी चला जाता हूं। लेकिन ज्योंही उसने ड्योढ़ी से बाहर कदम रखा, लोगों ने देखा गोमती कदम-ब-कदम उसके पीछे चली आ रही है। राधेमोहन ने उसका रास्ता रोककर गाली देते हुए कहा—

'तू कहां जाती है?'

'मैं इनके संग जाती हूं।'

'मैं तुझे गंडासे से तीन टुकड़े कर डालूंगा।'

'तो जल्दी करो। क्योंकि मैं अब रुक नहीं सकती।'

'मैं देखूं तू कैसे जाती है?'

जुगनू मुंह फेरकर खड़ा हो गया। उसने कहा, 'राधेमोहन, समझा-बुझाकर राज़ी-खुशी से तुम उसे रोकना चाहो तो बात दूसरी है, पर मारपीट करके ज़बर्दस्ती नहीं रोक सकते।'

'वह मेरी औरत है, मैं उसके साथ जो चाहूं करूंगा।'

'औरत तुम्हारी है तो भी तुम उसके साथ जो चाहे सो नहीं कर सकते।'

बहुत स्त्री-पुरुष मुहल्ले के इकट्ठे हो गए थे। कोई कुछ कहता था, कोई कुछ। परन्तु गोमती का जुगनू के साथ जाना किसीको पसन्द न था। इसका सब विरोध कर रहे थे। परन्तु गोमती निरुद्वेग स्थिर-दृढ़ अपना निर्णय सुना रही थी। वह कह रही थी कि मेरी बोटी-बोटी काट डालो पर मैं इनके साथ जाऊंगी, जाऊंगी। मुझे कोई नहीं रोक सकता।

जुगनू के साथ लोगों की सहानुभूति कम होती जा रही थी। लोग कह रहे थे, 'आप जाइए साहब, मियां-बीवी के झमेले में पड़ने से आपको क्या मतलब? बुरी बात है, आप भी शरीफ आदमी हैं।'

'आप लोगों को मेरी शराफत नापने से कोई सरोकार नहीं। सिर्फ आप यह गारण्टी दीजिए कि यह हीजड़ा उससे मारपीट नहीं करेगा, तो मैं चला जाता हूं, वरना पुलिस बुलाता हूं।'

जुगनू के रुतबे को बहुत लोग जानते थे। पुलिस के नाम से वे डर गए। किन्तु कुछ लोगों ने कहा—

'हम ज़ामिन होते हैं। वह मारपीट नहीं करेगा। बस, आप चले जाइए।'

'अच्छी बात है। कौन-कौन ज़ामिन होते हैं, नाम लिखा दीजिए, क्योंकि मैं पुलिस में रिपोर्ट ज़रूर दर्ज कराऊंगा। आप लोगों के ज़मानत देने पर मैं जा रहा हूं, यह भी लिख दूंगा।'

मुहल्ले के दो बुज़ुर्गों ने नाम लिखा दिया। उन्होंने कहा, 'यह तो बड़ी ही ज़बर्दस्ती है। उस गरीब ने बीमारी में आपसे हमदर्दी की, सेवा की और आप उसका यह बदला चुकाते हैं। वाह साहब, वाह। आप बड़े आदमी हो सकते हैं, परन्तु यह भी कोई बात है!'

बात बढ़ती जा रही थी। भीड़ भी बढ़ती जा रही थी। गोमती में जैसे साक्षात् दुर्गा अवतरित हुई थी। वह किसी भी विधि-निषेध को न मानकर जुगनू के साथ जाने पर आमादा थी। सब स्त्री-पुरुषों ने उसे समझाया, लानत-मलामत दी, पर उसकी हठ जारी थी। उन्होंने उसे घेर लिया था। कुछ स्त्रियां कह रही थीं, देखो, यह बहू-बेटियों के लक्षण हैं। कुछ उसकी ओर घृणा से देख रही थीं। कुछ उसे समझा-बुझा रही थीं। मुहल्ले का वातावरण खराब होता जा रहा था, और जुगनू के प्रति रोष बढ़ता जा रहा था। कुछ युवक तू-तू, मैं-मैं करने और मारपीट को भी आमादा हो रहे थे। यह देख जुगनू वहां से खिसक चला।

'मुझे ले चलो, मैं यहां न रहूंगी। मैं जान दे दूंगी।' यह कहती हुई गोमती उन स्त्रियों से छूटने का ज़ोर लगा रही थी जिन्होंने उसे घेर लिया था।

६९

डेरे पर आकर जुगनू निढाल होकर पड़ गया। अभी रोग की उसे दुर्बलता थी। परन्तु अभी-अभी जो इतनी भारी घटना हो गई, खुल्लमखुल्ला दस आदमियों में उसकी इस कदर फज़ीहत हुई उसका उसके मन पर बुरा प्रभाव पड़ा। एक प्रकार के अवसाद में उसका मन डूब गया। उसे यह भी भय हुआ कि कहीं मुहल्ले के लोग राधेमोहन को बढ़ावा देकर कोई और फज़ीहत का काम न करा डालें। वह चार आदमियों को लेकर यहीं न आ धमके। या गोमती ही यहां आ पहुंचे और उसके पीछे-पीछे लोगों का मेला लग जाए। वह जिस हालत में गोमती को वहां चीखते-चिल्लाते छोड़ आया था, उसे देखते सब कुछ सम्भव हो सकता था। उसका मन भय, अवसाद और खीझ से भर रहा था। अभी-अभी उसने गोमती की खुली हिमायत की थी। पर अब उसे दीख रहा था कि वह कितना फूहड़ काम था।

इस वक्त उसका डेरा आदमियों से भरा हुआ था। चुनाव की चहल-पहल का वह अड्डा हो रहा था। विद्यासागर ने उसके ड्राइंग रूम पर अधिकार जमाया हुआ था। गद्देदार कोचों पर ऊपर पैर रखे एक से बढ़कर एक बेहूदे, आवारा

लौंडे हंस-हंसकर अपनी चुनाव-सम्बन्धी तिकड़म की प्रशंसा कर रहे थे। विद्यासागर अपने काम में व्यस्त था। जुगनू को इस वक्त यह भीड़भाड़ और शोर अच्छा नहीं लग रहा था। वह एकान्त चाहता था, शांति चाहता था। वह चुपचाप अपने सोने के कमरे में चला गया। विद्यासागर से उसने कह दिया कि वह उसे सोने दे, और शोर जहां तक सम्भव हो कम करे। उसने नवाब को तुरन्त बुलाने को आदमी भेज दिया था। और अब वह भीतर कमरे का दरवाज़ा बन्द करके पलंग पर पड़ा बड़ी ही बेचैनी से उसासें ले रहा था।

नवाब ने आकर उसका कुशल-मंगल पूछा, और दोनों दोस्तों में दिल खोलकर बातें होने लगीं। बहुत दिन बाद दोनों दोस्त तखलिए में मिले थे।

नवाब ने कहा, 'बहुत परेशान हो रहे हो, क्या बात है ?'

'बात क्या है, जिस बात का डर था, वही हुई। बड़ी फज़ीहत हुई।'

नवाब ज़रा हंस दिया। हाथ की सिगरेट सुलगाकर उसने कहा, 'हुआ क्या ?'

'हरामी ने रंगे हाथों आ पकड़ा। वह मेरे ही कमरे में थी। हमें उम्मीद भी न थी कि वह इस वक्त आ धमकेगा।'

'बड़ी हिमाकत का काम किया उसने, इस तरह गंवारों की तरह आ धमका ! उसे पहले अपने आने की इत्तला देकर इजाज़त लेनी चाहिए थी।' नवाब यह कहकर हंसने लगा।

'तुम्हें तो देखता हूं फब्तियां कसने और हंसने से ही फुर्सत नहीं है।'

'दोस्त, मैं चाहता हूं कि तुम भी हंसो। हंसने से तुम्हारी सेहत को फायदा होगा।'

'लेकिन तुम मेरी बेचैनी को क्या जानो !'

'तो एक गिलास शर्बत अनार पियो मियां, बेचैनी खट से दूर हो जाएगी।'

'अब तुम जा सकते हो नवाब, मैं ज़रा सोऊंगा।'

नवाब खिलखिलाकर हंस पड़ा। उसने कहा, 'क्या खूब, हमींसे बिगड़ने लगे। तो फिर हमें बुलाया क्यों था ?'

'फब्तियां कसने और जी जलाने को बुलाया था।'

'खैर, अब काम की बात कहो, क्या चाहते हो ?'

'यह बताओ, वह चली आई, और उसके पीछे मुहल्लेवालों की एक

बारात लेकर वह लफंगा नामर्द भी यहां आ पहुंचा, और तमाशा शुरू कर दिया तो क्या होगा ?'

'मैं तो ऐसी कोई संभावना नहीं देखता ।'

'फिर भी उस हालत में क्या किया जाएगा ? सारी इज़्ज़त धूल में मिल जाएगी, चुनाव की सफलता भी खटाई में पड़ जाएगी । बड़ी ही बदनामी होगी। वे बदज़ात अखबारवाले ज़मीन-आसमान एक कर देंगे। वे तो ऐसे ही स्टंट की तालाश में रहते हैं।'

'लेकिन ऐसा होगा ही यह क्यों सोचते हो ?'

'बुरी बात पहले सोचनी चाहिए।'

'तो फिर देखा जाएगा । नवाब तो कहीं मर नहीं गया है । तुम इत्मीनान से आराम करो और अभी सब किस्म के तरद्दुदों से बचो । वरना सेहत को खतरा है ।'

'लेकिन इज़्ज़त पर खतरा आया तो मैं तो जान ही दे दूंगा ।'

'दोस्त, मुहब्बत में तो खतरे ही खतरे हैं । लेकिन तुम नवाब पर भरोसा करो । मैं सब ठीक कर लूंगा । मैं अभी वहां जाता हूं । और उस गधे राधेमोहन से मिलकर पटरी बैठाता हूं । लेकिन एक बात बताओ सच-सच ।'

'पूछो ।'

'क्या तुम उस औरत को प्यार करते हो, उसे उसके खाविन्द से छीन लेना चाहते हो ?'

जुगनू खामोश हो गया । इस समय इस प्रश्न का जवाब उसके पास न था। कोई एक अमोघ शक्ति इस समय उसके कान में कह रही थी कि प्यार-व्यार की बात झूठ है । परन्तु उसने कहा, 'प्यार शायद करता हूं, शायद नहीं करता, कुछ कह नहीं सकता।'

'खैर, पद्मादेवी के सम्बन्ध में क्या कहते हो ?'

'उसे मैं प्यार करता हूं।'

'अच्छा। यदि तुम्हें दोनों में से एक को चुनना हो तो किसे चुनोगे ?'

'पद्मा को।'

'अब यदि किसी तरह बिना झगड़े-झंझट यह औरत तुम्हारे पास आ जाए, अपने खाविन्द को छोड़ दे, राधेमोहन भी झगड़ा न करे, तो तुम क्या उसे रख

लोगे ? याद रखो, ब्याह नहीं कर सकोगे। उसका खाविन्द ज़िन्दा है। और वह अदालती फज़ीहत नहीं बर्दाश्त करेगा। इसके अलावा यह झगड़ा अदालत में गया तो बदनामी तुम्हारी भी कम नहीं होगी।'

'खैर, यदि कोई झगड़ा न हुआ तो मैं उसे रख लूंगा। पर रखूंगा कहां ?'

'यह कोई मुश्किल बात नहीं है। उसके लिए मकान आदि का मैं बन्दोबस्त कर दूंगा। तुम जब जी चाहे वहां आ-जा सकते हो ? लेकिन एक बात का जवाब दो कि यदि पद्मा भी किसी अघट घटनावश तुम्हारे पास आ जाए तो तुम क्या करोगे ?'

'बिला शक मैं इस औरत को ठोकर मार दूंगा। पद्मा के पैरों की धूल के बराबर भी वह नहीं हो सकती।'

'तो मेरे दोस्त, इतने ज़ालिम न बनो। बुरा किया तुमने कि उसके दिल में आग सुलगा दी। बेचारी बदनसीब औरत अपने खूंटे पर बंधी थी। अब तुम वहां से खोलकर उसे बेघरबार करना चाहते हो। यह नहीं होना चाहिए। जो होना था, वह तो हो चुका। पर अब मन को लगाम दो। आगा-पीछा सोचो। उसका विचार छोड़ दो। उसे उसी खूंटे से बंधा रहने दो। दर्मियानी तूफान को मैं जाकर अभी ठण्डा किए देता हूं।'

'लेकिन नवाब, पद्मा का मिलना आसान नहीं है। शोभाराम से दगा करते मेरा दिल शर्माता है। हां, यह बात ज़रूर है कि पद्मा को देखकर मैं अपने को काबू में नहीं रख सकता।'

'मैं तुम्हें इसके लिए मलामत तो नहीं देता। मैं तो यही कहता हूं, तेल देखो तेल की धार देखो। धीरज रखो और कुदरत का करिश्मा देखो। लेकिन इस औरत को छोड़ो, इससे तुम्हारी न निभेगी। हां, ज़िन्दगी भर निबाह ले जाने का कौल करो तो मैं अभी उसे लाकर तुम्हारे पलंग के पास खड़ा कर सकता हूं।'

'मैं किसी प्रकार का कौल नहीं दे सकता,' इतना कहकर जुगनू ने बेचैनी से एक करवट बदली।

'बस, तो इस औरत को अपनी राह से दूर करो।'

'तुम जैसा ठीक समझो करो। मेरा दिमाग काम नहीं दे रहा।'

'तो तुम सो रहो। और अपने चुनाव को सफल बनाने में ध्यान दो।'

नवाब ने एक सिगरेट जलाई और उठकर चल दिया।

७०

जुगनू की दलाली रंडी की दलाली से बहुत अधिक लाभदायक प्रमाणित हुई। एक ही वक्त में नवाब ने पचास हज़ार की पुड़िया बना ली। और अब उसने रैडीमेड कपड़े की एक शानदार दुकान चांदनीचौक में खोल ली थी। नवाब मिलनसार, खुश-अखलाक, ज़िन्दादिल, और अदब-कायदे से चाक-चौबन्द आदमी था। इसके अतिरिक्त वह अब दिल्ली की म्युनिसिपिल कमेटी का एक लाभदायक गुप्त साधन बन गया था, अतः बहुत गर्ज़मंद उसके तलुए सहलाते थे। और नवाब से जो एक बार मिल लेता था वह सदा के लिए उसका दोस्त हो जाता था। नवाब में एक ज़बर्दस्त बात यह थी कि वह किसी आदमी के रुआब में नहीं आता था। उसकी नम्रता में दबंगता थी। विनय में शालीनता थी। इन सब बातों के ऊपर वह बातों का धनी और वायदे का पक्का था।

निस्संदेह जुगनू को नवाब की आमदनी की अपेक्षा अठगुनी आय हुई थी। पर नवाब के सत्परामर्श से जुगनू अपनी इतनी बड़ी आय को यत्न से छिपा रहा था। यद्यपि उसके खर्चे अब बहुत बढ़ गए थे, पर वह प्रकट में बहुत सोच-समझकर खर्च करता था। चुनाव पर उसका धेला भी खर्च नहीं हो रहा था। लाला फकीरचन्द के दिए दो लाख रुपयों की विद्यासागर निर्द्वन्द्व होली जला रहा था। इस तरह, नवाब और जुगनू की दोस्ती सोने में सुहागे का मेल था। दोनों दोनों से पूरा लाभ उठा रहे थे। और दोनों दोनों से खुश थे।

इधर नवाब ने अपने कारोबार में अधिक दिलचस्पी प्रकट की थी और वह अब काम होने पर जुगनू से मिलता था। जुगनू भी उससे काम से ही मुलाकात करता था। कभी-कभी तो महीनों मुलाकात नहीं होती थी—वास्तव में यह बात दूरदर्शितापूर्ण थी—और दोनों ही के लिए हितकर थी।

यह नवाब ही के बलबूते की बात थी कि उसने जुगनू की असंयत और असंस्कृत वृत्ति को संयत और नियंत्रित रखा था। नवाब का यह सावधान

विवेचन नीति या धर्म पर आधारित न था, जीवन के सत्यों पर आधारित था। वह आदर्शवादी न था, व्यवहारवादी था। नैसर्गिक उद्वेगों को उभरने देना और उन्हें नैसर्गिक रूप में ही शमित होने देना—उसके विचार में सच्चा जीवनदर्शन था, जिसे उसने स्वयं अपने जीवन में भी और जुगनू के जीवन में भी आरोपित किया था। चरित्र, विचारशक्ति और दूरदर्शिता की दृष्टि से वह जुगनू से कहीं अधिक ऊंचा था। जुगनू में न चरित्र की दृढ़ता थी, न विचार-विवेक की दूरदर्शिता। यह बात जुगनू जानता था। और वह नवाब की राय की कद्र करता था। नवाब की इज़्ज़त भी करता था। वह जान गया था कि नवाब उसके जीवन का सर्वोपरि सहारा है। नवाब में एक गुण और था—वह अपने दुर्गुण भी जुगनू से न छिपाता था। सच पूछा जाए तो रंडी के इस दलाल में दुर्गुण थे ही नहीं। वह जो रिश्वत या कटौती या कमीशन जुगनू के सौदे में लेता था, वह जुगनू के सामने, उसीके हाथों से। ऐसे मामलों में जुगनू सीधा हाथ नहीं डालता था। सारे सौदे अब नवाब की ही दुकान में होते थे और नवाब ही नोटों के गट्ठर उसे दे आता तथा अपना हिस्सा ले आता था। इसी तरह काम आगे बढ़ता जा रहा था। मजे की बात यह थी कि इस सम्बन्ध में न जुगनू की कोई बदनामी हो रही थी, न शिकायत। लाला बुलाकीदास के कानों तक कुछ बातें पहुंचीं भी तो उन्होंने सुनी-अनसुनी कर दीं। इन छोटी-छोटी बातों पर विचार करने की उन्हें फुर्सत भी नहीं थी। जुगनू-नवाब का मिलन—मैत्री—कुछ थोड़े ही व्यक्तियों तक सीमित था।

७१

'बड़े हौसले की औरत निकली, जान पर खेल गई !'

'गोमती ने छत से कूदकर आत्महत्या कर ली और पुलिस पोस्टमार्टम के लिए लाश ले गई है'—नवाब के मुंह से यह बात सुनकर जुगनू बिछौने पर से उछल पड़ा। क्षण भर उसके मुंह से बात ही नहीं निकली। फिर उसने धीरे से कहा, 'बहुत बुरा हुआ नवाब, पुलिस यहां भी आ पहुंचेगी। और इस दुर्घटना से मेरा सम्बन्ध जोड़कर अखबारवाले दिल्ली को सिर पर उठा लेंगे।'

'कुछ भी नहीं होगा दोस्त। मैंने कहा न कि बीती ताहि बिसारि दे आगे की सुधि लेहु। पुलिस से मैंने मामला तय कर लिया है। दो हज़ार रुपये लेकर उसने मामला रफा-दफा कर दिया। दिमाग खराब था, एकाएक छत से कूद पड़ी। डाक्टर को भी उन लोगों ने पटा लिया। तुम्हारा नाम इस झंझट में नहीं आएगा। मैंने राधेमोहन को भी समझा दिया है कि इज़्ज़त का सवाल है, वह चुप रहे। परन्तु वह बिलकुल बदहवास हो रहा है और सिर धुन रहा है। पर तुम्हारे खिलाफ अब वह मुंह नहीं खोलेगा। बहुत झिकझिक करनी पड़ी—लाओ, चाय पिलाओ इसी बात पर।'

इतना कहकर नवाब ने सोफे पर पांव फैला दिए। नौकर चाय रख गया। पर जुगनू के हलक से चाय नहीं उतर रही थी। इक्कीस दिन वह उस बदनसीब औरत के पास रहा, उसके अल्हड़ अज्ञान से लाभ उठाकर उसने उसके तन-मन को अपने में समेट लिया। किस तरह कबूतरी की तरह उसने आत्मसमर्पण कर दिया, और मर मिटी। ये सब बातें तस्वीर की भांति उसकी आंखों में नाच गईं, एक शब्द भी उसके मुंह से नहीं निकला। वह एक असंयत और चरित्रहीन तरुण तो था, परन्तु कोमल भावनाएं अभी उसमें थीं। उसकी आंखें गीली हो गईं। नवाब ने कहा, 'यार, कैसे मर्द हो, औरत के लिए आंखें भर लाए!'

लेकिन जुगनू ने जवाब नहीं दिया। आंसू पोंछकर वह चुपचाप पलंग पर पड़ रहा।

नवाब ने सिगरेट हाथ से फेंक दी। उसने वहां से उठ चलना ही ठीक समझा। वास्तव में इस समय जुगनू को एकांत की आवश्यकता थी। नवाब ने कहा, 'बड़े नादान हो दोस्त! अब तुम ज़रा सो रहो।' यह कहकर नवाब वहां से चल दिया।

७२

पद्मा का खत पाकर जुगनू एकदम असंयत हो गया। पत्र में लिखा था, 'तुमने कहा था कि मैं तुमपर विपत्ति के दिनों में भरोसा रखूं, सो अब वह घड़ी आन पहुंची। बस, तुम अब चले ही आओ कि उन भयंकर घड़ियों में मैं अकेली न रहूं। रात-दिन की असह्य यन्त्रणा झेलते-झेलते मेरी सारी शक्ति और साहस खत्म हो चुका है। अब मैं तुम्हारे ही आसरे हूं। जगन, मेरे पति का न कोई परिवार है न मित्र, धरती और आसमान पर मेरे जो कुछ भी हो तुम्हीं हो।'

पत्र का एक-एक अक्षर दर्द की तड़प से भरा हुआ था, यह एक असहाय अबला स्त्री की पुकार ही केवल न थी, एक प्रेमभिक्षुणी की प्रेमभिक्षा थी। चाहे जो भी हो, जुगनू में चाहे भी जितनी उद्दाम वासना थी, पर पद्मादेवी के प्रति उसका प्रेमातिरेक कम न था। यह सम्भव ही न था कि वह पद्मा के इस आर्तनाद को सुना-अनसुना कर दे। वह सब काम छोड़छाड़कर उसी रात मसूरी को चल दिया। चलती बार उसने रवानगी का यद्यपि तार दिया था, परन्तु उसे लेने बस के अड्डे पर कोई नहीं आया था। कुली साथ लेकर वह चल दिया। हैपी वैली पर एक एकांत टेकरी पर एक छोटा-सा काटेज था जहां पद्मा शोभाराम को लेकर ठहरी थी। एक पहाड़ी नौकर उसने यहीं रख लिया था। बहुत खोज-जांच करता हुआ जब जुगनू वहां पहुंचा तो चारों ओर सन्नाटा देख उसके मन में सिहरन पैदा हो गई। एक भीति की आशंका ने उसे घेर लिया। न जाने उसे क्या अशुभ समाचार सुनने और भयानक दृश्य देखने को मिले।

अन्ततः वह काटेज के द्वार पर जा पहुंचा। द्वार भीतर से बन्द था। आवाज़ लगाने पर पद्मा बाहर आई। ओफ, पद्मा का यह रूप बड़ा अद्भुत था। बिखरे हुए बाल, जिनमें महीनों से कंघा नहीं किया गया था; सूखा हुआ मुंह, जिसपर रक्त की एक बूंद भी नहीं। लापरवाही से शरीर पर लिपटे हुए मलिन वस्त्र, फटी-फटी उन्मादिनी जैसी दृष्टि, रक्तहीन सफेद सूखे होंठ। यह सब देखकर जुगनू को काठ मार गया, उसने कुछ कहना चाहा पर उसका कण्ठ न फूटा। पद्मा

पागल की तरह उसे देखती खड़ी रही, फिर वह धाड़ मारकर पछाड़ खाकर भूमि पर गिर गई।

आवाज़ सुनकर पहाड़ो नौकर दौड़ा हुआ बाहर आया। दोनों ने मिलकर पद्मा को बिछौने पर जा सुलाया। पद्मा बेहोश पड़ी रही। परन्तु थोड़ी ही देर में उसकी बेहोशी दूर हुई। पहले उसने आंखें फाड़कर जुगनू की ओर देखा, फिर वह मुंह फेरकर फफक-फफककर रो उठी। उसकी आंखों से गंगा-जमुना की धार बह चली, अनवरत धार, जिसका न आदि था न अंत।

जुगनू अब भी एक शब्द न बोल सका। वह घटना समझ गया था, और एकाध बात सांत्वना की कहना चाह रहा था। पर उसके हलक से बात फूटती ही न थी। वह चुपचाप पद्मा का माथा सहलाने लगा। बहुत देर तक सब कोई योंही चुपचाप नीरव रहे। अन्त में जुगनू ने नौकर की ओर देखकर कहा, 'कब ?'

'कल तीसरे पहर।' फिर उसने कुछ ठहरकर कहा—

'बीबीजी ने तीन दिन से पानी की बूंद भी नहीं ली है, उन्हें कुछ खिला-पिला दीजिए।'

जुगनू ने भर्राए स्वर से कहा, 'घर में कुछ है ?'

'दूध है। मैं अभी गर्म किए लाता हूं।'

नौकर जल्दी ही एक प्याले में दूध ले आया। जुगनू ने कहा, 'पद्मारानी, जिसे जाना था वह चला गया, जिन्हें रहना है वे रहेंगे। जीवन भी एक विकट संग्राम है। इसमें हमें हारना नहीं है, जीतना है। लो, ज़रा-सा दूध पी लो।'

परन्तु पद्मा का रोना नहीं रुक रहा था। वह मुंह में कपड़ा ठूंसकर बिलख रही थी। जुगनू ने कहा, 'इस तरह दुखी होने से क्या मरा आदमी आ जाएगा ?' फिर उसने सहमते हुए एक खास लहजे में कहा, 'जानेवाला चला गया, और आनेवाला आ गया। लो, दूध पी लो।'

एक बार क्षण भर को पद्मा ने सूजी हुई और लाल-लाल आंखों से जुगनू की ओर देखा। कुछ कहने के लिए उसके होंठ हिले। परन्तु इसी समय जुगनू ने उसे हाथों का सहारा देकर ज़रा ऊपर उठाया और दूध का प्याला उसके मुंह से लगाते हुए कहा, 'पद्मा, तुम जगन को मरा ही देखो जो दूध न पिओ।'

पद्मा ने दूध पी लिया। वह उठकर बैठ गई। आंसू उसने पोंछ डाले।

जुगनू ने कहा, 'तुमने खत क्यों लिखा, तार क्यों नहीं दिया ?'

'उन्होंने नहीं देने दिया। खत भी मैंने उनसे छिपाकर लिखा था।'

'कैसे अफसोस की बात है! आखिरकार मैं उन्हें देख भी न सका।' एक बार जुगनू की आंखों में अपनी जीवन-घटनाएं तथा अपनेपर किए गए शोभाराम के उपकार सिनेमा के चलचित्र की भांति घूम गए। उसकी आंखों में आंसू छलछला आए। पद्मा ने देखा तो कहा, 'अब तुम क्यों रोते हो ?'

'ठीक है। हमें रोना नहीं चाहिए। रोने से कोई लाभ नहीं है।' जुगनू ने कहा। फिर कुछ रुककर पूछा, 'उन्होंने कुछ अन्तिम इच्छा प्रकट की थी ?'

'कुछ नहीं। मरने से दो दिन पूर्व ही से उन्होंने बोलना बन्द कर दिया था। सिर्फ मेरी ओर देखते और आंसू बहाते थे। पर होश उन्हें अन्त तक रहा।'

'पुण्यात्मा जीव थे। भगवान उनकी आत्मा को शांति दे। लेकिन पद्मा, अब तुम्हें सब्र करना होगा।'

'हां, सब्र ही करना होगा।' पद्मादेवी ने ठंडी सांस खींची।

नौकर चाय ले आया। पर जुगनू ने उसकी ओर देखा तक नहीं। पद्मा ने सूखे कंठ से कहा, 'एक प्याला चाय पी लो और मुझे बताओ, मैं क्या करूं।'

'जब तक मैं ज़िन्दा हूं, तुम्हें किसी बात की चिन्ता करने की ज़रूरत नहीं है। लेकिन यह जगह तो बड़ी सुनसान है, यहां तुम अकेली नहीं रह सकतीं।'

'क्या तुम मुझे यहां छोड़ जाओगे ?' पद्मा ने भरे कंठ से कहा।

'हम अभी सब बातों पर विचार कर लेंगे। परन्तु अभी तो यह आवश्यक है कि यहां से हम चल दें।'

'नहीं, अशौच जब तक है, मैं कहीं न जाऊंगी।'

'बड़ी मुश्किल है, परन्तु मैं तो अधिक देर तक ठहर नहीं सकता।'

'तो मैं अकेली ही रहूंगी।'

'परन्तु यहां मसूरी ही में बस्ती के भीतर कोई बंगला ले लिया जाए तो कैसा रहे ?'

'अशौच तक तो मैं यहीं रहूंगी।'

'खैर, जैसी तुम्हारी इच्छा। ऐसी हालत में मुझे भी मजबूरन रहना होगा।

तुम्हें इस हालत में मैं यहां अकेले नहीं छोड़ सकता। लेकिन मैं यह चाहता हूं कि अभी कुछ महीने, कम से कम गर्मी भर, तुम मसूरी ही में रहो। मैं बंगले का प्रबन्ध कर दूंगा। इसके बाद आगे की बातों पर विचार कर लिया जाएगा।'

'जैसा तुम ठीक समझो।' पद्मा ने एक विचित्र दृष्टि से जुगनू की तरफ देखा और आंखें नीची कर लीं।

७३

अशौच के सब उपचार सादा रीति से सम्पन्न हो गए। शोभाराम अब बीती हुई बात हो गए। पद्मा के लिए जुगनू ने लंढौर में एक बंगला ठीक कर लिया। बंगला छोटा-सा रमणीक था। सहन में एक छोटी-सी फुलवारी भी थी। पास-पड़ौस में अनेक सद्गृहस्थ थे। पद्मा वहां उठ आई। नौकर साथ था। आवश्यक सामग्री खरीद ली गई। अब जुगनू को यहां आए दस दिन बीत रहे थे। उसने कहा, 'अब तो मुझे जाना ही होगा। इलैक्शन हो रहा है। तीन तार आ चुके हैं।'

'तब जाओ, जब तक न आओगे आंखें उधर ही लगी रहेंगी।' पद्मादेवी की आंखें छलछला आईं। उसने कहा, 'असहाय, कमज़ोर औरत हूं। हाथ पकड़ते हो तो निबाह करना, ऐसा न हो मैं कहीं की न रहूं।'

'पद्मारानी, मैं तुम्हें प्राणों से बढ़कर समझूंगा। हम लोग देवता और सूर्य के समक्ष अब पति-पत्नी हैं, यथासमय कानूनी विधि-विधान भी हो जाएगा।'

'यह सब मैं नहीं जानती। मैंने तो तन-मन तुम्हें सौंप दिया।'

'सो इसके लिए तुम्हें कभी पछताना न पड़ेगा पद्मारानी, मैं तुमपर जान न्यौछावर कर दूंगा।'

'मैंने बहुत चाहा कि मैं तुम्हें भूल जाऊं। उनके रहते मैं पापिनी बनी, तन से न सही, मन से ही। अब जो भला-बुरा होना था हो गया। अब तुम्हें छोड़ मेरी गति कहां है! सो मेरी लाज रख लेना।' पद्मा फूट-फूटकर रोने लगी।

जुगनू ने उसे खींचकर छाती से लगाकर और उसका मुंह चूमते हुए कहा, 'मेरी प्यारी पद्मा, मैं भी तुम्हारे लिए तड़प रहा था। अब कौन हमें जुदा कर सकता है !'

'मैंने मन को बहुत समझाया। तुम्हारे विरुद्ध विद्रोह किया, पर अन्त में हार बैठी। तुम मुझे निर्लज्ज कह सकते हो। पर मैं तन-मन से बहुत दिन पूर्व से ही तुम्हारी हो चुकी थी। और अब तो तुम ही मेरे सर्वस्व हो।'

'तुम पद्मा, मेरे नेत्रों की रोशनी, हृदय की देवी, आत्मा का शृंगार और जीवन का सहारा हो। अब यह सारा ही जीवन तुम्हारा है। केवल तुम्हारा।'

उसने पद्मा को फिर आलिंगनपाश में बांध लिया। बहुत देर तक पद्मा उसके वक्ष से लगी सुबकियां लेती रही।

अन्त में बहुत-सी बातें समझा-बुझाकर, बहुत-से लम्बे-लम्बे आशा-सूत्र गूंथकर जीवन की अनेक झांकियों की चर्चा करके जुगनू वहां से दिल्ली के लिए रवाना हुआ। चलते समय दो हज़ार रुपये उसने पद्मा के हाथों में रखते हुए कहा, 'खर्च की तकलीफ मत पाना पद्मारानी। मैं जल्द ही तुमसे मिलूंगा।'

जुगनू चला गया। पद्मा बहुत देर तक उस जाते हुए को देखती रही, आंसू-भरी आंखों से, हृदय में आशाओं और सुखद कल्पनाओं के बोझ से पीड़ा और वेदना को दबाती हुई, आंसुओं पर मुस्कान की मुहर लगाती हुई, धड़कते हृदय को धीरज देती हुई। हाय रे स्त्री के असहाय जीवन ! विधाता ने स्त्री को लता के समान परवर्ती बनाया, जो अकेली, बिना सहारे नहीं रह सकती।

७४

डेमोक्रेसी का क्या ही बेहूदा और बेईमानी से भरा हुआ तरीका है यह चुनाव का सिस्टम, जिसके लिए दुनिया भर के अनीतिमूलक काम धूमधाम से किए जाते हैं। और दुनिया भर की गुण्डागर्दी करके चुनाव जीते जाते हैं, और तब अपने को जनता का चुना हुआ प्रतिनिधि कहकर बेहयाई की सीमा लांघ दी जाती है।

चाहिए तो यह कि योग्यतम पुरुष को जनता अपना प्रतिनिधि चुने। और वह लोकसभा या दूसरे सार्वजनिक हितों से सम्बन्धित स्थलों पर जाकर अपनी प्रतिभा, बुद्धि, विवेचना-शक्ति से शासन की गतिविधि को लोकहित और जन-सेवा के प्रति अभिमुख करे। सच्ची लोकशाही यही है। परन्तु चुनावों का ढर्रा तो बड़ा ही अनोखा है।

गणतन्त्रों का एक भारी दोष यह है कि उनमें योग्यतम व्यक्ति को अधिकार नहीं मिलता। गुटों के प्रतिनिधि को अधिकार मिलता है। चाहे उसमें योग्यता हो या नहीं। इस समय देश कई गुटों में बंटा हुआ था, जिनसे परस्पर-विरोधिनी शक्तियां बनी हुई थीं—समाजवादी, कम्युनिस्ट, और जाने कौन-कौन-से गुट; और अब देश की व्यवस्था का सुचारु रूप से संचालन करने के लिए जहां देश के योग्यतम जनों को जनप्रतिनिधियों के रूप में शासन-केन्द्रों में जाना चाहिए था, वहां इन गुटों के अयोग्य प्रतिनिधि भरे हुए थे। अंग्रेज़ी शासन में जिन कुर्सियों पर सर फिरोज़शाह मेहता, महामना मालवीय, गोपाल-कृष्ण गोखले, सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, पंजाबकेसरी लाला लाजपतराय और श्रीनिवास शास्त्री जैसे महामहिम सुशोभित हो गुलामी के वातावरण में भी अपनी आभा ध्रुव नक्षत्र की भांति प्रकट कर चुके थे, वहां अब दूध बेचनेवाले, अखबार बेचनेवाले बैठे मौज-मज़ा कर रहे थे। वे वेतन-भत्ता लेते, टांग पसारकर कुर्सियों पर ऊंघते और चैन की बंसी बजाते थे। मिनिस्टरों के दिन ईद और रात दिवाली में परिणत हो गए थे। वे अपने विभागों से सम्बन्धित विषयों को नहीं जानते थे। अपने विभागों के कार्यकलापों से अनभिज्ञ थे। उनकी योग्यता केवल यही थी कि वे अमुक दल के प्रतिनिधि हैं। बस, इसी योग्यता पर उन्हें कहीं न कहीं मिनिस्टर, गवर्नर, राज्यपाल या अलाय-बलाय कुछ बनाकर मालमलीदे उड़ाने और चैन की बंसी बजाने की प्रबन्ध-व्यवस्था कर दी जाती थी। और जवाहरलाल जैसे समर्थ युगपुरुष भी उनके जाल में उलझकर जनहित के कार्यों में लगनेवाली शक्ति का अधिकांश इस ताने-बाने की उलझन सुलझाने में लगा रहे थे। देश में चोरबाज़ारी, रिश्वत, अशान्ति, षड्यन्त्र, अव्यवस्था, भुखमरी और भ्रष्टाचार फैलता जा रहा था। लोग समझ रहे थे कि हम पठानों के युग में लौट आए हैं। अंग्रेज़ों की गुलामी का सुख उन्हें याद आ रहा था।

योग्यतम आदमी निरुपाय बैठे थे। उन्हें धकेलकर पीछे फेंक दिया गया था। हिन्दू समझते थे यह हमारा राज्य नहीं है, जनसंघ उनका प्रतिनिधित्व करता था। और उसके सदस्य विरोधी बैंचों पर सरकार की हरकत पर अड़ंगा लगाने पर आमादा बैठे थे। मुसलमान समझ रहे थे यह हमारा देश ही नहीं है। सिख, पारसी, यहूदी अपने अल्पसंख्यक होने की दुहाई देकर बात-बात में विशेषाधिकार की हायतोबा कर रहे थे। कांग्रेस की सारी प्रतिष्ठा और सारी साख का दिवाला निकल चुका था। उसका तप और कष्ट से संचित धवल यश मैला और गंदा हो चुका था। खद्दर की पोशाक हास्यास्पद और ढोंग समझी जा रही थी। जनता में कांग्रेस-विरोधी तत्त्व पनपते जा रहे थे। अवसरवादी कांग्रेस में घुसकर ऊंची कुर्सियों पर जमते जा रहे थे। पुराने तपे हुए कर्मठ देशभक्त निराश और क्षुब्ध या तो अब सरकारी बैंचों का विरोध करते थे या अपनी अलग ढफली, अलग राग अलाप रहे थे। राजसत्ता के विरुद्ध जो असंतोष और अशांति तथा अविश्वास अंग्रेज़ी राज्य में था, वही बल्कि उससे भी कहीं अधिक आज इस स्वदेशी राज्य में उत्पन्न होता जा रहा था। और इसका कारण स्पष्ट था कि यह वास्तव में सही रूप में जनता का राज्य न था। जनता अब भी अपने को राज्यसत्ता से पीड़ित प्रजा समझती थी। जिन गुटों के प्रतिनिधि इस तथाकथित गणतन्त्र को चला रहे थे, उनमें न विचारों में, न दृष्टिकोण में एकता थी, न परस्पर प्रेम और विश्वास की भावना ही थी, संदेह और अविश्वास एक दूसरे के प्रति बना हुआ था। प्रत्येक गुट अपने गुट की छोटी से छोटी स्वार्थ-कामना को देशहित से बड़ा समझ रहा था, उसकी पूरी सिद्धि चाह रहा था और दूसरों की बड़ी से बड़ी तथा युक्तियुक्त आवश्यकता को भी तुच्छ समझता था। सबसे बड़ी बाधा थी कम्युनिस्ट गुट की, जो प्रत्येक सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था को सोवियत दृष्टिकोण से देखता था। वह देश और सरकार के ऐसे किसी भी उचित-अनुचित कार्य का, जो कम्युनिस्ट क्रिया-कलापों के विपरीत हो, विरोध करता था, और यह गुट धीरे-धीरे देश की सबसे बड़ी राजनीतिक और आर्थिक बाधा बनता जा रहा था। संक्षेप में इस भारतीय गणतन्त्र की दशा ठीक रेलगाड़ी के उस तीसरे दर्जे के डिब्बे के समान थी जिसमें सुविधाएं कम और असुविधाएं अधिक थीं; जहां प्रत्येक आदमी अपने ही आराम, अपनी ही सुख-सुविधा का

ख्याल रखता है और दूसरों को जलती आंखों से देखता और ज़रा-ज़रा-सी बात पर लड़ पड़ता है। इस प्रकार उदीयमान भारत की ओर एक तरफ जहां संतप्त संसार आशा की दृष्टि लगाए बैठा था, जहां नेहरू ने अपनी सामर्थ्य से तीसरी शक्ति, शान्ति का प्रादुर्भाव किया था, वहीं दूसरी ओर भारत का गणतंत्र संघर्षों, द्वेषों, आपाधापी, चोरबाज़ारी की कारस्तानियों और अन्धेरगर्दियों का अखाड़ा बना हुआ था। ऐसी दशा में जुगनू जैसों का मिनिस्टरी की कुर्सी पर आ बैठना आश्चर्यजनक न था। अकेला जुगनू ही इस प्रकार का व्यक्ति महामहिमावती कुर्सी पर नहीं बैठा था, अनेक अवसरवादी और भी थे।

७५

मसूरी से वापसी में जब जुगनू दिल्ली लौटा, जयजयकारों के विजय-घोष ने स्टेशन को गुंजायमान कर दिया। कांग्रेस की पूरी विजय हुई थी और लाला फकीरचंद और जुगनू दोनों का चुनाव बहुत अधिक बहुमत से कामयाब हुआ था, जिसका श्रेय विद्यासागर को था। विद्यासागर उसी रूप के बेढंगे वेश में स्टेशन पर हाज़िर था। वही पहलेवाली मुस्कराहट उसके होंठों पर थी। लाला फकीरचन्द ने नई शेरवानी, चूड़ीदार पाजामा और गांधीटोपी धारण की थी। इसे नये वेश में लाला फकीरचन्द हंस-हंसकर लोगों की मुबारकबादियां ले रहे थे। गाड़ी से उतरते ही जुगनू को फूलों से लाद दिया गया और बड़ी धूमधाम से उसे एक जुलूस में घर ले जाया गया। अब जुगनू कांग्रेस ग्रुप का हाउस में लीडर था। खा-पीकर थोड़ा आराम करने के बाद कांग्रेस की कार्यकारिणी कमेटी की मीटिंग में उसे सम्मिलित होना पड़ा। अब सबका रुख उसीकी ओर था। इस बात से किसीको कोई सरोकार न था, कि वह कौन है, कांग्रेस और देश की उसने कितनी सेवा की है। सब लोग मुंशी जगनप्रसाद का जयजयकार कर रहे थे। और जुगनू बड़ी शान से अभिनन्दन ग्रहण कर रहा था।

अन्ततः लोकसभा और राज्यसभा में विधि-विधान से इन दोनों सुयोग्य जनों का आसन जम गया। सभा की कर्यवाहियों का न इन लोगों को कोई

ज्ञान था, न उनसे कुछ मतलब ही था। बोलने की अभी नौबत ही नहीं आई थी, बस गद्देदार कुर्सी पर जाकर ऊंघना, कांग्रेस के साथ राय देना, और भक्त बनाना, कौन्सिल भवन में मटरगश्त लगाना उनका काम था। गप्पें लड़ाने में दोनों फर्वट थे। पर लाला बुलाकीदास अब मन्त्रियों से अपनी सांठ-गांठ जोड़ रहे थे। आए दिन उन्हें दावतें दे रहे थे। अब बड़े-बड़े परमिट उन्हें मिलते जा रहे थे, और छोटे आदमियों से वे बात नहीं कर रहे थे। लाखों पर हाथ साफ करना उनका धन्धा था। चांदी की बड़ी-सी डिबिया में बढ़िया बनारसी पान भरे वे हाउस में इसी ताक में रहते थे कि कोई मिनिस्टर उधर से गुज़रे तो वे पान पेश करने का सौभाग्य प्राप्त करें। किसी भी मन्त्री के उधर आने पर वे पान की डिबिया हाथ में लिए दौड़ते, पेश करते, बड़ी दीनता से कहते, 'यह सेवक तो आपका पानबर्दार है। कृपा कर एक जोड़ा पान का बीड़ा स्वीकार कीजिए।' और मन्त्री द्वारा स्वीकार किए जाने पर वे कृतकृत्य हो जाते थे।

लाला लोगों में भी अब उनकी शान बढ़ गई थी। बातचीत अब वे ज़रा ढंग से करते थे। अब उन्हें एक ऐसे सैक्रेटरी की अत्यन्त आवश्यकता थी जो अंग्रेज़ी जानता हो, अंग्रेज़ी में खत लिख सकता हो, और विदेशी मुलाकातियों से बातचीत के समय दुभाषिए का काम कर सकता हो। उन्होंने प्रत्येक देश के राजदूतों से सम्पर्क स्थापित करना और उन्हें बड़ी-बड़ी शानदार दावतें देना प्रारम्भ कर दिया था। और इसका फल भी उन्हें हाथोंहाथ मिल रहा था। बड़े-बड़े विदेशी व्यापारिक समझौते होते जा रहे थे और वे लाखों से करोड़ों में पहुंचते ही जा रहे थे।

उनकी अपेक्षा जुगनू का स्थान ऊंचा—परन्तु सीमा कम थी। व्यापार-बिजनेस वह कुछ जानता न था। और अब रिश्वतों का बाज़ार मन्दा पड़ गया था। क्योंकि उसे म्युनिसिपैलिटी से हटना पड़ गया था। यों वह घाटे में जा रहा था। पर उसे आशा थी कि वह एक दिन मिनिस्टर अवश्य होकर रहेगा। वह यह भी जानता था कि इसके लिए कुछ सम्बन्धित व्यक्तियों को प्रसन्न करने की ज़रूरत है, किसी योग्यता की ज़रूरत नहीं है। और अब वह मिनिस्टर की कुर्सी की प्राप्ति के लिए सब कुछ कर गुज़रने पर आमादा था।

७६

मनोदौर्बल्य पर जब परिस्थितियां सवारी गांठ लेती हैं तो मनुष्य बेबस हो जाता है। उसकी सारी विद्या-बुद्धि भी फिर उसे नहीं उबार सकती। पद्मादेवी भी दैवदुर्विपाक से पहले मानसिक दुर्बलता की शिकार हुई, और अब परिस्थितियों ने उन्हें दबोच लिया। मसूरी में रहते अब उन्हें एक साल बीत रहा था। रुपये-पैसे की उन्हें कोई तकलीफ न थी। जुगनू हर माह एक हज़ार रुपया उन्हें भेजता था। और महीने में दो-तीन बार मसूरी आकर रह जाता था। मनोविकार से इन्कार नहीं किया जा सकता, पर इस अवस्था में उन्हें जो जुगनू को आत्मसमर्पण करना पड़ा, सो मनोविकार के कारण नहीं, परिस्थिति से लाचार होकर। शोभाराम शरीर का रोगी, और एक स्वस्थ स्त्री की काम-भूख को तृप्त करने में सर्वथा अयोग्य था, यह सच है। अर्से से पद्मा को पुरुष का सहवास न मिला था, यह भी सच है; जुगनू के बलिष्ठ युवा शरीर ने और उसकी दुर्दम्य वासना ने पद्मा को अभिभूत कर दिया था, यह भी सत्य है। परन्तु वह एक शिक्षिता, विवेकशीला और शीलवती नारी थी। शोभाराम एक आदर्श सज्जन पुरुष थे, यद्यपि उन्होंने पद्मा को अपने सात वर्ष के दाम्पत्य जीवन में कोई विशेष सुख नहीं दिया था। उनकी आर्थिक अवस्था कभी सुधरी न थी। वे आदर्शवादी और कर्तव्यनिष्ठ कांग्रेसकर्मी थे; सत्य और अहिंसा के व्रती। एक प्रकार से उन्होंने अपने जीवन को देश को समर्पित कर दिया था। पद्मादेवी के नये तरुण जीवन में अवसाद लाने के लिए यही बातें काफी थीं। फिर शोभाराम की दीर्घ रोगावस्था और उनकी असमय की दारुण मृत्यु। ये सब साधारण बातें न थीं। खासकर एक स्त्री के लिए जो अभी युवती ही थी, और जिसके जीवन के अरमान विकसित होने से प्रथम ही मुर्झा गए थे। पद्मा एक आदर्श गृहिणी थी। उसमें सौन्दर्य था, शिक्षा थी, प्रतिभा थी, शील था, मर्यादा थी और धैर्य था। परन्तु यह सब कुछ भी तो काम न आया। शोभाराम की मृत्यु के बाद वह जैसे एक रेगिस्तान में अकेली जा पड़ी, जिसका एकमात्र अवलम्ब जुगनू था।

जुगनू का असंस्कृत, कामुक और तुच्छ व्यक्तित्व शीघ्र ही पद्मादेवी पर

प्रकट हो गया, जिसने उसकी आत्मा को पूरी तरह आहत कर डाला। भगवान ही जान सकते हैं कि संसार में कितनी अभागिनी स्त्रियां इन परिस्थितियों में पड़कर अपने जीवन को अपने ही हाथों नष्ट कर रही हैं।

यद्यपि प्रस्ताव नितान्त असंगत था फिर भी पद्मादेवी ने शोभाराम की मृत्यु के बाद ही जब जुगनू उससे मिला तो विवाह का प्रस्ताव किया था। इस प्रस्ताव में न तो आत्मा का उल्लास था न प्रेम का ज़रा-सा भी पुट था, न वासना ही का कोई सम्पर्क था; वह प्रस्ताव एक लाचारी के प्रति आत्म-समर्पण था। पद्मा का शून्य हृदय हाहाकार कर रहा था, धरती-आसमान पर उसका कोई न था, पति की मृत्यु-मुख में जाती हुई दारुण मूर्ति अभी उसके नेत्रों में थी। उसकी आंखें सूजी-सूजी-सी हो रही थीं। शोक पर नैराश्य और जीवन-संग्राम में पराजय के भय ने अपना प्रभाव डाला हुआ था और अब वह रोना भूल गई थी। आंखों में सूनी करुणा, होंठों में सूखी निराशा, हृदय में अनन्त हाहाकार और इसी दशा में उसने मुंह फाड़कर जुगनू से विवाह का प्रस्ताव किया था। इसलिए कि जुगनू का उसके पास आना-जाना अनिवार्य था। जुगनू की आंखों की भूख को वह जानती थी। वह यह भी समझती थी कि अकेले जुगनू ही का दोष नहीं है। यह आग उसने ही उसकी आंखों में सुलगाई है। उसने अपने हृदय में पहले उसका प्रेम संजोया है और अब वह प्रकट भी हो चुका है, अतः आत्मसमर्पण करना ही होगा। बचने का कोई ठौर ही नहीं है। इसीसे उसने सोचा कि कम से कम और जो कुछ हो, विवाह के बाद हो। उसकी आत्मा में कलुष का दाग लग चुका था। पर शरीर भी उसका कलुष से भर जाए और वह समाज में बिलकुल भी मुंह दिखाने के योग्य न रहे, कम से कम यह बात वह नहीं चाहती थी।

उसने विवाह के लिए बहुत हुज्जत-हठ किए, पर जुगनू की आपत्तियां तर्क-सम्मत थीं। अभी-अभी शोभाराम की मृत्यु हुई है। उनका शोक ताज़ा है। ऐसी अवस्था में विवाह एक दारुण घटना होगी, जो सुनेगा दोनों पर निष्ठुरता का आरोप करेगा। इसलिए यह काम कम से कम एक वर्ष बाद होना चाहिए।

पद्मा के पास इसका जवाब ही न था। पर वह जानती थी कि वह जुगनू से अब अपनी रक्षा नहीं कर सकती। वह उसीके दिए धन से जीवनयापन कर रही थी। उसीका घरबार, उसीका एक मात्र सहारा। उसीका भीतर-बाहर

अवलम्ब। कैसे वह उससे अपने को बचा सकती थी ! ऐसा विचार ही विडम्बना था, खासकर उस अवस्था में जबकि वह उसपर आसक्त थी। अन्ततः वही हुआ जो होना अनिवार्य था। उसे आत्मसमर्पण करना पड़ा।

परन्तु उसके अवसाद का अन्त नहीं हुआ। शोभाराम की मृत्यु की मनोव्यथा, बिना विवाह परपुरुष को आत्मसमर्पण की ग्लानि, आर्थिक विवशता से हुआ आत्मसम्मान पर आघात और विवेकशील मर्यादा के उल्लंघन के दुःख ने उसके रोम-रोम को अवसाद से भर दिया। तिसपर यह अवसाद उस समय शत-सहस्र गुणा बढ़ गया, जब उसपर जुगनू के पशुत्व, स्वार्थ, दुश्चारित्र्य, बर्बर कामुकता और उसकी पाशविक प्रवृत्तियों का प्रकटीकरण हुआ। वह तो एक प्रकार से उसे खा रहा था, झिंझोड़-झिंझोड़कर। जैसे कोई हिंस्र पशु अपने शिकार को खाता है। पद्मादेवी की संस्कृत आत्मा भला यह सब कहां सहन कर सकती थी ! सो अब जो उसकी आंसुओं की धारा बही सो गंगा-जमुना का संगम बन गई। उसके ये आंसू अब पति-वियोग के न थे, अपने पतित जीवन पर थे। उसकी आंखें नासूर बन गई थीं।

परन्तु जुगनू यह सब कैसे बर्दाश्त कर सकता था। उसे हास चाहिए था। विलास चाहिए था। शोभाराम मर गया। उसके मार्ग का कांटा दूर हुआ। अब वह उसपर रुपये खुले हाथों से खर्च कर रहा है। उसे सब तरह सहारा दे रहा है। जबकि उसका कोई दूसरा सहारा नहीं है तो इसपर उसे खुश होना चाहिए। परन्तु वह तो जब देखो तभी उदास, जब देखो तभी नीरस, ठण्डी, जैसे मुर्दा लाश हो। भला जुगनू की वासना-तृप्ति और काम-भूख की तृप्ति यहां कैसे हो सकती थी !

उसने समझा, यह कृतघ्न औरत है। न मेरे प्रेम को महत्त्व देती है न आर्थिक सहायता को। यह उस मुर्दे की याद में सदा मनहूस चेहरा बनाए रहती है। बड़ी मनहूस है यह औरत।

और उसका मन उससे फिरता चला गया। अब वह महीनों तक यहां न आता। खतों का जवाब भी न देता। रुपया-पैसा भेजने में भी लापरवाही करता। साल बीतते न बीतते जुगनू का सारा ही प्रेम खर्च हो गया। सारा ही जोश ठण्डा पड़ गया। अब जब कभी पद्मा विवाह की चर्चा उठाती तो जुगनू क्रोध और घृणा से उलझ पड़ता। पद्मा को रोने के अतिरिक्त अब एक ही चारा था,

वह आत्मघात कर ले। पर उसका विवेक उसके साथ था। और ज्यों-ज्यों जीवन उसे निराशा की ओर धकेल रहा था, वह विवेक का पल्ला और कसकर पकड़ती जाती थी।

७७

इस बार कोई डेढ़ महीने बाद जुगनू मसूरी आया था। इतने दिन में आने पर भी यहां का वातावरण उसे उदास-उदास-सा लगा। पद्मा ने कहा, 'इस बार तो तुमने बड़ी इन्तज़ारी कराई। मेरे खतों का भी जवाब नहीं दिया।'

जुगनू ने जूता खोलने का हुक्म नौकर को दिया। फिर सोफे पर पीठ सटाकर उसने एक सिगरेट जलाई और फिर कहा, 'मुझे बहुत काम रहते हैं पद्मा, और तुम यहां निठल्ली बैठी खत लिखती रहती हो। तुम्हारे सब खतों का जवाब देने की फ़ुर्सत कहां है ? फिर कोई खास बात भी तो नहीं।'

'लेकिन तुम्हारा खत नहीं मिलता है तो मैं परेशान हो जाती हूं।'

'ओह, क्या तुम समझती हो मैं भी शोभाराम की तरह मर जाऊंगा ?'

पद्मा का मुंह फक हो गया। उसने सोचा भी न था कि जुगनू ऐसा भोंड़ा जवाब देगा। उसने मुंह फेरकर नौकर से चाय लाने को कहा। जुगनू इस बीच इत्मीनान से सोफे पर पैर फैलाए पड़ा सिगरेट फूंकता रहा। पद्मा ने कुछ बातचीत करने की बहुत चेष्टा की पर उसके मुंह से बात ही न निकली। नौकर चाय ले आया। पद्मा ने प्याला तैयार करके जुगनू की ओर बढ़ा दिया।

चाय की ओर एक सरसरी नज़र करके जुगनू ने कहा, 'अपने लिए भी तो बनाओ। तुम तो बहुत गंभीर हो रही हो। मैं समझता हूं, चाय पीना तो कोई गम्भीर बात नहीं है।' कितने अफसोस की बात है कि पद्मा इस समय हंसती हुई इस जुगनू के बच्चे का मनोरंजन नहीं कर रही, जिसका उसकी समझ में उसे अधिकार है। पद्मा को कोई जवाब नहीं सूझा। उसने कहा, 'दिल्ली में तो इस वक्त काफी गर्मी होगी।'

'ओह बहुत, लेकिन तुम तो यहां बैठी मज़े में ठण्डी हवा खा रही हो।'

'यह तुम्हारी ही तो कृपा है। तुम मुझे सहारा न देते तो न जाने मेरी क्या दशा होती!'

पद्मा की इस बात में कितना व्यंग्य था, इस बात को इस समय छोड़िए। खैर, यह अप्रासंगिक बात ज़रूर थी। फिर भी जुगनू को यह बात सुनकर खुशी ही हुई। उसने कहा—

'रुपये तो तुम्हें मिल गए थे?'

'हां, पर इस बार किराया नहीं दिया जा सका।'

'क्यों?'

'रामू की बहिन की शादी थी, उसे कुछ रुपया पेशगी देना पड़ा। कुछ कपड़े बनवाने ज़रूरी थे और फर्नीचर का बिल भी, जो बहुत पुराना हो गया था, चुकाना पड़ा।'

'लेकिन किराया अदा करना सबसे पहली बात थी।'

'थी तो, लेकिन रुपये बचे ही नहीं।'

'पद्मा, मैं अब ज़्यादा रुपये नहीं भेज सकूंगा। और भी खर्चे हैं। तुम्हें हाथ रोककर खर्चा करना चाहिए। खैर, इस बार तो मैं रुपये लाया हूं। पर बेहतर हो कि यहां कोई नौकरी कर लो, कुछ खर्च में भी मदद मिलेगी और तुम्हारा दिल भी काम में लगेगा।'

पद्मा ने जवाब नहीं दिया। उसकी आंखों में अंधकार छा गया।

जुगनू ने कहा, 'क्या तुम बीमार हो?'

'ज़रा योंही तबियत खराब हो गई थी।'

'डाक्टर को दिखाया?'

'क्या ज़रूरत थी! ठीक हो जाऊंगी।'

'लेकिन तुमने खत में तो बीमारी की बात नहीं लिखी।'

'मैंने सोचा शायद तुम्हें पढ़ने की फुर्सत न मिले।' इतना कहकर पद्मा अपने आंसू रोकने के लिए वहां से उठ गई।

रात को फिर बातचीत ने अप्रिय रूप धारण कर लिया। पद्मा ने कहा, 'अब आखिर मैं इस शर्मनाक हालत में कब तक रह सकती हूं? विवाह की एक तारीख ठीक करके यह काम खत्म कर डाला जाए जिससे मैं समाज में मुंह दिखा सकूं।'

'तुम्हारे सिर पर तो विवाह का भूत सवार है पद्मा ! मैं कहता हूं, थोड़ा और ठहरो ।'

'लेकिन इससे फायदा क्या है ?'

'पहला फायदा तो यही है कि हम लोग एक दूसरे को अच्छी तरह ठीक-ठीक समझ लें ।'

'हे परमेश्वर, अब भी हमें सोचने-समझने की गुंजाइश है ?'

'क्यों नहीं है ! इन्सान कोई बैल नहीं है । भला-बुरा सोचना उसका काम है ।'

'लेकिन मेरी तकदीर में जो होना था वह हो चुका ।'

'तो तुम्हें शायद इसका अफसोस है !'

'अब अफसोस करने से क्या होगा ?'

'आखिर तुम्हारी मंशा क्या है ?'

'मैं चाहती हूं विवाह हो जाए और हम लोग पति-पत्नी के रूप में दुनिया के सामने रहें ।'

'तो समय आएगा तो यह भी हो जाएगा । जल्दी क्या है ?'

'तुम्हें नहीं है, मुझे है ।'

'तुम्हें क्यों है, सुनूं तो ?'

'इस तरह हमारा मिलना-रहना कोई इज़्ज़त की बात नहीं है ।'

'तो तुम चाहती हो मैं न आया करूं ? ऐसा है तो मैं नहीं आऊंगा ।'

'तुम बात का गलत अर्थ क्यों लगाते हो ?'

'सही अर्थ तुम बता दो ।'

'विवाह समाज की एक मर्यादा है । किसी भी स्त्री-पुरुष को विवाह बिना किए एकत्र नहीं रहना चाहिए ।'

'प्रथम तो मैं समाज की परवाह ही नहीं करता । दूसरे, अब तो बात बहुत आगे निकल चुकी । तीसरे, मैं कह चुका हूं कि ज़रा और ठहरो, विवाह हो जाएगा ।'

'यह सुनते-सुनते तो एक साल बीत गया ।'

'कम से कम एक साल तो तुम्हें अपने पूर्वपति का मातम मनाना चाहिए ।'

'तुम ज़ख्म पर चोट क्यों करते हो ? इससे तुम्हें क्या मिलेगा भला ?'

पद्मा रोने लगी। उसके रोने से उत्तेजित होकर जुगनू भभककर एकदम उठ खड़ा हुआ। उसने कहा, 'मैं अभी जाता हूं। वहां की परेशानी से घबराकर यहां आता हूं कि ज़रा शान्ति मिलेगी। पर यहां हरदम रोना-कलपना, शिकायत और सदा उदास मनहूस मुंह बनाए रखना—मुझे यह पसन्द नहीं है।'

'बैठ जाओ, नाराज़ न हो। जो बात तुम्हें पसन्द नहीं है, वह मैं न करूंगी। तुम्हें छोड़ मेरा कोई नहीं है। मेरे ऊपर दया करो, मुझे छोड़ने का इरादा न करो। मैं···मैं बदनसीब औरत हूं, जिसका धरती-आसमान में तुम्हारे सिवा कोई नहीं है।'

यह कहकर पद्मा जुगनू के दोनों पैरों को बांहों में समेटकर ज़मीन में लेट गई।

७८

जुगनू ने नवाव को बुलाकर कहा—

'लेकिन असल बात यह है कि मैं उससे ऊब गया हूं। और सबसे बड़ी बात यह है कि मैं उससे प्यार नहीं करता।'

'लेकिन तुम तो प्यार की बड़ी-बड़ी बातें करते थे।'

'जब करता था तब करता था। लेकिन अब नहीं। आदमी का मन सदा एक-सा तो रहता नहीं है।'

'लेकिन अब वह जाएगी कहां। प्यार न सही, उसका ख्याल ही रखो। भई, औरत के साथ मर्द का प्यार साल-दो साल रहता है, इसके बाद तो आंखों का लिहाज़ रह जाता है।

'तुम समझते हो, आंखों के लिहाज़ से मैं उसके साथ रह सकता हूं?'

'अजी साहब, लोग तो बड़ी-बड़ी बेढब औरतों के साथ उम्र काट देते हैं; फिर वह तो खूबसूरत है पढ़ी-लिखी है, जवान है। तुम इस तोहफे को ठुकरा रहे हो!'

'तुम्हें भी तो एक औरत की जरूरत है नवाब, न हो तुम्हीं उसे रख लो।'

'लाहौल विला कूवत। दोस्त की औरत करें! तौबा, तौबा।'

'वह मेरी औरत कब है ?'

'जनाब, आपने उससे शादी की है।'

'यह तो कानूनी शादी नहीं है। आराम से तोड़ी जा सकती है।'

'लेकिन ताज्जुब है कि तुम इतनी जल्दी ऊब गए। अभी तो दो साल भी इन बातों को नहीं हुए और उसका जादू उतर गया !'

'भाईजान, तुम नहीं जानते कि इन्सान की हर बार एक नई ज़िन्दगी शुरू होती है। और नई में पुरानी चीज़ें बेमौजूं पड़ती जाती हैं।'

'लेकिन पुरानी चीज़ पर भी नज़र पड़नी चाहिए, वरना वीराना ही वीराना है।'

जुगनू चुप हो गया। उसके मन में जो शारदा की मूर्ति छिपी बैठी थी, उसे उसने अपने इतने घनिष्ठ मित्र नवाब को भी नहीं बताया था। अब वह पैनी नज़रों से नवाब को ताकने लगा। इसका मतलब था कि क्या तुम्हें भी यह भेद मालूम हो गया है ? परन्तु नवाब चुपचाप हंसे चला जा रहा था। उसने हंसते-हंसते कहा, 'बस, अब कोई राज़ जाहिर होनेवाला है।'

'इसकी उम्मीद न करो।'

'तो कहो, कोई नई सूरत दिल में आ बसी है ?'

'मैं कुछ नहीं कहता।'

'तो मैं पता लगा लूंगा।'

'लेकिन मैं इस मुसीबत को क्या करूं ?'

'अब तो तुम्हारे बहुत रसूख हैं, उसे कहीं नौकर करा दो।'

'मैंने कहा था, वह नौकरी करना नहीं चाहती। शादी की ज़िद कर रही है।'

'देखो भई, तिनका मत तोड़ो। ज़रा सब्र से काम लो। और देखो कि आगे क्या होनेवाला है।'

'लेकिन वह कल आ रही है। सीधी मेरे घर पर आ धमकेगी।'

'उसके लिए अलहदा मकान का इन्तज़ाम कर दो। या उसे मसूरी ही में रोक दो।'

'बहुत कहा, वह मसूरी किसी हालत में नहीं रहना चाहती। और अब तो वह आ ही रही है।'

'तो भई, मेरे ऊपर छोड़ दो। मैं सब बन्दोबस्त कर दूंगा। मगर मेरी नेक सलाह मानो, उससे बेरुखाई का बर्ताव न करो। अभी मीठे बने रहो। खर्चा भी देते रहो। नौकरी की बात भी उसके कान में डालते रहो। मैं समझता हूं कि वह नौकरी को ज़रूर राज़ी हो जाएगी।'

'खैर, तुम उसके लिए मकान-डेरे का इन्तजाम कर दो। मैं बहुत व्यस्त हूं, उसे बता दो। और रुपया जिस कदर दरकार हो ले जाओ। लेकिन यार, मेरी सिरदर्दी किसी तरह कम करो।'

नवाब ने स्वीकार किया और चल दिया।

७९

पद्मा दिल्ली आ गई। नवाब ने स्टेशन पर उसका स्वागत किया, उसे नये मकान में ले गया। मकान का फ्लैट नई दिल्ली में निहायत आरामदेह था। फर्नीचर और दूसरी आवश्यक वस्तुएं भी वहां थीं। नवाब ने कहा, 'आप आराम कीजिए और तीसरे पहर सुस्ताकर ज़रा बाज़ार चली जाइए। नौकर को साथ ले लीजिए और ज़रूरी चीज़ें खरीद लीजिए। ये थोड़े रुपये हैं, रख लीजिए। मेरे करने योग्य कोई काम हो तो बताइए।'

'लेकिन वे कहां हैं ?'

'बहुत व्यस्त हैं। अभी दो-तीन दिन नहीं आ सकते। मैं जब आप कहें हाज़िर हो जाऊंगा।'

पद्मा ने नवाब का नाम सुना था। कुछ-कुछ उसका इतिहास भी जानती थी। वह उसे अच्छा आदमी नहीं समझती थी। पर इस समय नवाब के सद्-व्यवहार से वह संतुष्ट हो गई। उसने कहा, 'एक बार मैं उनसे मिल सकती हूं ?'

'उनके मकान पर तो आपका जाना मुनासिब नहीं है। लेकिन कोई बहुत ज़रूरी काम हो तो आप विधानसभा-भवन में उनसे मुलाकात कर सकती हैं।'

'तो यही सही।'

दूसरे दिन जुगनू ने सिर्फ पांच मिनट पद्मादेवी से मुलाकात की। उसे ऐसा प्रतीत हुआ कि वह दूर खड़ी किसी पहाड़ की चट्टान को देख रही है। जुगनू ने

नपे-तुले शब्दों में केवल इस ढंग से बातें कीं जैसे एक साधारण मुलाकाती से की जाती हैं। इसके बाद भी कई दिनों तक जुगनू पद्मादेवी से नहीं मिला। अब वह रात-दिन यही सोचता रहता था कि कैसे इस बला से पिण्ड छूटे। हकीकत तो यह थी कि पद्मा में अब उसकी कोई दिलचस्पी नहीं रह गई थी और वह अब अपने को बड़ा आदमी समझने लगा था।

इसी समय अचानक ही एक नया प्रसंग आ खड़ा हुआ। दक्षिण अफ्रीका को एक ट्रेड कमीशन भारत सरकार भेज रही थी, किसी खास उद्देश्य से। कुछ लोगों ने जुगनू को उसका सदस्य बना दिया। असल बात यह थी कि लाला फकीरचन्द ने इस्पात ढालने की और अखबारी कागज़ बनाने की एक फैक्टरी खोलने की योजना बनाई था। वे चाहते थे कि उसके कुछ शेअर दक्षिण अफ्रीका में बिक जाएं। वहां उनके गुर्गे मौजूद थे। कुछ ट्रेड एजेंट भी थे। और वहां के भारत-स्थित ट्रेड कमिश्नर से उन्होंने गुप्त समझौता कर लिया था। लाला फकीरचन्द ने जुगनू को फंसा लिया था। उन्होंने उसे बता दिया था कि आपपर बेहद विश्वास के कारण मैं आपको वहां भेज रहा हूं। दोनों कम्पनियों का मूल-धन बाईस करोड़ रुपये था, जिसमें आधे शेअर सरकारी थे। इस प्रकार यह अर्धसरकारी कम्पनी थी। फकीरचन्द का प्रस्ताव था कि जुगनू दक्षिण अफ्रीका में पचास लाख के शेअर बेंच आए। इसके बदले उसे डेढ़ लाख के शेअर बोनस के तौर पर दे दिए जाएंगे तथा उसे दोनों कम्पनियों का डाइरेक्टर बना लिया जाएगा। लाला फकीरचन्द ने उसे बता दिया था, यह काम ज़्यादा कठिन नहीं है। सिर्फ विश्वास होने के कारण उसे ही भेजा जा रहा है। जुगनू ने स्वीकार कर लिया। और जिस दिन सुबह जुगनू दक्षिण अफ्रीका को उड़ रहा था उसकी पहली रात को वह काफी रात बीत जाने पर पद्मा के मकान पर आ पहुंचा। उसने पद्मा को दिल्ली आने के लिए काफी लानत-मलामत दी। उसे वहां नहीं आना चाहिए था। यह बात दोनों के हक में, दोनों की प्रतिष्ठा के विपरीत है। यही बात उसने बारम्बार कही।

पद्मा मसूरी से यह ठानकर आई थी कि वह मुंशी से दो टूक बात करेगी। या तो वह उससे विवाह करे या वह उससे कतई सम्बन्ध त्याग दे। फिर उसका जो हो सो हो।

परन्तु जब उसने सुना कि वह सुबह ही विदेश को उड़ रहा है, उससे कुछ

भी कहते-सुनते न बन पड़ा। जुगनू की डांट-फटकार सुनकर वह मूक-मौन रोती रही, रोती रही।

उस रुदन में जो वेदना थी, जो आवेदन-प्रतिवेदन था, वह जुगनू जैसे मूढ़ पुरुष से भी छिपा न रहा। वह भी द्रवित हो गया। और उसने पद्मा को अपने अंक में भींच अपने में समा लिया और उसके मूक-मौन रुदन का उत्तर मूक चुम्बनों से देना आरम्भ कर दिया।

पद्मा की वह रात जुगनू के अंक में कटी। और सुबह जब वह विदा हो रहा था, बहुत-सी आशाएं, संदेश और सुखद कल्पनाएं वह इस बदनसीब, असहाय औरत पर बिखेर चुका था।

८०

तीन महीने दक्षिण अफ्रीका का भ्रमण करके जुगनू जब लौटा तो उसकी जेब में उसकी कमाई के ग्यारह लाख रुपये थे। उसने पचास लाख रुपये की रकम लाला फकीरचन्द की जेब में डाली थी। इसके अतिरिक्त इन तीन महीनों में वह व्यापार के उन सब गुप्त हथकंडों को भी सीख गया था जिनकी बदौलत ये करोड़पति सेठिया लोग करोड़ों कमाया करते हैं। वह मिनिस्टरों, राजदूतों, अर्थशास्त्रियों और बड़ी-बड़ी व्यापारी फर्मों की भयानक पोलपट्टी से भी वाकिफ हो गया था।

फकीरचन्द के लिए जुगनू दुधारू गाय था और वे उस कीमती हथियार को हाथ से जाने नहीं देना चाहते थे। इसलिए उन्होंने पांच लाख रुपया खर्च करके उसके लिए वाणिज्यमन्त्री की कुर्सी तैयार कर रखी थी।

जब स्वागत की धूमधाम खतम हो गई, तो लाला फकीरचन्द ने उसको एक दावत इम्पीरियल में दी। अब लाला फकीरचन्द भी घपचू आदमी न थे। एम० पी० थे, और करोड़ों से खेल रहे थे। अब जुगनू की कृपादृष्टि से नहीं, सहयोग से दोनों का लाभ हो सकता था। इसलिए उन्होंने उसे दावत दी थी। पर दावत में एक और व्यक्ति भी उपस्थित था। यह एक ज्योतिषी था, जो तांत्रिक और सिद्ध प्रसिद्ध था। फकीरचन्द ने उसकी बहुत-बहुत तारीफ करके जुगनू से

उसका परिचय कराया। अन्त में उसने कहा, 'मुंशी साहब, अब हम-आप एक दूसरे को ठीक समझ गए हैं। आप अच्छी तरह जान गए हैं कि मेरे साथ मित्रता रखना आपके लिए घाटे का सौदा नहीं हो सकता।'

'पर यही बात तो मैं भी कह सकता हूं।'

'ज़रूर कह सकते हैं। पर आपका मेरे साथ कोई स्थायी समझौता हो जाए तो क्या आप उसे नापसंद करेंगे?'

'आप ज़रा स्पष्ट कहिए।'

'स्पष्ट ही कहना अच्छा है। क्या आप मिनिस्टर बनना चाहते हैं?'

'बुरा क्या है!'

'तो जो आदमी आपको उस कुर्सी पर बिठाएगा उसके साथ आप कैसा सुलूक करेंगे?'

'दोस्ती का।'

'तो ज्योतिषीजी, आप बताइए कि इनकी दोस्ती उस आदमी से कायम रहेगी या नहीं जो इन्हें मिनिस्टर की कुर्सी पर बिठाएगा?'

ज्योतिषीजी ने स्लेट पर लकीरें खींचनी शुरू कीं। बहुत देर तक वे भांति-भांति का मुंह बनाते रहे। अन्त में कहा—

'रहेगी, निभेगी, परन्तु एक बात है।'

'कौन बात?'

'यह कि भूलकर भी दोनों के बीच कोई औरत नहीं आनी चाहिए। औरत आई कि दोस्ती टूटी।'

'औरत सुसरी का बिजनेस में क्या काम है! तो मुंशीजी, आपके लिए वाणिज्यमन्त्री की कुर्सी तैयार है। मैंने उसे पांच लाख रुपयों में खरीदा है। एक ही हफ्ते में आपको सरकारी तौर पर इसकी सूचना मिल जाएगी। अब आप कौल हारिए कि आप कभी मुझे दगा न देंगे। सदा मेरे काम को प्रमुखता देंगे। मैं भी आपको करोड़पति बना देने का वादा करता हूं।'

'वादा नहीं लालाजी, नकद का जवाब नकद होना चाहिए।'

'नकद ही लीजिए मुंशीजी। मेरी दोनों ही कम्पनियों में आप डाइरेक्टर हैं ही। अब आप कोई बोनस चाहें तो मैं वह भी देने को राज़ी हूं।'

'बोनस नहीं लालाजी, मुझे आप हर माह की पहली तारीख को एक ब्लैंक

चैक दीजिए। ब्लैंक भी, और बिअरर भी।'

'इसका मतलब तो यह हुआ कि मेरी गर्दन आपके हाथ में।'

'मतलब जो चाहे समझिए। विश्वास हो तो मेरी सेवाएं हाजिर हैं।'

'चलो पक्की रही मुंशी साहब, ब्लैंक चैक ही दूंगा।'

'तो मुंशी को भी खरा दोस्त परख लेना।'

'तो अब दूसरी मुलाकात हुज़ूर की मिनिस्टरी के सिलसिले में होगी।'

'क्या मुज़ाइका है!' जुगनू ने मुस्कराकर कहा और उठ खड़ा हुआ।

८१

अब अंग्रेज़ी राज चला गया। उसकी जगह कांग्रेसी राज की स्थापना हो गई। पर परम्परा वही रही। योग्य क्लर्कों और अफसरों के सिर पर अंग्रेज़ की जगह कोई कांग्रेसी आ बैठा। अंग्रेज़ में और कांग्रेसी में थोड़ा ही अन्तर है। अंग्रेज़ की चमड़ी गोरी और सूट काला था। कांग्रेसी की चमड़ी काली और शेरवानी बगुला के पंख-सी सफेद खादी की है। अंग्रेज़ क्लबों में शराब पीता और वाही-तबाही करता था। कांग्रेसी कभी-कभी खाता-पीता भी है और सभा-सोसाइटियों की सभापति की कुर्सी पर वाही-तबाही बकता है। उद्घाटन करता है। अपने दफ्तर के सम्बन्ध में वह कुछ नहीं जानता। पर इससे कोई काम रुकता नहीं है। सिर्फ उसे दस्तखत करने पड़ते हैं और यह काम वह कीमती फाउण्टेन पैन से बखूबी कर लेता है। उसके दफ्तर का बड़ा बाबू जानता है कि वह गधा है, पर इसमें उसे कोई ऐतराज़ नहीं है। उसे अपनी तनख्वाह से मतलब है। सरकार की नीति की आलोचना उसके लिए राजद्रोह का जुर्म है। अब आप फर्माइए, जुगनू के वाणिज्यमन्त्री की कुर्सी पर बैठने में आपको क्या ऐतराज़ है?

योग्यता की ओर आपका संकेत है तो सुनिए। पांच साल में उसने काफी योग्यता प्राप्त कर ली है। पांच साल कुछ कम नहीं होते। पांच साल में मैट्रिक पास अल्हड़ युवक ग्रेजुएट बनकर अपनी पतलून की क्रीज़ ठीक से रखने की योग्यता धारण कर लेता है। फिर जुगनू तो एक मेधावी तरुण था।

परिस्थिति के घोड़े पर सवार था। इन पांच सालों में उसने जो सबसे बड़ी योग्यता प्राप्त की थी—वह थी ढीठता। आप कहेंगे, यह भी कोई योग्यता है ? जी हां, यह सबसे बड़ी योग्यता है और मिनिस्टर बनने के लिए तो ढीठता ही एक मात्र योग्यता है। ज़रा-सी बेरुखाई भी हो तो वह और खिल उठती है। क्योंकि वैसी हालत में मिनिस्टर हर मुश्किल काम के समय भी हंस सकता है। खासकर फोटो खिंचवाते वक्त तो ज़रूर-बिल-ज़रूर। सो जनाब, जुगनू मिनिस्टरी की कुर्सी पर ऐसा फिट हुआ कि जैसे उसके बाप-दादे भी पुश्तैनी मिनिस्टर थे।

दुनिया में भूचाल आते हैं, ज्वालामुखी फूटते हैं, मनुष्य के बनाए हुए प्रक्षेपणास्त्र पांच लाख मील शून्य आकाश में यात्रा करते हैं, ग्रह-उपग्रह परस्पर टकराते हैं। और भी बहुत-से असाधारण काम होते हैं, पर किसीको आश्चर्य नहीं होता। जुगनू वाणिज्यमन्त्री की कुर्सी पर बैठ गया, इसमें भी किसीको आश्चर्य नहीं होना चाहिए। आप यह मत समझिए कि अब वाणिज्यमन्त्रालय का बेड़ा गर्क हो जाएगा। या हमारी सरकार की दौलत-मदार पोल खुल जाएगी। इतमीनान रखिए, यह सब कुछ नहीं होगा। आजकल के मन्त्रालय मन्त्रियों की योग्यता पर नहीं चलते, अपने संगठन पर चलते हैं। वही बात जो हम कई बार कह चुके हैं, यहां फिर कहेंगे। घोड़ों पर गधा सवारी गांठता है। अंग्रेज़ ही यह परम्परा छोड़ गए थे। एक से बढ़कर एक कर्मठ और योग्य भारतीय क्लर्क, किरानियों की पढ़ी-लिखी जाति जोकि उन्होंने दो सौ साल की परम्परा से उत्पन्न कर दी थी, उनमें योग्यतम निर्माण के स्रोत निरन्तर खुल रहे हैं। बड़ी से बड़ी उच्चतम भारतीय और अभारतीय शिक्षाएं विविध विषयों पर इन भारतीयों को अंग्रेज़ देते रहे हैं। इसके लिए बड़े-बड़े वज़ीफे भी देते रहे। इससे देश के तरुण, मेधावी मस्तिष्क विविध विद्याओं से विभूषित होकर, बड़ी-बड़ी डिग्रियां लेकर अफसरों की कुर्सियों पर बैठकर सब राजकाज चलाते रहे। राजनीति और अर्थशास्त्र-विज्ञान और विकास के बड़े-बड़े पेचीदा असाध्य कारनामे अंग्रेज़ी सरकार इन तरुण, मेधावी भारतीयों के हाथों कराती चली आ रही थी। हां, सर्वोच्च कुर्सी पर अंग्रेज़ बैठता था। वह न उतनी योग्यता रखता था, न उतना परिश्रम करता था, न किसी काम के बनने-बिगड़ने की उसे परवाह थी। वह अल्पकाल के लिए आफिस आता था, दस्तखत करता था।

अपने दफ्तर के प्रधान से 'सब ठीकठाक है ?' यह प्रश्न करता था, और 'यस सर' का उत्तर पाकर संतुष्ट हो क्लब चला जाता था। वहां टेनिस खेलता, ब्रिज खेलता, शराब पीता, डान्स करता या उसका जो जी चाहे वाही-तबाही करता था। कभी-कभी शराब पीकर बदहोश हो जाता था। तब बैरा-खानसामा उसे मोटर में लादकर उसके बंगले पहुंचा देते थे। उसके क्लब में कोई हिन्दुस्तानी नहीं जा सकता था, न उसके कारनामे देख-जान सकता था। वह सबके लिए दुर्लभ था, महान था, अभूतपूर्व शक्ति-संपन्न अंग्रेज़ था।

८२ .

पद्मा ने ये तीन महीने बड़ी ही बेसब्री से बिताए थे। जुगनू ने इस बीच उसे एक भी खत नहीं भेजा था न खर्च के लिए रुपया ही भेजा था। अलबत्ता नवाब उससे मिलता और रुपये-पैसे से मदद देता आ रहा था। परन्तु नवाब के रंग-ढंग से वह शंकित रहती थी। उसका चाहे जब उसके यहां चला आना उसे अच्छा न लगता था। पर अब उसके सिवा उसे सहारा देनेवाला भी दूसरा कोई न था। उसे आशा थी कि लौटकर जुगनू उससे विवाह कर लेगा। पर लौटने पर जुगनू उससे सिर्फ दो बार ही मिला। और अब उसे पूरा एक महीना यहां आए हो रहा था। वह प्रतिदिन उसकी बाट जोहती थी, परन्तु उसे निराश होना पड़ता था। जुगनू मिनिस्टर हो गया था। इससे वह समझ रही थी कि वह उसके लिए और भी दुरूह हो गया है। विवाह की आशा अब धुंधली हो चली थी। और अब वह उससे भयभीत होकर बात कर सकती थी। अपनी असहाय अवस्था का अब उसे पूरा ज्ञान हो गया था।

उस दिन आशा के विपरीत एक सरकारी खत मिला, जो वाणिज्यमंत्रालय से आया था। उससे अनुरोध किया गया था कि वह कृपा करके मन्त्री महोदय से उनके आफिस में मिले।

पत्र का आशय उसकी समझ में कुछ भी नहीं आया। किन्तु वह अनेकों शंकाओं को मन में संजोए हुए आफिस में जाकर जुगनू से मिली। जुगनू ने औपचारिक रीति से उसकी अभ्यर्थना की। कुशल-मंगल पूछा और न आ सकने

पर खिन्नता प्रकट की। अन्त में उसने मुद्दे की बात कही। उसने कहा—

'मैंने एक बात सोची है पद्मा।'

'कौन-सी बात ?'

'सांप मरे न लाठी टूटे।'

'कहिए भी।'

'तुम देखती हो, तुमसे मिलने की प्रबल इच्छा होने पर भी मैं बदनामी के डर से तुमसे मिल नहीं पाता।'

'मैंने तो इसीसे विवाह…'

'देखो, बात सुनो। विवाह का पचड़ा छोड़ो। मैंने उपयुक्त बात सोची है।'

'क्या ?'

'मुझे एक पी० ए० की आवश्यकता है। मैं इस पद पर तुम्हें रखना चाहता हूं। वेतन पांच सौ रुपये मिलेगा। निवास, भोजन पृथक्। मेरे ही साथ तुम्हें रहना होगा।'

'तो अब मुझे तुम्हारा नौकर होकर रहना होगा ?' पद्मा ने आंखों में आंसू भरकर कहा।

'तुम्हारी मर्ज़ी है। मैं कोई ज़बर्दस्ती तुम्हें मजबूर नहीं करता। पर इस प्रकार हम प्रतिष्ठापूर्वक चाहे जब मिल सकते हैं।'

'और चाहे जब आप नौकरी से बर्खास्त कर सकते हैं।'

'कैसी बातें करती हो पद्मा ! तुम जानती हो मैं तुम्हें कितना प्यार करता हूं ?'

'मैं सब जानती हूं। अच्छी बात है, मुझे स्वीकार है। मेरे भाग्य में जो लिखा है, वह मुझे भोगना ही होगा।'

'तो सुनो, तुम्हें एक प्रतिज्ञा करनी होगी—शपथ खाकर।'

'कैसी प्रतिज्ञा ?'

'जैसी मुझे करनी पड़ी थी, मिनिस्टर बनने के समय, कि मैं प्राणान्त होने पर भी आफिस का कोई भेद प्रकट नहीं करूंगा तथा राजभक्त रहूंगा।'

'मुझे क्या करना होगा ?'

'तुम मेरा, मेरे आफिस का कोई भेद कहीं न प्रकट कर सकोगी, न विरोध कर सकोगी ! बिना उज्र आज्ञा-पालन करोगी।'

'हे भगवान, तुम न जाने मुझसे क्या कराने जा रहे हो।'

'देखो पद्मा, विदेश जाकर मैंने अच्छी तरह समझा है। स्त्रियां केवल घरेलू काम करने की ही योग्यता रखती हैं। पढ़ने-लिखने पर भी उनमें कोई खास अंतर नहीं आता। राजनीति और आर्थिक ताने-बाने बड़े विकट हैं। अच्छे-अच्छे इसमें उलझ जाते हैं। ये काम औरतों के बूते के नहीं हैं। इसके लिए ज़रा आदमी में इस्पात की सख्ती चाहिए। पर मैं तुम्हें कोई खास ज़िम्मेदारी का काम नहीं दूंगा। काम तो तुम्हें नाम मात्र को ही करना होगा। पर यह बात है कि भेद को अवश्य गुप्त रखना होगा। मंजूर हो तो यह फार्म है। हस्ताक्षर कर दो।'

पद्मा ने फार्म पर हस्ताक्षर कर दिए। वह जुगनू की पी० ए० बन गई। योग्य महिला थी; सुशिक्षिता और शालीन। उसने अनायास ही सब काम संभाल लिया। उसके कारण जुगनू की अयोग्यता पर भी काफी परदा पड़ गया। वह सब फाइलों पर जुगनू की ओर से नोट लिखती। क्या नोट लिखना चाहिए यह पी० एस० उसे बता देता था। उसे भी पद्मा की योग्यता पर विश्वास हो गया। वह एक अधेड़ उम्र का मद्रासी आई० सी० एस० था। भद्रपुरुष था। पद्मा को भी उससे बहुत सहारा मिला।

८३

पहली तारीख को जुगनू को लाला फकीरचन्द का कोरा चैक मिल गया। चैक पर न किसी पानेवाले का नाम था, न कोई रकम थी। लाला फकीरचन्द के दस्तखत थे। चैक को पाकर जुगनू का कलेजा धड़कने लगा। उसपर कितनी रकम भरी जाए तथा किस नाम से वह रकम कैश की जाए, वह यही बात सोचने लगा। पर कुछ भी निर्णय न कर सका। चैक उसने जेब में डाल लिया और जब शाम को घर लौटा तो वही चैक उसके दिमाग में बसा था। इस समय लाखों रुपया उसके पास था। पर इससे क्या ! उसे अभी और भी लाखों चाहिए। अब वह हज़ारों की बात ही नहीं सोचता था। वह सोच रहा था, कितनी रकम लिखूं—एक लाख, दो लाख, पांच लाख ??? वह हिसाब लगाने लगा। इस माह में उसकी सहायता से फकीरचन्द ने कितना

मुनाफा कमाया होगा ?

वह निर्णय न कर सका। रात को उसे नींद नहीं आई। अकस्मात् एक अनोखा विचार बिजली की भांति उसके मस्तिष्क में कौंध गया। वह तेज़ी से बिस्तर से उठ खड़ा हुआ। चैक निकालकर उसने टेबल पर अपने सामने रख लिया। एक नया विचार उसके दिमाग में तूफान पैदा कर रहा था। उसने घड़ी पर नज़र डाली। दो बज रहे थे। दुनिया सो रही थी। आसमान असंख्य तारों से भरा था। वह बड़ी देर तक एक तेज़ टिमटिमाते तारे को ताकता रहा। अन्तत: उसने एक निर्णय कर लिया। कलम उठाकर उसने चैक पर पानेवाले के स्थान पर लिखा—जगनपरसाद, और रकम की जगह पर लिख दिया—शारदा।

देर तक वह उन दोनों नामों को देखता रहा। जैसे वे अक्षर बातें कर रहे हों। चिरकाल से मन में संजोई शारदा की अछूते कौमार्य के माधुर्य से ओत-प्रोत मूर्ति जैसे उस अर्धरात्रि में सजीव होकर उसके सामने आ खड़ी हुई है। उसके रक्त की प्रत्येक बूंद आनन्द से नाचने लगी। और शरीर कांपने लगा। उसके होंठों पर एक मुस्कान आई और वह फिर सहन में आकर उस दूर टिमटिमाते तारे की ओर टकटकी बांधकर देखता रहा—बड़ी देर तक।

८४

चैक वापस फकीरचन्द के पास भेज दिया गया। रकम की जगह शारदा का नाम पढ़कर लाला फकीरचन्द बड़े असमंजस में पड़ गए। बड़ी विचित्र बात है। क्या मतलब इस तरह चैक पर यह नाम लिखने का ! हठात् उन्हें ध्यान हो आया—शारदा तो डाक्टर खन्ना की लड़की है। मुंशी क्या उसे चाहता है ? फकीरचन्द ने झटपट कपड़े पहने और जुगनू की कोठी में आ बरामद हुए। जुगनू उनकी प्रतीक्षा ही कर रहा था।

'हां साहब, यह कैसी रकम है ?' फकीरचन्द ने बैठते हुए और जेब से चैक निकालते हुए कहा।

'वह रकम है, जो वसूल करनी है।'

'लेकिन मेरे बैंक में तो यह रकम जमा नहीं है।'

'तो मुझे इससे क्या ? आपको कोरा चैक देने का वादा सोच-समझकर करना चाहिए था। अब तो मुझे यही रकम चाहिए।'

'सच ?' लाला फकीरचन्द ने घूरते हुए कहा।'

'क्या ऐसे मामलों में भी मज़ाक चलता है ?'

लाला फकीरचन्द ज़रा और पास कुर्सी खिसका लाए। उन्होंने आहिस्ता से कहा, 'शारदा तो डाक्टर खन्ना की लौंडिया है न ?'

'जी हां।'

'तो हुज़ूर उससे शादी करना चाहते हैं ?'

'बेशक।'

'तो आप मुझसे क्या चाहते हैं ?'

'सिर्फ यही, लड़के के बाप बनकर खूबसूरती से यह काम अंजाम दे दीजिए।'

'भई मार डाला। बड़े गहरे हो मुंशी, मान गया तुम्हारी खोपड़ी को। तो देखो, अब बेटे बनते हो, इन्कार न करना।'

'इन्कार क्यों करूंगा।'

'तो समझ लो शादी इस धूमधाम से होगी कि दिल्ली में आज तक न हुई होगी ! मुंशी, मेरा सब कुछ तुम्हारा है, फिक्र मत करो। मगर भई, दाना बड़ा नायाब चुना।'

'खैर, तो पहल कब होगी ?'

'अभी जा रहा हूं—डाक्टर खन्ना के पास। जैसे बनेगा सौदा पटाकर ही लौटूंगा। अब तक तो किसी सौदे में हार खाई नहीं। उम्मीद है यह सौदा होकर रहेगा। हां, जात-पांत की बात चलेगी। तुम मुंशी, उनकी बिरादरी में तो हो नहीं।'

'जी नहीं।'

'तब ?' लाला फकीरचन्द ज़रा सोच में पड़ गए। पर फिर उन्होंने कहा, 'खैर, देखा जाएगा। फिक्र मत करो पुत्तर, जा रहा हूं—तुम्हारी दुलहिन का मामला पटीलने।' वे हंसे और हाथ जोड़कर नमस्कार किया और चल दिए। जुगनू का दिल धड़क रहा था। बस, अब यही आखिरी दांव था। अब तक सदा किस्मत ने साथ दिया, अब इस आखिरी दांव में क्या किस्मत धोखा देगी ? जुगनू यही सोच रहा था।

खन्ना साहब पहले तो प्रस्ताव सुनकर चौंके। पीछे सोचने लगे। उनके मुख पर गम्भीरता छा गई। हकीकत यह थी कि शारदा के ब्याह की उन्हें चिन्ता थी और अभी तक कोई योग्य लड़का उन्हें मिला नहीं था। शारदा उनकी इकलौती लाड़ली लड़की थी। एक प्रकार से वही उनकी सम्पत्ति की उत्तराधिकारिणी थी। वे चाहते थे कि कोई ऐसा लड़का मिल जाए जो उन्हींके पास आ रहे। पर ऐसे जो लड़के मिलते भी थे वे डाक्टर खन्ना की दृष्टि में जंचते न थे। जुगनू के सम्बन्ध में उन्होंने कभी सोचा भी न था; यद्यपि जुगनू से उनकी घनिष्टता थी। इधर वे अवश्य कम मिलते रहे, पर जुगनू को वे पसन्द खूब करते थे। अब उन्हें ध्यान आया कि शारदा का रुख भी जुगनू से कुछ विपरीत नहीं है। इन सब बातों पर विचार करने के बाद उन्होंने कहा, 'आपका प्रस्ताव तो बहुत शुभ है। पर मुझे इस सम्बन्ध में घर में सलाह-मश्विरा करना होगा।'

'तो भाभी साहबा से सलाह भी मेरे सामने कर लीजिए। देखिए, मैं अब यह शादी देर तक रोक नहीं सकता। रिश्ते कई आ रहे हैं। पर मुझे तो शारदा बिटिया पसन्द है। फिर आप हमारे पुराने दोस्त हैं। इसके अलावा एक बात यह भी है कि मुंशी और शारदा भी एक दूसरे को जानते हैं।'

'लेकिन मुंशी से आपका क्या सम्बन्ध है?'

'कमाल कर दिया डाक्टर साहब, आपको अभी यह बात भी मालूम नहीं? अजी जनाब, वह मेरा रिश्ते में भांजा होता है।'

'भांजा? तो क्या वह आपकी बिरादरी का है? मैं तो समझता था मुंशी कायस्थ है। ऐसा ही शायद एक बार उसने कहा भी था।'

लाला फकीरचन्द ज़ोर से हंस पड़े। उन्होंने कहा, 'वह सदा का मसखरा आदमी है। बचपन से ही वह शायरी के फेर में पड़कर ऐसी ही सोहबत में रहा। लेकिन डाक्टर साहब, आप भी क्या जात-पांत के पचड़े में हैं?'

'मैं जानता हूं कि यह कोरा ढकोसला है। पर अभी तक मैं उसकी कैद में हूं। फिर भी शारदा के लिए यदि कोई मेरे मनपसन्द लड़का मिल जाए तो मैं जात-पांत की ऐसी परवाह न करूंगा।'

'परवाह आपको करनी ही न चाहिए। यही सोचकर मैं आपके पास आया

हूं डाक्टर साहब। नहीं लड़कियों की बिरादरी में ही क्या कमी है। फिर जगन जैसा लायक लड़का, चिराग लेकर ढूंढ़िए तो मिलना मुश्किल। एक-एक लाख का दहेज लोग देने को तैयार हैं डाक्टर साहब, अब आपसे क्या परदा।'

'पर भई, मेरे पास तो लाख रुपया है नहीं।'

'आपकी बिटिया ही लाख-करोड़ की है। फिर आप खुद हीरा हैं हीरा। लाख रुपया तो आपकी हस्ती पर न्यौछावर है डाक्टर साहब।'

'वह आपकी कृपा और कद्रदानी है। अच्छा, मैं शारदा की मां को बुलाता हूं।'

मिसेज़ खन्ना आईं। बहुत बातचीत हुई। लाला फकीरचन्द का बात करने का ढंग प्रभावशाली था। वे स्वयं भी एक प्रभावशाली करोड़पति व्यापारी थे। एम० पी० थे। डाक्टर खन्ना और उनकी पत्नी पर उनका प्रभाव था। जुगनू सुन्दर, स्वस्थ, सभ्य, शिष्ट तरुण था। इस समय मिनिस्टर के सर्वोच्च पद पर था। यद्यपि उसके पास लाखों की सम्पत्ति थी, परन्तु शायद इस सम्बन्ध में डाक्टर खन्ना बहुत कम जानते थे। परन्तु जो कमी थी, वह इस बात ने पूरी कर दी थी कि वह लाला फकीरचन्द का भांजा है। लाला फकीरचन्द इस समय दिल्ली के अग्रवाल वैश्यों की नाक बने हुए थे। ये सब बातें ऐसी न थीं जो एक हिंदू बेटी के माता-पिता पर प्रभाव न डालें। लाला फकीरचन्द मनोविज्ञान के भी, मालूम होता है, ज्ञाता थे। उन्हें लड़की के पिता की असहायावस्था का ज्ञान था। उसका उन्होंने ऐसा चित्र खींचा और ऐसा वातावरण पैदा किया कि या तो अभी, या फिर कभी नहीं। थोड़ा परामर्श डाक्टर ने अपनी पत्नी से किया। प्रश्न जाति-बिरादरी का आया। इसपर श्रीमती ने साहसपूर्वक कहा, 'हम खत्री हैं, आप अग्रवाल हैं। हममें-आपमें क्या अन्तर है। रही शारदा की पसन्द की बात, सो वह विरोध न करेगी।' फलतः खन्ना-दम्पति ने मौन सम्मति प्रदान की।

लाला फकीरचन्द इसी अवसर की ताक में थे, उन्होंने कहा, 'ज़रा बिटिया को बुलाइए न डाक्टर साहब, मैंने तो काफी दिन से उसे देखा ही नहीं।'

मालूम होता है कि शारदा भी कहीं निकट बात सुन रही थी। माता के निकट बुलाने पर वह आई और लाला फकीरचन्द को नमस्कार करके उन्हींके पास बैठ गई। लाला फकीरचन्द ने जेब से जड़ाऊ हीरे के दो कीमती कड़े निकाल उसके हाथों में पहना दिए। शारदा की आंखें नीची थीं, और खन्ना-दम्पति की आंखों में सन्तोष और प्रसन्नता खेल रही थी।

८६

उस दिन पिकनिक की शाम को जुगनू ने जो शारदा के कौमार्य को एक धक्का दिया, सो उसने शारदा के सोए हुए यौवन को जगा दिया था। निस्संदेह उसे उस समय की जुगनू की हरकत और प्रणय-निवेदन असह्य-सा लगा था, परन्तु ज्यों-ज्यों वह उस घटना पर विचार करती गई, उसकी चेतना में यौवन का जागरण होता गया, और वह उस याचना के माधुर्य में प्रविष्ट होती गई। इसके बाद बहुत बार अनुकूल-प्रतिकूल भाव-विभाव आए-गए। जुगनू से मिलने की एक प्रच्छन्न अभिलाषा उसके मन में उदय होती गई। पर यह उस अभिलाषा से सर्वथा भिन्न थी, जो अब तक जुगनू के लिए उसके मन में थी। इस अभिलाषा से न किसी विचार का, न रस का, न काव्य का, न कला का सम्बन्ध था, वह इस अभिलाषा को अपने शरीर की एक भूख के रूप में अनुभव कर रही थी। परन्तु उस दिन के बाद जुगनू उसके सामने आया ही नहीं, पर शारदा की सम्पूर्ण चेतना उसीपर केन्द्रित थी। वह एम० पी० बना। उसने सोचा, पापा ने पहले उसको दावत दी थी, जब वह म्युनिसिपल अधिकारी बना था; अब क्यों नहीं दी? फिर वह विदेश गया, मिनिस्टर बना, पर खन्ना ने उसे नहीं बुलाया, दावत नहीं दी। केवल एक-दो बार उससे मिल अवश्य आए। इन सब बातों से न जाने क्यों उसे अवसाद-सा प्रतीत हुआ। पर वह इस सम्बन्ध में कुछ कह न सकी। इसी समय उसके विवाह की बातें उठीं। अनेक लड़कों की चर्चा हुई। उनके गुण-दोष का विवेचन हुआ। शारदा ने मनोयोग से वह सब सुना। हर बार जुगनू से उसने उनकी तुलना की। और आज अकस्मात् जो ये कड़े उसके हाथों में पड़ गए तो उसे ऐसा लगा कि जैसे जुगनू ने अपने जलते हुए हाथों में उसके हाथ जकड़ लिए हैं, और कह रहा है—शारदा, मैं तुझे प्यार करता हूं।

८७

अकस्मात् ही एक बवंडर उठ खड़ा हुआ। पार्लियामैंट में वाणिज्यमन्त्रालय के सम्बन्ध में एक विवाद उठ खड़ा हुआ। जुगनू नहीं जानता था कि उसके

शत्रु भी हैं। और वाणिज्यमन्त्री होना जोखिम से परिपूर्ण है। वह लाला फकीरचन्द को तो करोड़ों का देशी-विदेशी सौदों में लाभ दे ही रहा था, और भी कार्रवाइयां उसकी चल रही थीं। बम्बई और कलकत्ता के दो-चार करोड़पति अब अपनी कूट वाणिज्यनीति से जुगनू की कृपादृष्टि प्राप्त कर करोड़ों रुपये कमा चुके थे। आफिस के कागज़ात में बहुत त्रुटियां होती जा रही थीं। उसके सहायकों ने तथा पी० ए० ने अनेक बार उसे चेतावनी दी, पर उसने उनकी बातों पर ध्यान नहीं दिया। अन्ततः लोकसभा में उसपर वज्रपात हुआ। वह ठीक-ठीक जवाब न दे सका, और उसके कामों की छानबीन के लिए जांच-आयोग स्थापित हो गया। लाला फकीरचन्द और कलकत्ता के सेठ सुहागचन्द पर झूठी कम्पनियों के खाते, जाली शेअर बेचने और करोड़ों रुपया गबन करने के मुकदमे उठ खड़े हुए। अनेक बैंकों से जाली चैक द्वारा रुपया ठगने के भी मुकदमे चले। लाला फकीरचन्द को गिरफ्तार कर लिया गया।

जुगनू की फूंक सरक गई। पद्मा ने उसे इन प्रपंचों से दूर रखने की बहुत चेष्टा की थी, पर उसने उसकी बात नहीं मानी थी, उसका अपमान किया था। प्रश्न उठा कि जुगनू के विरुद्ध अविश्वास का प्रस्ताव उठाया जाए। परन्तु जांच-आयोग के निर्णय तक यह प्रश्न अध्यक्ष ने रोक दिया। पर सारे शहर में लाला फकीरचन्द की गिरफ्तारी की चर्चा फैल गई।

परन्तु लाला फकीरचन्द अपने मामले में पूरे चाक-चौबन्द थे। उनके यहां तलाशी में एक भी कागज़ उनके विरुद्ध नहीं मिला। उनके बहीखातों पर आयोग ने कब्ज़ा कर लिया था, परन्तु बहीखाते ही बनिया लोग गलत लिखेंगे, तो लाखों का ब्लैक कैसे करेंगे। अतः जो कुछ भी गड़बड़ी का प्रमाण था, वह जुगनू के कार्यालय में। एक बार तो जुगनू घबराया। फिर उसने अपने एक मात्र मित्र नवाब से परामर्श लिया। दोनों मित्रों ने गूढ़ परामर्श करके सब बातें तय कर लीं। जांच-आयोग की कार्यवाही आरम्भ हो गई। आयोग के सदस्यों ने सर्वसम्मति से मिलकर कागज़-पत्रों को काबू में करके सीलमुहर बन्द करके अपनी कस्टडी में रख लिया। परन्तु जुगनू दृढ़ था, शान्त और गम्भीर था। लोग उसकी शान्त और निरुद्वेग वृत्ति को देखकर आश्चर्यचकित थे। कुछ कहते थे, वह दोषी है; कुछ कहते थे, निर्दोष है। जुगनू इस सम्बन्ध में न हितैषियों से

बात करता था, न विपक्षियों से। सबकी बात सुनकर वह केवल मुस्करा भर देता था।

कल जांच-आयोग सब कागज़ात की जांच करेगा। जुगनू से जिरह होगी, पूछताछ होगी। और आज रात को अकस्मात् ही आफिस में आग लग गई। बहुत यत्न करने पर भी सब कागज़ात जलकर खाक हो गए। अखबारवालों ने शोर मचाकर आसमान सिर पर उठा लिया। बहुत-बहुत झंझट हुआ। पर जुगनू का कोई अपराध प्रमाणित नहीं हुआ। लाला फकीरचन्द भी साफ छूट गए। रिहा होने पर उन्होंने पार्लियामैंट के सदस्यों को एक दावत दी। दावत में सरकारी नीति की कड़ी आलोचना की गई। देश के सच्चे एकनिष्ठ सेवकों की छीछालेदर करने की निन्दा की गई। इस प्रकार जुगनू नवाब के सत्परामर्श से इस आग में तपकर खरा सोना प्रमाणित हुआ।

८८

लाला फकीरचन्द और जुगनू इधर तीन महीने तक जांच-आयोग के सिल-सिले में सारे शहर में चर्चा का विषय बन गए थे। पत्रों में उनपर अनुकूल-प्रतिकूल टिप्पणियां छपी थीं। उनके परस्पर अनेक सम्बन्ध जोड़े जा रहे थे कि उस नाटक पर पटाक्षेप होते ही जुगनू का डाक्टर खन्ना की पुत्री से विवाह होने की धूम मच गई। यह भी प्रकट हुआ कि जुगनू लाला फकीरचन्द के भांजे रिश्ते में होते हैं। इस विवाह को लेकर भी अनेक अनुकूल-प्रतिकूल टिप्पणियां जानकार क्षेत्रों में हो रही थीं। उधर लाला फकीरचन्द सोलह आने लड़के के बाप का पार्ट अदा कर रहे थे। विवाह की धूमधाम साधारण न थी। गिरफ्तारी और झगड़े-टंटे की सारी ही खीझ लाला फकीरचन्द ने इस विवाह की धूमधाम पर उतारी थी। उनके चांदी के जूते में कितना ज़ोर है, यह जिसका जी चाहे आकर देख ले। लाला फकीरचन्द अब खुले खज़ाने डंके की चोट यही कह रहे थे। बारात बड़े ठाठ से चांदनीचौक में चढ़त होकर निकली। चढ़त में सरकारी बैण्ड, पांच हाथी, अनगिनत मोटरों का तांता था। लगभग सभी मिनिस्टर, एम० पी० और प्रतिष्ठितजन इस मिनिस्टर के विवाहोत्सव में सम्मिलित थे और

जुलूस के साथ थे। डाक्टर खन्ना की कोठी बिजली के प्रकाश से जगमग हो रही थी। बैण्ड बज रहा था। शहनाई अलाप ले रही थी। नगर के सभी गण्यमान्य स्त्री-पुरुष उनकी कोठी पर सुशोभित थे। डाक्टर खन्ना सपत्नीक हंस-हंसकर नम्रतापूर्वक आगन्तुकों का स्वागत कर रहे थे।

बारात खन्ना साहब के द्वार पर पहुंची। जुगनू कमखाब की शेरवानी डाटे फूलों से सुसज्जित मोटर में दूल्हा बना बैठा था। उसके सामने नवाब लखनवी दुपल्ली टोपी और चिकन का कुर्ता पहने बैठा था। लाला फकीरचन्द बारात के कभी आगे, कभी पीछे बन्दोबस्त करते फिर रहे थे। लोग खा-पी रहे थे। गप-शप कर रहे थे। वर के द्वाराचार के लिए तैयारियां हो रही थीं कि अकस्मात् ही एक ऊंची आवाज़ उठी—'भैया !'

किसीने सुनी, किसीने नहीं सुनी। सड़क के एक किनारे दो-तीन भंगी टोकरा लिए बैठे जूठन एकत्र कर रहे थे। उन्हींमें से एक तरुण ने जुगनू को ये शब्द कहे। जुगनू ने शब्द सुने और उसका खून ठण्डा हो गया। नवाब ने भी सुना, उस तरुण की ओर आंख उठाकर देखा और फिर जुगनू के चेहरे को देखा तो जुगनू के चेहरे पर एक बूंद भी रक्त न था। और भी कुछ आदमियों ने सुना, परन्तु किसीने कुछ समझा, कुछ नहीं समझा। परशुराम दैवदुर्विपाक से वहीं खड़ा था। वह तरुण दुबारा पुकारने ही वाला था, संभवतः वह मोटर की ओर आने का भी उपक्रम कर रहा था, कि परशुराम ने उसे डांट दिया, और उसे अपने साथ एकान्त स्थान पर ले गया। वहां जाकर उसने उससे बात की। परशुराम ने कहा, 'तू कौन है ?'

'मैं आपका मेहतर हूं।'

'कहां का रहनेवाला है ?'

'मुरादाबाद जिले का रहनेवाला हूं। यहां मेरी ससुराल है। यह घर मेरी ससुरालवालों का है। उनके साथ मैं भी आया हूं। हम खाना लेने आए हैं।'

'तेरा नाम क्या है ?'

'मेरा नाम घसीटा है।'

'तूने किसे पुकारा ?'

'जुगनू भैया को।'

'जुगनू कान है ?'

'वह क्या मोटर में दुल्हा बने बैठे हैं ।'

'वे तेरे भाई हैं ?'

'नहीं तो क्या ! मेरे जुगनू भैया हैं ।'

'तूने उन्हें कितने दिन में देखा है ?'

'बहुत दिन में । वे घर से लड़ाई करके परदेश चले गए थे । तब से उनका कोई पता ही न लगा, न चिट्ठी-पत्री आई । आज अचानक दीख पड़े ।'

'तूने ठीक पहचान लिया ?'

'वाह साहब, ये मेरे बड़े भैया हैं ।'

'क्या सगे भाई हैं ?'

'जी, मां-जाए भाई हैं ।'

'तू मेरे साथ आ ।' परशुराम उसे अपनी कोठरी में ले गए, उन्होंने उसे भीतर धकेलकर कोठरी में बाहर से ताला लगा दिया । ताला लगाते हुए कहा, 'चुपचाप बैठना, बदमाश ! शोर किया तो जूते पड़ेंगे ।'

'सरकार, मेरा कसूर तो बताइए ।'

'कहता हूं, चुप बैठ । तुझे इनाम मिलेगा ।'

कोठरी में ताला लगाकर परशुराम तेजी से डाक्टर खन्ना को खोजने लगा ।

स्त्रियां द्वाराचार की तैयारियां कर रही थीं । बाजों, शहनाइयों और आदमियों का शोर बहुत हो रहा था । जुगनू पत्थर की मूरत बना मोटर में बैठा था, उसे ऐसा प्रतीत हो रहा था कि जैसे अभी-अभी उसका भाई आकर उससे लिपट जाएगा । उसका मन हो रहा था कि कूद पड़े, आत्मघात कर ले या कहीं भाग जाए ।

डाक्टर खन्ना का हाथ पकड़कर परशुराम एक ओर ले गया । उसने कहा, 'ज़रा स्त्रियों से कह दीजिए, द्वाराचार की रस्म रोक दें ।'

'मामला क्या है परशुराम ?'

'बहुत गम्भीर मामला है, डाक्टर साहब ! स्त्रियों से बात करके झटपट मेरे साथ आइए ।'

८९

घसीटा की बात सुनकर डाक्टर सन्न रह गए। उनके शरीर में खून की गति रुक गई। परशुराम ने कहा, 'धीरज धरिए डाक्टर साहब, ईश्वर का धन्यवाद है, शारदा की इज़्ज़त बच गई।'

'पर मेरी इज़्ज़त तो धूल में मिल गई।'

'देखिए, जो होना था वह हो गया। इस भंगी के बच्चे पर मेरा पहले ही शक था, मैं जानता था कि यह एक शैतान आदमी है। पर किसे मालूम था कि यह भंगी है।'

'तो अब क्या किया जाए ?'

'ज़रा फकीरचन्द को बुला लाइए यहां।'

'इसपर नज़र रखो, निकलने न पाए।'

'नहीं।'

परशुराम फकीरचन्द को वहां बुला लाया। सब हकीकत सुन-सुनकर लाला फकीरचन्द मुंह बाए रह गए। उन्होंने खन्ना के पैरों पर सिर रखकर कहा, 'डाक्टर साहब, मेरा कसूर इतना भारी है कि उसकी कोई सज़ा नहीं; पर भगवान जानते हैं, मैं यह नहीं जानता था कि वह भंगी है।'

डाक्टर ने भर्राए गले से कहा, 'तुमने उसे अपना भांजा क्यों बताया था ?'

'मेरी अक्ल मारी गई थी। मैंने तो समझा था परदेशी आदमी है, भले घर का लड़का होगा। मुझपर उसके अहसान थे, मैं यह भयानक भूल कर बैठा।'

'रोने-धोने से अब क्या होगा। यह कहो किया क्या जाए !'

लाला फकीरचन्द प्रत्युत्पन्नमति थे। हौसले के आदमी थे। बोले, 'डाक्टर साहब, हौसला करो। ये भाई यहां खड़े हैं। शारदा के मास्टर ही हैं न ?'

'हां, इनका नाम परशुराम है।'

'अविवाहित हैं ?'

'हां।'

'तो भाई परशुराम, तुम मेरी और डाक्टर साहब की इज़्ज़त रख लो। शारदा को भी बचा लो। अब तुम्हीं पाटे पर बैठो।' लाला फकीरचन्द ने कन्धे से दुपट्टा उतारकर परशुराम के कन्धे पर डाल दिया। और कहा, 'तुम मेरे

भांजे हो भैया, देखना इन्कार न करना।'

फकीरचन्द ने परशुराम के पैर पकड़ लिए। परशुराम ने कहा, 'सोचने-विचारने का समय तो अब है नहीं। मैं ब्राह्मण हूं, आपका प्रस्ताव स्वीकार करता हूं।'

फकीरचन्द ने घसीटा से कहा, 'चुपचाप यहीं बैठा रह, सौ रुपये इनाम दूंगा तुझे।'

उन्होंने कोठरी को ताला लगाया और डाक्टर से कहा, 'डाक्टर साहब, दूल्हे को साथ ले जाकर द्वाराचार करो। मैं तब तक उस भंगी के बच्चे से निबटता हूं।' वह तेज़ी से वहां से चल दिए।

९०

जुगनू को भागने की राह नहीं मिल रही थी। जिस कार में वह बैठा था वह फकीरचन्द की ही थी। फकीरचन्द ने पास पहुंचकर कहा, 'उतरो।'

जुगनू मोटर से नीचे उतरा, नवाब भी उतरा। लाला फकीरचन्द घुमाते-फिराते उसे पिछले द्वार पर ले गए। वहां जाकर कहा, 'भंगी के बच्चे, तेरी गैरत और औकात ही क्या है, पर जा, यदि कुछ भी शर्म हो तो अपना मुंह किसीको मत दिखाना, वरना ज़िन्दा न रहने पाएगा।'

जुगनू बेंत से पिटे कुत्ते की भांति नवाब के साथ चला गया।

लाला फकीरचन्द तेज़ी से लौटे। दो विश्वस्त आदमी कोठरी के द्वार पर पहरे पर तैनात किए। द्वाराचार हो रहा था, पर जानकार स्त्री-पुरुष जुगनू के स्थान पर परशुराम को देखकर हैरान थे। डा० खन्ना ने संक्षेप में पत्नी से इतना ही कहा था, 'शारदा की मां, ज़रा चुप रहना, गड़बड़ी न करना। बड़ी ही बुरी बात हुई है, बस समझना इज़्ज़त बच गई। परशुराम से विवाह होगा।'

शारदा एकदम इस परिवर्तन से घबरा गई थी। डाक्टर ने उससे इतना ही कहा, 'बेटी, मैं बाप हूं, तेरा सबसे बड़ा हितैषी। बस, यही समझकर चुप रह। और बात पीछे होगी।'

लेकिन फिर भी चर्चा फैल गई। जुगनू कोई अपरिचित और साधारण पुरुष

न था। सारे मिनिस्टर वहां हाज़िर थे। और भी उच्चपदस्थ थे। वे पूछ रहे थे, 'यह माजरा क्या है, क्या मुंशी जगनप्रसाद की शादी नहीं हो रही है ?' परन्तु सभी पूछनेवाले थे, जवाब देनेवाला कोई न था। डाक्टर खन्ना कन्यादान कर रहे थे, और ब्राह्मण जल्दी-जल्दी वेदमन्त्र पढ़ रहे थे।

उपसंहार

जुगनू रातोंरात दिल्ली से भाग गया। किसीको उसका फिर कोई पता न लगा। उसके पास काफी रुपया था, उसे वह साथ ले गया। पद्मा को यद्यपि इन बातों का पता नहीं लगा, जाती बार उसने पद्मा को साथ ले जाना चाहा। पर उसने इन्कार कर दिया। शारदा से विवाह की बात सुनकर उसे आघात लगा था। अब इस तरह पलायन से उसे आश्चर्य हो रहा था। वह बुद्धिमती थी, उसने विवेक से काम लिया। नवाब अपना धन्धा चलाता रहा। लाला फकीरचन्द ने दौड़-धूप करके इस मामले को तूल न देने के लिए रातोंरात समाचारपत्रों से समझौता कर लिया था। पर उन्होंने इतना अवश्य छापा—वाणिज्यमन्त्री विवाह-वेदी पर से गायब। उनका कोई पता नहीं।

डाक्टर खन्ना ने घसीटा का मुंह रुपयों से बन्द कर दिया और उसके सास-ससुर को, जो उसी घर के भंगी थे, समझा-बुझाकर बात पर परदा डाल दिया।

विवाह के तत्काल बाद परशुराम देहात अपने घर चले गए। वहां से उन्होंने सब हाल खुलासा शारदा को लिख दिया। और यह भी लिखा, 'उस समय जो कुछ मैंने किया, वही एक भले आदमी को करना उचित था, परन्तु मैं तुमपर किसी प्रकार के अधिकार का दावा नहीं रखता।'

सब बात जानकर शारदा बहुत मर्माहत हुई। पर वह बुद्धिमती लड़की थी। उसने केवल एक शब्द पत्र में परशुराम को लिखा, 'आओ।'

◇ ◇ ◇